भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र

B21HD07DC

Discipline Core Course
Undergraduate Programme
Hindi Language and Literature

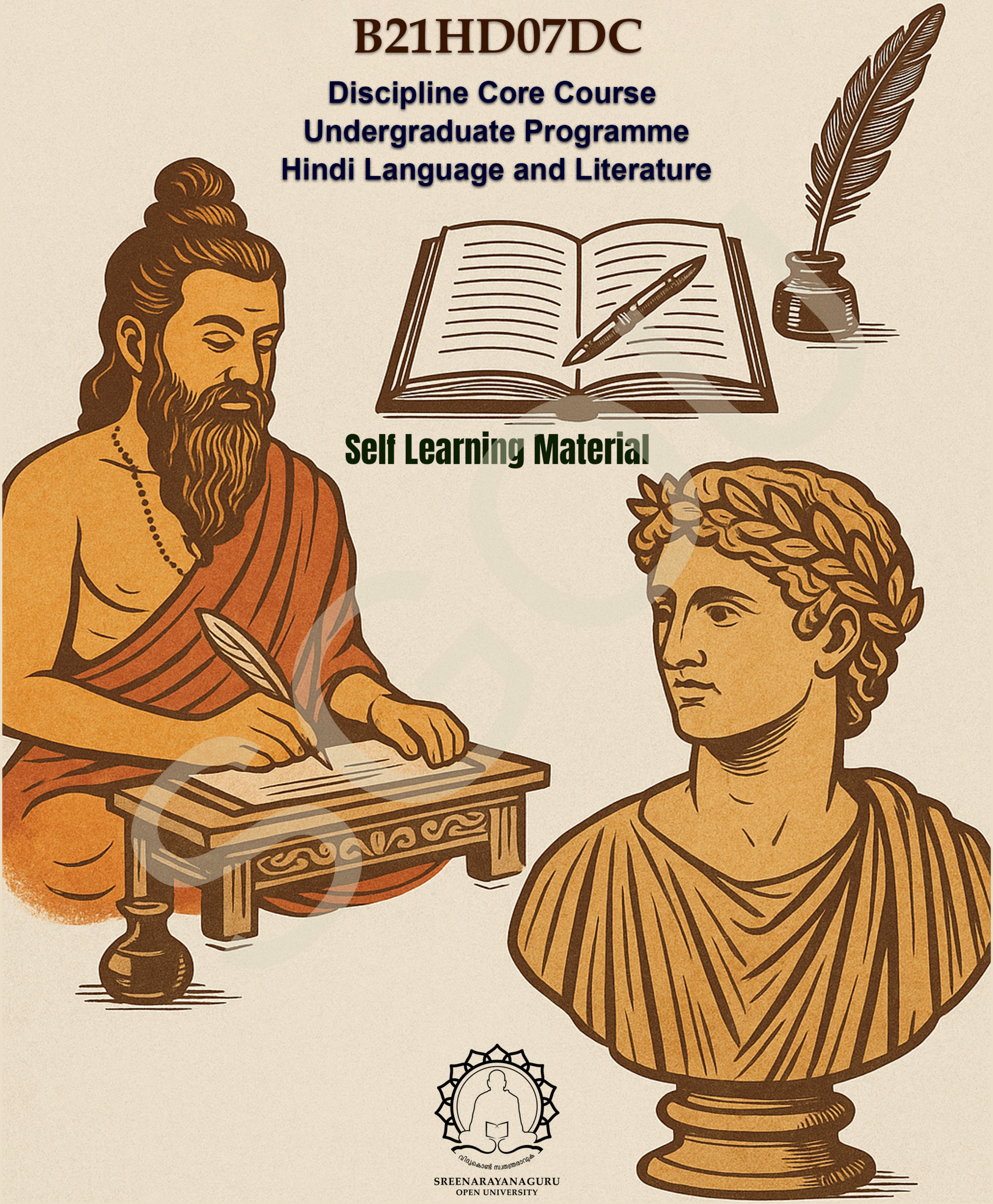

Self Learning Material

SREENARAYANAGURU
OPEN UNIVERSITY

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

The State University for Education, Training and Research in Blended Format, Kerala

Vision

To increase access of potential learners of all categories to higher education, research and training, and ensure equity through delivery of high quality processes and outcomes fostering inclusive educational empowerment for social advancement.

Mission

To be benchmarked as a model for conservation and dissemination of knowledge and skill on blended and virtual mode in education, training and research for normal, continuing, and adult learners.

Pathway

Access and Quality define Equity.

भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र

Course Code: B21HD07DC

Semester-VI

Discipline Core Course
BA Hindi Language and Literature
Self Learning Material
(With Model Question Paper Sets)

SREENARAYANAGURU
OPEN UNIVERSITY

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

The State University for Education, Training and Research in Blended Format, Kerala

भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र

Course Code: B21HD07DC
Semester- VI
Discipline Core Course
BA Hindi Language and Literature

SREENARAYANAGURU
OPEN UNIVERSITY

Academic Committee

Dr. Jayachandran R.
Dr. Pramod Kovvaprath
Dr. P.G. Sasikala
Dr. Jayakrishnan J.
Dr. R. Sethunath
Dr. Vijayakumar B.
Dr. B. Ashok

Development of Content

Dr. Sreechithra V.S, Dr. P. Letha,
Dr Rathee D, Jayasree .O,
Shahana Habeeb

Review and Edit

Dr. N. Mohanan
Dr. Shaji N.

Linguistics

Dr. Suma S.

Scrutiny

Dr. Sudha T.
Dr. Krishna Preethy A.R.
Dr. Indu G. Das
Christina Sherin Rose K.J.

Design Control

Azeem Babu T.A.

Cover Design

Lisha S.

Co-ordination

Director, MDDC :
Dr. I.G. Shibi
Asst. Director, MDDC :
Dr. Sajeevkumar G.
Coordinator, Development:
Dr. Anfal M.
Coordinator, Distribution:
Dr. Sanitha K.K.

Scan this QR Code for reading the SLM on a digital device.

Edition:
January 2025

Copyright:
© Sreenarayanaguru Open

ISBN 978-81-986822-8-4

9 788198 682284

All rights reserved. No part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from Sreenarayanaguru Open University. Printed and published on behalf of Sreenarayanaguru Open University by Registrar, SGOU, Kollam.

www.sgou.ac.in

Visit and Subscribe our Social Media Platforms

MESSAGE FROM VICE CHANCELLOR

Dear learner,

I extend my heartfelt greetings and profound enthusiasm as I warmly welcome you to Sreenarayanaguru Open University. Established in September 2020 as a state-led endeavour to promote higher education through open and distance learning modes, our institution was shaped by the guiding principle that access and quality are the cornerstones of equity. We have firmly resolved to uphold the highest standards of education, setting the benchmark and charting the course.

The courses offered by the Sreenarayanaguru Open University aim to strike a quality balance, ensuring students are equipped for both personal growth and professional excellence. The University embraces the widely acclaimed "blended format," a practical framework that harmoniously integrates Self-Learning Materials, Classroom Counseling, and Virtual modes, fostering a dynamic and enriching experience for both learners and instructors.

The university aims to offer you an engaging and thought-provoking educational journey. Major universities across the country typically employ a format that serves as the foundation for the UG programme in Hindi Language and Literature. Given Hindi's status as a widely spoken language throughout India, its pedagogy necessitates a particular focus on language skills and comprehension. To address this, the University has implemented an integrated curriculum that bridges linguistic and literary elements. The learner's priorities determine the endorsed proportion of these elements. Both the Self Learning Materials and virtual modules are designed to fulfil these requirements.

Rest assured, the university's student support services will be at your disposal throughout your academic journey, readily available to address any concerns or grievances you may encounter. We encourage you to reach out to us freely regarding any matter about your academic programme. It is our sincere wish that you achieve the utmost success.

Regards,
Dr. Jagathy Raj V. P. 01-07-2025

Contents

BLOCK 01: भारतीय काव्यशास्त्र: एक सामान्य परिचय............ 1

इकाइ 1: भारतीय काव्यशास्त्र का आरम्भ - भरतमुनि के समय से............ 2

इकाई 2: काव्य प्रयोजन............ 7

इकाई 3: काव्य लक्षण और परिभाषाएँ............ 12

इकाइ 4: काव्य हेतु............ 16

इकाई 5: काव्य स्वरूप............ 20

इकाई 6: काव्य की आत्मा............ 26

BLOCK 02 भारतीय काव्यशास्त्र के प्रमुख सम्प्रदाय............ 30

इकाई 1: रस संप्रदाय - सामान्य परिचय............ 31

इकाई 2: रस निरूपण, रस निष्पत्ति, साधारणीकरण, नव रस, प्रमुख आचार्य............ 34

इकाई 3: अलंकार संप्रदाय - प्रमुख आचार्य............ 46

इकाई 4: अलंकार निरूपण............ 51

इकाई 5: रीति सिद्धांत : प्रमुख मान्यताएँ............ 62

इकाई 6: वक्रोक्ति संप्रदाय- सामान्य परिचय............ 66

BLOCK 03: ध्वनि, औचित्य और शब्द शक्ति............ 70

इकाई 1: ध्वनि संप्रदाय : सामान्य परिचय............ 71

इकाई 2: शब्द शक्ति............ 78

इकाई 3: अभिधा शब्द शक्ति............ 81

इकाई 4: लक्षणा शब्दशक्ति............ 85

इकाई 5: व्यंजना शब्द शक्ति............ 90

इकाई 6: औचित्य संप्रदाय............ 95

BLOCK 04: पश्चिमी काव्यशास्त्र : एक सामान्य परिचय............ 100

इकाइ 1: प्लेटो पूर्व काव्य चिन्तन............ 101

इकाई 2: प्लेटो का काव्य सिद्धांत............ 104

इकाई 3: अरस्तु............ 108

इकाई 4: अरस्तु का अनुकरण सिद्धांत............ 112

इकाई 5: अरस्तु का विरेचन सिद्धान्त............ 116

इकाई 6: लोंजाइनस का उदात्तवाद............ 119

SGOU

BLOCK 05: स्वच्छंदतावादी समीक्षा **124**

इकाई 1: नवजागरण, नव्यशास्त्रवाद, फ्रांस की राज्यक्रांति 125

इकाई 2: वर्ड्सवर्थ के काव्य सिद्धांत 135

इकाई 3: कॉलेरिज 140

इकाई 4: मैथ्यू अर्नाल्ड 145

इकाई 5: क्रोंचे का अभिव्यंजनावाद 150

BLOCK 06: आधुनिक ब्रिटिश - अमरीकी काव्य चिंतन **155**

इकाई 1: आई.ए. रिचर्ड्स का मूल्य सिद्धांत 156

इकाइ 2: टी.एस. इलियट का निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत 163

इकाई 3: वस्तुनिष्ठ समीकरण सिद्धांत 168

इकाई 4: नयी समीक्षा 172

इकाइ 5: समसामयिक समीक्षा के सिद्धांत : सामान्य परिचय 177

MODEL QUESTION PAPER SETS **193**

BLOCK 01

भारतीय काव्यशास्त्रः एक सामान्य परिचय

SGOU

इकाई 1 भारतीय काव्यशास्त्र का आरम्भ - भरतमुनि के समय से

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- भारतीय काव्यशास्त्र के महत्व को समझता है
- भारतीय काव्यशास्त्र का विकास क्रम समझता है
- भारतीय काव्यशास्त्र के विभिन्न आचार्यों से परिचित होता है
- काव्य के विभिन्न तत्वों की जानकारी प्राप्त करता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा लगभग डेढ़ हज़ार वर्ष पुरानी है जो संस्कृत आचार्य भरतमुनि से प्रारंभ होती है। काव्यशास्त्र संबंधी सबसे पुराना ग्रंथ भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' है। आगे चलकर इस ग्रंथ को आधार बनाकर विभिन्न काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों का विकास हुआ। हिन्दी में रीतिकालीन आचार्यों तथा आधुनिककालीन आचार्यों ने इस ग्रंथ के आधार पर काव्य संबंधी अपने-अपने मंतव्य व्यक्त किए हैं।

Keythemes / मुख्य प्रसंग

- भारतीय काव्यशास्त्र और भरतमुनि का नाट्यशास्त्र।
- नाट्यशास्त्र को आधार बनाकर निर्मित विभिन्न कव्यशास्त्रीय सिद्धांतों का विकास।

Discussion / चर्चा

'काव्यशास्त्र' काव्य और साहित्य का दर्शन तथा विज्ञान है। यह काव्यकृतियों के विश्लेषण के आधार पर समय-समय पर उद्भावित सिद्धांतों की ज्ञानराशि है। काव्यशास्त्र का पुराना नाम 'साहित्यशास्त्र' या 'अलंकारशास्त्र' है। साहित्य के व्यापक रचनात्मक वाङ्मय को समेटने के कारण इसे 'समीक्षाशास्त्र' भी कहा जाने लगा। काव्यशास्त्र की विकास यात्रा का प्रारंभ ऋग्वेद से भी माना जाता है क्योंकि ऋग्वेद के मंत्रो में काव्यशास्त्र से संबंधित रस शब्द का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

भरतमुनि से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक लगभग डेढ़ हज़ार वर्ष तक संस्कृत काव्यशास्त्र की परंपरा फैली हुई है। इनमें अनेक काव्य सिद्धांतों का प्रतिपादन एवं खंडन-मंडन होता रहा। ये सिद्धांत, संप्रदाय (School of thought) नाम से जाने जाते हैं। इन संप्रदायों में भरतमुनि का रस संप्रदाय, भामह का अलंकार संप्रदाय, आनंदवर्धन का ध्वनि संप्रदाय, वामन का रीति संप्रदाय, कुंतक का वक्रोक्ति संप्रदाय, क्षेमेंद्र का औचित्य संप्रदाय आदि आते हैं।

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

1.1.1 काव्यशास्त्रीय परंपरा का प्रारंभ

भारतीय काव्यशास्त्र की उपलब्ध परंपरा में सर्वप्रथम सर्वांगपूर्ण ग्रंथ भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' माना जाता है। रस-विश्लेषण की दृष्टि से यह अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है। भरतमुनि (2 वीं शती) के बाद भामह तक (6 वीं शती) काव्यशास्त्र का कोई इतिहास नहीं मिलता। भामह के बाद जो स्वस्थ परंपरा का उदय हुआ; जिसे यों विभाजित किया जाता है-

1.1.1.1 आरंभिक काल / अन्वेषण युग (6 वीं शती - 9 वीं शती तक)

इस युग के आचार्यों में भामह, दण्डी, वामन, लोल्लट, शंकुक, उद्भट, 'रूद्रट आदि प्रमुख हैं -

भामहः भारतीय अलंकार शास्त्र का आचार्य है- भामह। उन्होंने अपना समीक्षा ग्रंथ 'काव्यालंकार' में अलंकार के महत्त्व को यों स्थापित किया कि - 'न कांतमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्'। (अर्थात् जिसप्रकार आभूषण के बिना वनिता के मुख में कांति नहीं आती, उसीप्रकार अलंकार के बिना कविता में कांति कभी नहीं उत्पन्न होती। इसप्रकार भामह ने काव्य में सौन्दर्य तत्व के स्रष्टा के रूप में अलंकार को प्रतिष्ठा दी।

दण्डी : भामह के पश्चात दण्डी ने अलंकारों के विवेचन को गति एवं समृद्धि दी। उन्होंने भामह के अलंकारों की संख्या को बढ़ाया और अलंकारों के मूल में अतिशयोक्ति को प्रमुखता दी। अपने ग्रंथ 'काव्यादर्श' में इन्होंने- 'काव्यशोभाकारान् धमान् अलंकारान् प्रचक्षते' कहकर काव्य के सौन्दर्यकारक तत्वों को अलंकार की संज्ञा दी।

उद्भट : 9 वीं शती के प्रसिद्ध अलंकारवादी आचार्य है- उद्भट। आपका प्रसिद्ध ग्रंथ है- 'काव्यालंकार सार-संग्रह', जिसके छः भाग हैं।

वामन : शिल्प सौन्दर्य को आधार मानकर समीक्षा करनेवाला प्रथम कश्मीरी आचार्य हैं- वामन। आपका समीक्षा ग्रंथ है- 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति'। इसमें उन्होंने 'रीतिरात्मा काव्यस्य' कहकर रीति को काव्य की आत्मा घोषित किया तथा 'विशिष्ट पदरचना रीति' कहकर रीति को परिभाषित किया।

लोल्लट : वे मूलतः रसवादी आचार्य है तथा भरतमुनि के रस-निष्पत्ति सूत्र के प्रथम व्याख्याकार (उत्पत्तिवाद) भी हैं। उनका ग्रंथ उपलब्ध नहीं है, रसनिष्पत्ति संबंधी उनकी व्याख्या अभिनवगुप्त की 'अभिनवभारती' में संग्रहीत है।

शंकुक : शंकुक भी रसवादी आचार्य है। उनका ग्रंथ भी उपलब्ध नहीं है। उनकी रसनिष्पत्ति- व्याख्या (अनुमितिवाद) अभिनवगुप्त की 'अभिनवभारती' में संकलित है।

रूद्रट : 9 वीं शती के प्रमुख आचार्य है- रूद्रट। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार' में सर्वप्रथम रसों के स्वतंत्र रूप को प्रस्तुत किया। फिर भी अलंकार को काव्य का प्रमुख तत्व माना।

1.1.1.2 प्रौढ़काल (9 वीं शती के मध्य से 10-11वीं शती तक)

आनंदवर्धन, भट्ट तौत, भट्ट नायक, राजशेखर, अभिनवगुप्त, धनंजय आदि इस काल के प्रमुख आचार्य हैं।

आनंदवर्धन : आचार्य आनंदवर्धन ध्वनिसिद्धांत के जनक के रूप में माने जाते हैं। उन्होंने एक साथ रस, ध्वनि और औचित्य तीनों सिद्धांतों का निरूपण किया। ध्वनि को काव्य की आत्मा घोषित करनेवाला आपका प्रसिद्ध ग्रंथ है- 'ध्वन्यालोक'। ध्वनि के साथ रस का विस्तार करते हुए आपने काव्य में 'रसध्वनि' की प्रतिष्ठा की।

भट्ट तौत : भट्ट तौत आचार्य अभिनव गुप्त के गरु हैं। इनके मतों का उल्लेख अभिनवगुप्त के ग्रंथ 'अभिनवभारती' में मिलता है।

भट्ट नायक : वे एक रसवादी आचार्य हैं। इनका मूल ग्रंथ 'हृदयदर्पण' है, जो उपलब्ध नहीं है। इनके मतों का उल्लेख भी अभिनवभारती में मिलते हैं।

अभिनवगुप्त : रसशास्त्र के सबसे प्रसिद्ध आचार्य

हैं- अभिनवगुप्त। आपके प्रसिद्ध ग्रंथ 'अभिनवभारती' तथा 'ध्वन्यालोक लोचन' हैं। ये दोनों ग्रंथ क्रमशः 'नाट्यशास्त्र' एवं 'ध्वन्यालोक' की टीकाएँ हैं।

राजशेखर : अलंकार सिद्धांत का आचार्य हैं- राजशेखर। अलंकार संबंधी आपका प्रसिद्ध ग्रंथ है- 'काव्य मीमांसा', जिसके 18 भाग हैं।

धनंजय : 10 वीं शती का प्रमुख आचार्य हैं - धनंजय। आपका प्रसिद्ध ग्रंथ-'दशरूपकम' है, भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' से प्रभावित इस ग्रंथ में नाट्य के दशरूपों के लक्षण और उनकी विशेषताओं का प्रतिपादन है।

1.1.1.3 प्रतिक्रिया युग

इस युग के प्रमुख आचार्य हैं - कुंतक, महिमभट्ट आदि।

कुंतक : वक्रोक्ति सिद्धांत का प्रवर्तक आचार्य हैं- कुंतक। उनकी एकमात्र रचना 'वक्रोक्तिजीवितम' है। इसमें उन्होंने वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा कहा है। वे ध्वनि सिद्धांत के प्रबल विरोधी थे।

महिमभट्ट : कुंतक के समान ध्वनि विरोधी आचार्य थे- महिमभट्ट। आपका प्रसिद्ध ग्रंथ है - व्यक्तिविवेक। इसमें उन्होंने ध्वनि सिद्धांत का खंडन किया।

1.1.1.4 औचित्य युग

इस समय के प्रमुख आचार्य हैं - क्षेमेंद्र, मम्मट आदि।

क्षेमेंद्र : क्षेमेंद्र औचित्य सिद्धांत के जनक हैं। उन्होंने औचित्य को काव्य का जीवित तत्व माना। उनके तीन प्रसिद्ध ग्रंथ हैं- औचित्य-विचार चर्चा, सुवृत्ततिलक और कविकण्ठाभरण।

मम्मट : एक ध्वनिवादी आचार्य हैं - मम्मट। आपका प्रसिद्ध ग्रंथ है - काव्यप्रकाश।

5. व्याख्या युग

आचार्य 'रुय्यक' से लेकर रीतिकालीन आचार्यों तक की परंपरा इस युग में आती हैं -

'रुय्यक' : अलंकारवादी आचार्य है 'रुय्यक'। आपका प्रसिद्ध ग्रंथ है- 'अलंकार सर्वस्व'। इसे 'अलंकार-सूत्र' भी कहा जाता है।

विश्वनाथ : 'साहित्य-दर्पण' के रचयिता कविराज विश्वनाथ ने काव्य का सर्वांग विवेचन किया। उन्होंने काव्य के दृश्य और श्रव्य दो भेद बताए। उनकी काव्य संबंधी प्रमुख व्याख्या है-

'वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्'।

पंडितराज जगन्नाथः शाहजहाँ द्वारा पंडितराज की उपाधि से विभूषित आचार्य है- पंडितराज जगन्नाथ। आपकी प्रसिद्धि का आधारभूत ग्रंथ है - 'रसगंगाधर'।

1.1.2 हिन्दी के प्रमुख आचार्य और उनकी रचनाएँ

- केशवदास - कविप्रिया, रसिकप्रिया।
- सुंदरदास - सुंदरशृंगार।
- चिंतामणि त्रिपाठी - काव्य-विवेक, कविकुल-कल्पतरु, काव्य-प्रकाश, रस-मंजरी।
- कुलपति मिश्र - रस-रहस्य।
- देव - भाव-विलास, भवानी-विलास, शब्द-रसायन।
- श्रीपति - काव्य-सरोज।
- सोमनाथ - रसपियूषनिधि।
- भिखारीदास - शृंगार-निर्णय, रस सारांश, काव्य-निर्णय।

आधुनिक युग

- भारतेंदु - नाटक में रस प्रयोग संबंधी चिंतन।
- पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी - रसज्ञ रंजन।
- मिश्रबंधु - मिश्रबंधु विनोद, हिन्दी-नवरत्न।
- अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध - रस-कलश, बोलचाल रस साहित्य और समीक्षाएँ।
- आचार्य रामचन्द्रशुक्ल- चिंतामणि, रस-मीमांसा।

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

▶ श्यामसुंदर दास -साहित्यालोचन।

समग्रतः कहा जा सकता है कि भरतमुनि से लेकर आधुनिक काल तक व्याप्त भारतीय काव्यशास्त्र परंपरा विश्व काव्यशास्त्र में भारत को गौरवपूर्ण स्थान प्रदान करने योग्य है।

Critical Overview / अवलोकन

भारतीय काव्यशास्त्रीय परंपरा का विकास भरतमुनि से प्रारंभ होता है। बाद में भामह से लेकर यह परंपरा विकसित हुई। अनेक आचार्य सक्रिय रूप में इस क्षेत्र में आए। अनेक मतों का विकास एवं खंडन-मंडन होता रहा। इन्हीं काव्य परंपराओं के आधार पर बाद में अनेक महत्वपूर्ण काव्यसिद्धान्तों का उदय हुआ।

Recap / पुनरावृत्ति

- भारतीय काव्यशास्त्र की उपलब्ध परंपरा में सर्वप्रथम सर्वांगपूर्ण ग्रंथ भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' माना जाता है
- भरतमुनि (2 वीं शती) के बाद भामह तक (6 वीं शती) तक काव्यशास्त्र का कोई इतिहास नहीं मिला
- आरंभिक काल या अन्वेषण युग (6 वीं शती - 9 वीं शती तक) के आचार्यों में भामह, दण्डी, वामन, लोल्लट, शंकुक, उद्भट, रुद्रट आदि प्रमुख रूप में आते हैं।
- प्रौढ़काल (9 वीं शती के मध्य से 10-11वीं शती तक) के प्रमुख आचार्य हैं आनंदवर्धन, भट्ट तौत, भट्ट नायक, राजशेखर, अभिनवगुप्त, धनंजय आदि।
- औचित्य युग के प्रमुख आचार्य हैं - क्षेमेंद्र, मम्मट आदि।
- व्याख्या युग में आचार्य रुय्यक से लेकर रीतिकालीन आचार्यों तक की परंपरा आती है।
- प्रमुख रीतिकालीन आचार्य और उनकी रचनाएँ।
- आधुनिक युगीन आचार्य और उनकी रचनाएँ।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. रस निरूपण के प्रथम व्याख्याता कौन हैं?
2. रस निरूपण का प्रथम ग्रंथ किसे माना जाता है?
3. काव्यप्रकाश के रचयिता कौन हैं?
4. रससूत्र किस आचार्य की देन है?
5. 'वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्' - किसकी उक्ति है?
6. 'कविप्रिया' किसकी रचना है?
7. 'चिंतामणि' किसकी रचना है?
8. औचित्य संप्रदाय के प्रमुख आचार्य कौन हैं?

Answers / उत्तर

1. भरतमुनि
2. नाट्यशास्त्र
3. मम्मट
4. भरतमुनि
5. आचार्य विश्वनाथ
6. आचार्य केशवदास
7. आचार्य रामचन्द्रशुक्ल
8. क्षेमेंद्र

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. भरतमुनि से लेकर आधुनिक काल तक की काव्यशास्त्रीय परंपरा का विकास क्रम।
2. संस्कृत काव्यशास्त्रीय परंपरा का परिचय दीजिए।
3. रीतिकाल के प्रमुख आचार्यों एवं उनके काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का नाम लिखिए।
4. प्रमुख आधुनिककालीन आचार्यों तथा ग्रन्थों का नामोल्लेख कीजिए।

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

इकाई 2 काव्य प्रयोजन

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- काव्य रचना के उद्देश्य के बारे में समझता है
- काव्य प्रयोजन संबंधी विभिन्न आचार्यों के मतों का परिचय प्राप्त करता है
- सामाजिक जीवन में काव्य की आवश्यकता समझता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

काव्य किस उद्देश्य से लिखा और पढ़ा जाता है इसे दृष्टि में रखकर काव्य प्रयोजनों पर कवि और पाठक की दृष्टि का विस्तृत विचार-विमर्श काव्यशास्त्र में किया गया है। काव्य की रचना केलिए प्रेरित करने वाला तत्व है काव्य प्रयोजन। इसका अभिप्राय है काव्य रचना के अनन्तर प्राप्त होने वाला लाभ।

Keywords / मुख्य बिन्दु

काव्य प्रयोजन, आनंदप्राप्ति, यश प्राप्ति, अर्थ प्राप्ति, व्यवहार ज्ञान, अमंगल का विनाश, लोकोपदेश

Discussion / चर्चा

काव्य प्रयोजन का अर्थ है - काव्य का उद्देश्य (अर्थात् कवि कविता के द्वारा जिस वस्तु को प्राप्त करना चाहता है, उसकी उपलब्धि है काव्य प्रयोजन। संस्कृत काव्यशास्त्रियों तथा भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों ने काव्य के अनेक प्रयोजन गिनाए हैं, जिनमें प्रमुख हैं- धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, यश, आयु, हित, ज्ञानवृद्धि, उपदेश, प्रीति, व्यवहार-ज्ञान, अमंगल-नाश, कवि-शिक्षा, शील, शक्ति, सौन्दर्य आदि।

संस्कृत काव्यशास्त्र में आचार्यों ने काव्य-प्रयोजन पर विस्तार से विचार किया है। इन आचार्यों की मान्यताओं में मतैक्य भी है और विरोध भी।

1.2.1 संस्कृत आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट काव्य प्रयोजन

1.2.1.1 भरतमुनि

'नाट्यशास्त्र' के रचयिता भरतमुनि ने नाटक के प्रयोजनों पर विचार करते हुए लिखा है :

धर्म्यं यशस्यं आयुष्यं हितं बुद्धि विवर्धनम्।

लोको उपदेश जननम् नाट्यमेतद् भविष्यति।।

भरतमुनि द्वारा निर्दिष्ट इन प्रयोजनों में भौतिक प्रयोजनों का व्यापक उल्लेख है: काव्य का प्रधान उद्देश्य आनंद प्राप्ति है; उसका उल्लेख यहाँ नहीं किया

गया है। एक अन्य स्थान पर उन्होंने नाटक का उद्देश्य दुखी व्यक्ति को सुख और शांति की प्राप्ति प्रदान करना बताया है।

नाटक काव्य का ही एक रूप है अतः भरतमुनि द्वारा निर्दिष्ट इन प्रयोजनों को काव्य प्रयोजन के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

1.2.1.2 भामह

आचार्य भामह ने अपने ग्रंथ 'काव्यालंकार' में काव्य प्रयोजनों की चर्चा करते हुए लिखा है :

धर्मार्थ काम मोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।

करोति कीर्ति प्रीतिश्च साधुकाव्य निबन्धनम्।।

(अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति कलाओं में निपुणता के साथ-साथ उत्तम काव्य से कीर्ति और प्रीति (आनंद) की भी प्राप्ति होती है। भामह के काव्य प्रयोजन व्यापक हैं तथा इनमें कवि और पाठक दोनों के प्रयोजनों की चर्चा की है।

1.2.1.3 आचार्य वामन

वामन के अनुसार-

काव्यं सद्द्रष्टा द्रष्टार्थ प्रीति-कीर्ति-हेतुत्वात्।

(अर्थात् काव्य के दो प्रमुख प्रयोजन हैं :

- प्रीति अथवा आनंद साधना, जो काव्य का दृष्ट प्रयोजन है।
- कीर्ति अथवा यश प्राप्ति, जो काव्य का अदृष्ट प्रयोजन है।

1.2.1.4 आचार्य कुंतक

वक्रोक्ति संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य कुंतक ने अपने ग्रंथ 'वक्रोक्ति जीवितम्' में काव्य-प्रयोजन का उल्लेख करते हुए कहा है-

"धर्मादि साधनोपायः सुकुमारक्रमोदितः।

काव्य बन्धोअभिजातानां ह्दयाहलादकारकः।"

काव्य धर्मादि सिद्धि के साधन होने के साथ - साथ आह्लाद उत्पन्न करने वाला भी है।

1.2.1.5 आचार्य मम्मट

आचार्य मम्मट ने अपने ग्रंथ 'काव्यप्रकाश' में काव्य प्रयोजनों पर विस्तृत चर्चा की है। उनके अनुसार -

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।

सद्यः परिनिर्वृत्तये कान्तासम्मित तयोपदेशयुजे।।

इस प्रकार मम्मट ने इस श्लोक में छः काव्य प्रयोजनों की चर्चा की है -

- **काव्यं यशसे** : यश प्राप्ति को मम्मट ने काव्य-प्रकाश में सर्वाधिक महत्त्व दिया है। यश प्राप्ति के उद्देश्य से प्रवृत्त होकर कवि रचना करता है।
- **काव्यं अर्थ कृते** : साहित्य के भौतिक प्रयोजनों में अर्थ की प्राप्ति का भी महत्वपूर्ण स्थान है। अपनी आजीविका तथा संसार में उपलब्ध सुखों की प्राप्ति के एक साधन के रूप में काव्य का प्रयोजन एक पुरानी मान्यता है।
- **काव्यं व्यवहार विदे** : मम्मट ने व्यावहारिक ज्ञान को काव्य का तीसरा प्रयोजन माना है। काव्य के प्रणयन के दौरान कवि मानव के उदय और सामाजिक आवश्यकताओं का सूक्ष्म अध्ययन करता है। पाठक भी काव्य के अध्ययन के द्वारा समाज और मानव चरित्र की जानकारी प्राप्त करता है।
- **काव्यं शिवेतरक्षयते** : अमंगल निवारण तथा कल्याण को काव्य का चतुर्थ लक्षण मम्मट ने स्वीकार किया है। अपने युग और समाज को अनिष्ट से बचाना कवि का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए।
- **काव्यं सद्यः परिनिर्वृत्तयेः** साहित्य से मानव हृदय का साधारणीकरण होता है इसीलिए मम्मट ने काव्य का पंचम उद्देश्य 'सद्यः परिनिर्वृत्तये' (अर्थात् 'रसोत्पत्ति' माना है।
- **काव्यं कान्तासम्मित तयोपदेशयुजे** : कविता स्त्री की मधुर वाणी के समान उपदेशपरक होती है। इस प्रकार कवि प्रत्यक्षतः तो उपदेश

नहीं देता किंतु वह अप्रत्यक्षतः मधुरवाणी में अपना संदेश पहुँचाकर जीवन को सार्थक बनाने का उपदेश देता है।

1.2.2 हिन्दी आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट काव्य प्रयोजन

हिन्दी आचार्यों ने काव्य प्रयोजन पर जो विचार व्यक्त किये हैं वे प्रायः संस्कृत आचार्यों के हैं -

1.2.2.1 गोस्वामी तुलसीदास

'रामचरितमानस' में तुलसीदास ने दो स्थानों पर काव्य प्रयोजन की चर्चा की है :

- 'स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा।'
- "कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई"
- राम सुकीरति भनिति भदेसा। असमंजस अस मोहि अँदेसा।।

यहाँ तुलसीदास जी काव्य के मुख्य दो प्रयोजन मानते हैं- स्वांतः सुख तथा लोक मंगल। उनके मत में वही कविता श्रेष्ठ होती है जो गंगा के समान सबका हित करने वाली हो।

1.2.2.2 मैथिलीशरण गुप्त

गुप्तजी काव्य का प्रयोजन केवल मनोरंजन नहीं अपितु उपदेश को स्वीकार करते हुए लिखते हैं-

"केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।

उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।"

इसी प्रकार वे 'कला कला के लिए' सिद्धान्त का खण्डन करते हुए कहते हैं कि कला लोकहित केलिए होनी चाहिए।

1.2.2.3 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य प्रयोजनों पर विस्तार से विचार किया है। वे काव्य का प्रमुख प्रयोजन रसानुभूति मानते हैं। "कविता का अन्तिम लक्ष्य जगत में मार्मिक पक्षों का प्रत्यक्षीकरण करके उसके साथ मनुष्य हृदय का सामंजस्य स्थापन है।"

कविता से केवल मनोरंजन के उद्देश्य का विरोध करते हुए वे लिखते हैं:

"मन को अनुरंजित करना उसे सुख या आनन्द पहुँचाना ही यदि कविता का अन्तिम लक्ष्य माना जाए तो कविता ही विलास की एक सामग्री हुई।..... काव्य का लक्ष्य है जगत और जीवन के मार्मिक पक्ष को गोचर रूप में लाकर सामने रखना।"

1.2.2.4 आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी

प्रसिद्ध विद्वान आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी साहित्य का लक्ष्य मानव हित एवं लोकमंगल मानते हैं -

"मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता, परमुखापेक्षिता से न बचा सके, जो उसकी आत्मा को तेजोद्दीप्त न कर सके, जो उसे परदुःखकातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।"

1.2.2.5 मुंशी प्रेमचन्द

मुंशी प्रेमचंद ने साहित्य को मानव विवेक को जाग्रत करनेवाला तत्व मानते हुए कहा-

'साहित्य का उद्देश्य हमारा मनोरंजन करना नहीं है। यह काम तो भाटों, मदारियों, विदूषकों और मसखरों का है। साहित्यकार का पथ इनसे बहुत ऊँचा है। वह हमारे विवेक को जाग्रत करता है, हमारी आत्मा को तेजोद्दीप्त बनाता है।'

1.2.3 पाश्चात्य समीक्षकों द्वारा निर्दिष्ट काव्य प्रयोजन

पाश्चात्य काव्यशास्त्र में काव्य-प्रयोजन को लेकर आलोचकों की तीन श्रेणियाँ निर्धारित की गयी हैं -

- कला, कला के लिए (होमर, लोंजाइनस, शिलर, स्वाइनबर्न, ऑस्कर वाइल्ड और डॉ.ब्रेडले इसके समर्थक रहे।)
- कला, जीवन के लिए (प्लेटो, रस्किन, टॉलस्टॉय आदि इसके समर्थक थे। इन्हें 'लोकमंगलवादी' भी कहा जाता है।)
- समन्वयवादी (कुछ ऐसे चिंतक भी रहे जो

काव्य का प्रयोजन जीवन और आनंद, दोनों को मानने के समर्थक थे। अरस्तू, होरेस, ड्राइडन, कॉलरिज, वड्र्सवर्थ, मैथ्यू आर्नल्ड और आई.ए. रिचड्र्स इसे मानने वाले चिंतक थे।)

उपर्युक्त मतों के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष पर हम पहूँच सकते हैं कि-

- काव्य प्रयोजन प्रत्येक व्यक्ति पर आधारित होता है।
- आनंद प्राप्ति काव्य का मुख्य प्रयोजन है जिसे रसानुभूति से प्राप्त किया जाता है।
- यश प्राप्ति, अर्थ प्राप्ति, व्यवहार ज्ञान, अमंगल का विनाश, लोकोपदेश आदि काव्य के मुख्य प्रयोजन हैं।

इन्हीं के आधार पर उदात्त काव्य का प्रमुख उद्देश्य लोकोत्तर आनंद प्रदान करना, चेतना का परिष्कार करना और जीवन मूल्यों की सथापना करना माना जा सकता है।

Critical Overview / अवलोकन

काव्य प्रयोजन व्यक्ति-केन्द्रित होता है। प्रत्येक व्यक्ति का काव्य प्रयोजन एक-सा नहीं होता। आनंद प्राप्ति, यश प्राप्ति, अर्थ प्राप्ति आदि काव्य के प्रमुख प्रयोजन माने जाते हैं।

Recap / पुनरावृत्ति

- काव्य प्रयोजन व्यक्ति केन्द्रित होता है।
- आनंद प्राप्ति काव्य का मुख्य प्रयोजन है जिसे रसानुभूति से प्राप्त किया जाता है।
- यश प्राप्ति, अर्थ प्राप्ति, व्यवहार ज्ञान, अमंगल का विनाश, लोकोपदेश आदि काव्य के मुख्य प्रयोजन हैं।
- कला, कला के लिए।
- काव्य का प्रमुख प्रयोजन रसानुभूति है।
- काव्य प्रयोजन प्रत्येक व्यक्ति पर आधारित होता है।
- कला, जीवन के लिए।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'धर्मृयं यशस्यं आयुष्यं हितं बुद्धि विवर्धनम्। लोको उपदेश जननम् नाट्यमेतद् भविष्यति।।' - यह किसकी व्याख्या है?
2. तुलसीदास के मत में काव्य के कितने प्रयोजन हैं?
3. 'उचित उपदेश' को काव्य का प्रयोजन माननेवाला विद्वान कौन है?
4. 'हमारे विवेक को जाग्रत करना तथा हमारी आत्मा को तेजोद्दीप्त बनाना कविता का उद्देश्य है।' - किसका कथन है?
5. 'कला, कला के लिए' का समर्थक कौन-कौन है?
6. समन्वयवादी चिंतकों के मतानुसार काव्य प्रयोजन से क्या तात्पर्य है?
7. समन्वयवादी चिंतकों का उदाहरण दीजिए।
8. 'रामचरितमानस' किसकी रचना है?

Answers / उत्तर

1. भरतमुनि
2. दो
3. मैथिलीशरण गुप्त
4. प्रेमचंद
5. होमर, लोंजाइनस, शिलर, स्वाइनबर्न, ऑस्कर वाइल्ड और डॉ.ब्रेडले इसके समर्थक रहे।
6. समन्वयवादियॉ काव्य का प्रयोजन जीवन और आनंद, दोनों को मानने के समर्थक थे।
7. अरस्तू, होरेस, ड्राइडन, कॉलरिज, वड्र्सवर्थ, मैथ्यू आर्नल्ड और आई.ए. रिचड्र्स
8. गोस्वामी तुलसीदास

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. काव्य प्रयोजन से क्या तात्पर्य है।
2. काव्य प्रयोजन संबंधी मतों की व्याख्या।
3. काव्य प्रयोजन संबंधी शुक्लजी का मत व्यक्त कीजिए।
4. काव्य प्रयोजन विषय पर पर्चा लिखिए।

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

इकाई 3 काव्य लक्षण और परिभाषाएँ

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- काव्य के लक्षणों से अवगत होता है
- काव्य की परिभाषाओं से परिचित होता है
- काव्य में अनिवार्य तत्वों का जानकारी प्राप्त करता है
- विभिन्न आचार्यों द्वारा दिए गए काव्य लक्षणों की जानकारी प्राप्त करता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्य के स्वरूप पर पर्याप्त विचार-विमर्श हुए हैं। जिनसे विभिन्न काव्य-संप्रदायों का उदय हुआ। काव्य के प्रमुख तत्वों की चर्चा करते हुए काव्य लक्षण निर्धारित करने का प्रयास भी हुआ। लेकिन विद्वानों में मतभेद होने के कारण काव्य की कोई सर्वमान्य परिभाषा प्रस्तुत करने में सफल नहीं हो पाए।

Keywords / मुख्य बिन्दु

विभिन्न विद्वानों द्वारा की गयी काव्य संबंधी परिभाषाएँ। काव्य केलिए अनिवार्य तत्वों की चर्चा।

Discussion / चर्चा

'काव्य लक्षण कविता की उन विशेषताओं या लक्षणों की तलाश है; जिनमें अतिव्याप्ति या अव्याप्ति दोष न हो; साथ ही उनमें नामोल्लेख इत्यादि व्यवहार-साधक उपायों की उपस्थिति न हो।'

संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्य के स्वरूप पर पर्याप्त विचार-विमर्श हुए। विभिन्न संप्रदायों के आधार पर काव्य लक्षण निर्धारित करने का प्रयास भी हुआ। लेकिन आचार्य अपने-अपने मत को प्रमुखता देने के कारण काव्य केलिए एक सर्वमान्य लक्षण निर्धारित नहीं कर पाए। कालक्रमानुसार आचार्यों द्वारा निर्धारित काव्य लक्षण पर हम यहाँ चर्चा करेंगे-

1.3.1 संस्कृत आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट काव्य लक्षण

1. **भामह (6वीं शताब्दी):** भामह ने अपने ग्रंथ 'काव्यालंकार' में काव्य की परिभाषा देते हुए लिखा है : 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' - (अर्थात् शब्द और अर्थ के 'सहित भाव' को काव्य कहलाता है। इस परिभाषा में 'सहित' शब्द अस्पष्ट है। उसके दो अर्थ हो सकते हैं : साहित्यिक सामंजस्य तथा

हित सहित।।

2. **आचार्य दण्डी (7 वीं शताब्दी):** आचार्य दण्डी ने अपने 'काव्यादर्श' में काव्य की निम्नलिखित परिभाषा दी - 'शरीरंतावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।' (अर्थात् इष्ट अर्थ से युक्त पदावली तो काव्य का शरीर मात्र है। दण्डी केवल शब्दार्थ को काव्य नहीं मानते। वे अलंकारवादी आचार्य थे और अलंकार को काव्य की आत्मा मानते थे।

3. **आचार्य वामन (8 वीं शताब्दी):** रीति संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन ने अपने ग्रंथ 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' में काव्य की निम्न परिभाषा दी है- 'गुणालंकृतयो शब्दार्थयो काव्य शब्दो विद्यते'। (अर्थात् गुण और अलंकार से युक्त शब्दार्थ ही काव्य के नाम से जाना जाता है।

4. **आचार्य मम्मट (12 वीं शताब्दी):** संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रमुख विद्वान आचार्य मम्मट ने अपने ग्रंथ 'काव्यप्रकाश' में काव्य की निम्न परिभाषा दी है : 'तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणवनलंकृति पुनः क्वापि'। (अर्थात् काव्य वही होता है जिसमें शब्द और अर्थ दोष से रहित हो, गुण से मंडित हो तथा कभी-कभी अलंकार से रहित भी हो सकता है। इस परिभाषा के आधार पर काव्य के निम्न लक्षण सामने आते हैं-

शब्दार्थौ - काव्य शब्द और अर्थ का योग है।

अदोषौ - काव्य दोष रहित होना चाहिए।

सगुनौ - काव्य गुण युक्त होना चाहिए।

अनलंकृति पुनः क्वापि- काव्य में अलंकार अनिवार्य नहीं है।

5. **आचार्य विश्वनाथ (14 वीं शताब्दी):** 'साहित्यदर्पण' के रचयिता आचार्य विश्वनाथ ने मम्मट के काव्य लक्षण का तर्क पूर्ण खण्डन किया है। उन्होंने काव्य की निम्न परिभाषा प्रस्तुत की है - 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' (अर्थात् रस से पूर्ण वाक्य ही काव्य है। इस परिभाषा से स्पष्ट है कि आचार्य विश्वनाथ ने रस को ही काव्य का प्रमुख तत्व माना है।

6. **पण्डितराज जगन्नाथ (17 वीं शताब्दी):** पंडितराज जगन्नाथ ने अपने ग्रंथ 'रस गंगाधर' में काव्य लक्षण को निम्न शब्दों में व्यक्त किया : 'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः कव्यम्' (अर्थात् रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करनेवाला शब्द ही काव्य है। इस परिभाषा में रमणीय शब्द अस्पष्ट है।

हिन्दी आचार्यों के काव्य लक्षण

हिन्दी के रीतिकालीन आचार्यों ने संस्कृत काव्यशास्त्र के आधार पर अनेक काव्य लक्षण प्रस्तुत किए, अतः उनमें मौलिकता का अभाव है। आधुनिक युग के जिन हिन्दी समीक्षकों ने काव्य पर मौलिक ढंग से विचार किया है, इनमें सर्वप्रमुख हैं -

1. **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल:** शुक्लजी ने अपने निबन्ध संग्रह चिंतामणि भाग 1 के निबन्ध 'कविता क्या है' में काव्य की परिभाषा देते हुए लिखा है- 'जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, हृदय की इसी मुक्ति साधना केलिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं।' हृदय की मुक्तावस्था से उनका अभिप्राय है हृदय का अपने-पराए की भावना से मुक्त होना। शुक्लजी 'रसात्मकता' और 'भावात्मकता' को काव्य का प्रधान तत्व मानते हैं।

2. **आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी:** 'किसी प्रभावोत्पादक और मनोरंजक लेख, बात या वक्तृता का नाम कविता है।' इस अर्थ में कविता अत्यंत व्यापक हो जाती है। वह गद्य और पद्य दोनों ही रूपों में हो सकती है तथा उनके दो गुण होने चाहिए- प्रभाव डालने की क्षमता और आनंद प्रदान करने की शक्ति।

3. **जयशंकर प्रसाद:** "काव्य आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति है जिसका संबंध विश्लेषण या विज्ञान

से नहीं है।"

4. **बाबू गुलाबराय :** "काव्य संसार के प्रति कवि की भाव प्रधान मानसिक प्रतिक्रियाओं की श्रेय को प्रेय देने वाली अभिव्यक्ति है।"

5. **महादेवी वर्मा:** "कविता कवि विशेष की भावनाओं का चित्रण है और वह चित्रण इतना ठीक है कि उनकी जैसी ही भावनाएँ दूसरे के हृदय में आविर्भूत हो जाती हैं।'

पाश्चात्य समीक्षकों द्वारा निर्दिष्ट काव्य लक्षण

ड्राइडन - स्पष्ट संगीत कविता है।

वर्ड्सवर्थ - कविता हमारे प्रबल भावों का सहज उच्छलन है।

शेल्ली - कविता सुखद और उत्कृष्ट मस्तिष्क द्वारा सुखद और उत्कृष्ट क्षणों का संग्रह है।

मैथ्यू आर्नोल्ड - सत्य तथा काव्य सौंदर्य के सिद्धान्तों द्वारा निर्धारित उपबंधों के अधीन जीवन की समीक्षा का नाम काव्य है।

कालरिज - "सर्वोत्तम व्यवस्था में सर्वोत्तम शब्द ही कविता है।"

इन परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि काव्य को एक सर्वमान्य परिभाषा दे पाना कठिन है, क्योंकि कविता प्रत्येक काल में अपना रूप बदलती है। विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से काव्य की परिभाषा देते रहते हैं। फिर भी हम कह सकते हैं कि मानवीय अनुभूतियों की भाषा के माध्यम से की गई रसात्मक एवं कलात्मक अभिव्यक्ति ही कविता है।

Critical Overview / अवलोकन

काव्य को एक निश्चित परिभाषा के अंतर्गत रखना कठिन है। समय-समय पर काव्य संबंधी दृष्टिकोण बदलता रहता है। फिर भी काव्य को अपनी-अपनी परिभाषा के अंतर्गत रखने का प्रयास विद्वानों ने किया है। विद् वानों की यह परिभाषाएँ अपने आप में पूर्ण तो नहीं, कहा जा सकता। फिर भी सभी परिभाषाओं में से काव्य की व्यक्त परिभाषा निकलता भी है।

Recap / पुनरावृत्ति

- संस्कृत आचार्यों ने शब्द, अर्थ, गुण, अलंकार आदि को काव्य में महत्वपूर्ण बताया।
- हिन्दी आचार्यों ने काव्य को आत्मा, संकल्पना, भावना आदि से जोड़ने का कार्य किया।
- पाश्चात्य विद्वानों ने कविता का संबंध जीवन से जोड़कर संगीतात्मकता, मनोरंजन आदि में कविता के महत्त्व को स्वीकार किया।
- कविता प्रत्येक काल में अपना रूप बदलती है।
- मानवीय अनुभूतियों की भाषा के मध्यम से की गई रसात्मक एवं कलात्मक अभिव्यक्ति ही कविता है।
- रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करनेवाला शब्द ही काव्य है।
- शुक्लजी 'रसात्मकता' और 'भावात्मकता' को काव्य का प्रधान तत्व मानते हैं।

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणवनलंकृति पुनः क्वापि' - यह किसकी व्याख्या है?
2. आचार्य दण्डी ने किसे काव्य का अनिवार्य तत्त्व माना?
3. 'हृदय की मुक्तावस्था को रस दशा' कौन मानता है?
4. 'काव्यालंकार' किसकी रचना है?
5. काव्य के तत्व पर 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' परिभाषा किसने दिया है?
6. "सर्वोत्तम व्यवस्था में सर्वोत्तम शब्द ही कविता है।" काव्य के तत्व पर यह किसका कथन है?
7. 'काव्यप्रकाश' किसका ग्रंथ है?

Answers / उत्तर

1. आचार्य मम्मट
2. अलंकार को
3. आचार्य रामचन्द्रशुक्ल
4. भामह
5. आचार्य विश्वनाथ
6. कॉलरिज
7. आचार्य मम्मट

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. काव्य लक्षण संबंधी भारतीय दृष्टिकोण पर प्रकाश डालिए।
2. काव्य लक्षण संबंधी हिन्दी विद्वानों के मत व्यक्त कीजिए।
3. काव्य लक्षण संबंधी प्रमुख पाश्चात्य परिभाषाएँ लिखिए।
4. काव्य लक्षण संबंधी विभिन्न मतों की चर्चा कीजिए।

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

इकाई 4 काव्य हेतु

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- काव्य के निमित्त कारण की जानकारी प्राप्त करता है
- काव्य हेतु संबंधी विभिन्न विद्वानों की जानकारी प्राप्त करता है
- काव्य हेतु के स्वरूप समझता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

काव्य रचना करने का सामर्थ्य हर व्यक्ति में नहीं होता। काव्य के निमित्त कारण को काव्य हेतु कहते हैं। भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र में काव्य हेतु पर पर्याप्त चर्चा हुई है। विभिन्न आचार्यों ने इस विषय पर अपना - अपना मत व्यक्त किया है। किसी भी प्रकार की कार्य करने केलिए प्रतिभा होनी चाहिए। प्रतिभा से व्यक्ति को सृजनात्मक कार्य करने में आसानी होती है। निरंतर अभ्यास से प्रतिभा को बढ़या थी जा सकता है। इन बातों पर आचार्यों ने अपना मत प्रकट किया है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गयी काव्य हेतु संबंधी परिभाषाएँ। काव्य हेतु के स्वरूपों की चर्चा।

Discussion / चर्चा

हेतु का शाब्दिक अर्थ है कारण। अतः काव्य हेतु का अर्थ हुआ काव्य की उत्पत्ति का कारण। काव्य 'कार्य' है और हेतु 'कारण'। काव्य के निमित्त कारण को काव्य हेतु कहा जाता है।

1.4.1 काव्य हेतुओं का स्वरूप

भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य हेतु पर पर्याप्त विचार किया गया है और काव्य के तीन हेतु माने गए हैं- प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास। इनमें से प्रतिभा सर्वप्रमुख काव्य हेतु है।

1.4.1.1 प्रतिभा

प्रतिभा वह शक्ति है जो किसी व्यक्ति को काव्य रचना में समर्थ बनाती है। इसलिए इसे कवित्व का बीज माना जाता है। प्रतिभा को जन्मजात शक्ति मानी जाती है। आचार्य राजशेखर ने प्रतिभा के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है - 'सा शक्तिः केवल काव्य हेतुः।'

आचार्य भट्टतौत्त के अनुसार प्रतिभा उस प्रज्ञा का नाम है जो नित नवीन रसानुकूल विचार उत्पन्न करती है: 'प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मताः'।

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

आचार्य वामन का मत है कि 'कवित्व बीजं प्रतिभानं कवित्वस्य बीजं प्रतिभा जन्म से प्राप्त संस्कार है जिसके बिना काव्य रचना सम्भव नहीं है।

आचार्य मम्मट ने प्रतिभा को एक नया नाम दिया। वे इसे 'शक्ति' कहते हैं और इसे काव्य का बीज स्वीकार करते हैं जिसके बिना काव्य की रचना असंभव बतायी - 'शक्तिः कवित्व बीज रूपः संस्कार विशेषः'।

आचार्य राजशेखर के मत में 'प्रतिभा व्युत्पत्ति मिश्रः समवेते श्रेयस्यौ इति' (अर्थात् प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनों समवेत रूप में काव्य के श्रेयस्कर हेतु हैं। वे प्रतिभा के दो भेद स्वीकारते हैं- कारयित्री और भावयित्री। कारयित्री प्रतिभा जन्मजात होती है तथा इसका संबंध कवि से हैं। भावयित्री प्रतिभा का संबंध सहृदय, पाठक या आलोचक से हैं।

आचार्यों ने प्रतिभा का जो स्वरूप यहाँ स्पष्ट किया है उससे हम निम्न निष्कर्ष निकाल सकते हैं:

1. प्रतिभा काव्य का मूल हेतु है।
2. यह ईश्वर प्रदत्त शक्ति है।
3. प्रतिभा नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा है।
4. प्रतिभा के बल पर ही कवि अपूर्व शब्दों, अपूर्व भावों, अलंकारों, उक्ति वैचित्र्य आदि का विधान करता है।

1.4.1.2 व्युत्पत्ति

व्युत्पत्ति का शाब्दिक अर्थ है निपुणता, पांडित्य या विद्वत्ता। ज्ञान की उपलब्धि को भी व्युत्पत्ति कहा गया है। विद्वानों का मत है कि साहित्य के गहन चिन्तन-मनन से कवि की उक्ति में सौन्दर्य का समावेश हो जाता है और उसकी रचना सुव्यवस्थित हो जाती है।

राजशेखर के अनुसार- उचितानुचित विवेकौ व्युत्पत्तिः। (अर्थात् उचित-अनुचित का विवेक ही व्युत्पत्ति है।

रूद्रट ने यह बताया है कि छन्द, व्याकरण, कला, पद और पदार्थ के उचित-अनुचित का सम्यक् ज्ञान ही व्युत्पत्ति है।

आचार्य मम्मट ने व्युत्पत्ति को एक नया नाम दिया है - निपुणता। यह निपुणता चराचर जगत के निरीक्षण और काव्य आदि के अध्ययन से प्राप्त होती है।

संस्कृत आचार्यों ने व्युत्पत्ति को काव्य हेतुओं में दूसरा स्थान दिया है। व्युत्पत्ति के बल पर ही कोई व्यक्ति यह निर्णय कर पाता है कि किस स्थान पर किस शब्द का प्रयोग उचित होगा। सच तो यह है कि प्रतिभा और व्युत्पत्ति समवेत रूप में ही काव्य रचना के हेतु हैं। जैसे लावण्य के बिना रूप फीका लगता है वैसे ही रूप के बिना लावण्य भी आकर्षक नहीं लगता। लोक और शास्त्र का अध्ययन कवि को त्रुटियों से बचाता है।

1.4.1.3 अभ्यास

काव्य निर्माण का तीसरा हेतु अभ्यास है।

भामह ने लिखा है कि शब्दार्थ के स्वरूप का ज्ञान करके सतत अभ्यास द्वारा उसकी उपासना करनी चाहिए, साथ ही अन्य कवियों के कृतित्व का अध्ययन भी करना चाहिए। जिससे अभ्यास नित्यप्रति दृढ़ होता जाए।

आचार्य वामन ने भी अभ्यास को महत्त्व देते हुए लिखा है-'अभ्यासोहि कर्मसु कौशलं भावहिति।' (अर्थात् अभ्यास के द्वारा ही कवि कर्म में कुशलता प्राप्त की जा सकती है।

आचार्य दण्डी ने तो अभ्यास को ही काव्य का प्रमुख हेतु माना है। वे तो यहाँ तक कहते हैं कि प्रतिभा और व्युत्पत्ति के अभाव में केवल अभ्यास से ही काव्य रचना में कोई कुशल हो सकता है। सरस्वती की साधना से और शास्त्रों के श्रवण से कोई भी व्यक्ति सफल कवि बन सकता है। दण्डी की यह धारणा अन्य आचार्यों ने स्वीकार नहीं की।

1.4.2 काव्य हेतुओं के संदर्भ में पाश्चात्य मत

1.4.2.1 प्लेटो

प्लेटो ने 'प्रेरणा' को काव्य हेतु माना है और यह

मत प्रतिपादित किया है कि प्रेरणा के अभाव में कोई स्फुरण सम्भव नहीं है।

1.4.2.2 अरस्तू

इन्होंने प्रतिभा को महत्व दिया है और कहा कि प्रतिभा जन्मजात होती है।

1.4.2.3 होरेस

होरेस ने प्रतिभा के साथ - साथ अभ्यास को भी महत्व दिया है।

1.4.2.4 बेनदेतो क्रोच

क्रोचे ने स्वयं प्रकाश ज्ञान (Intuition) और बाह्य व्यंजना (Expression) को महत्त्व देते हुए प्रतिभा और अभ्यास को काव्य हेतु के रूप में विशेष महत्त्व प्रदान किया है।

1.4.2.5 टी.एस.इलियट

महत् रचना तभी जन्म लेती जब प्रौढ़ सभ्यता, प्रौढ़ भाषा और प्रौढ़ कलाकार एक साथ जुड़े हो। प्रौढ़ता से उनका तात्पर्य 'अभ्यास' से हैं। प्रतिभा की महत्ता भी उन्होंने स्वीकार की है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रतिभा व्युत्पत्ति और अभ्यास ही प्रमुख काव्य हेतु हैं, किन्तु प्रतिभा सर्वप्रमुख है जिसे व्युत्पत्ति और अभ्यास से निरन्तर निखारा जा सकता है। वस्तुतः ये तीनों समन्वित रूप में ही काव्य के हेतु हैं जिन्हें अलग-अलग नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार पानी को बार-बार छानने से वह निर्दोष हो जाता है और बर्तन को बार-बार मांजने से वह चमक उ'ता है उसी प्रकार व्युत्पत्ति और अभ्यास से प्रतिभा को निर्दोष और आकर्षक बनाया जा सकता है।

Critical Overview / अवलोकन

काव्य का निमित्त कारण है काव्य हेतु। इसके बिना काव्य रचना असंभव है। काव्य हेतुओं का स्वरूप मुख्यतः तीन हैं - प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास। इन तीनों का सम्यक रूप से उदात्त काव्य का जन्म होता है।

Recap / पुनरावृत्ति

- काव्य निर्माण का निमित्त कारण है काव्य हेतु
- काव्य हेतु के तीन स्वरूप होते हैं - प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास
- प्रतिभा काव्यहेतुओं में सर्वप्रमुख है जिसे व्युत्पत्ति और अभ्यास से निरन्तर समन्वित करना आवश्यक है
- काव्य के निमित्त कारण को काव्य हेतु कहा जाता है
- व्युत्पत्ति का शाब्दिक अर्थ है निपुणता, पांडित्य या विद्वत्ता
- काव्य 'कार्य' है और हेतु 'कारण'
- आचार्य मम्मट ने प्रतिभा को 'शक्ति' कहते हैं
- कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा के दो भेद हैं

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. हेतु का शाब्दिक अर्थ क्या है?
2. आचार्यों ने मुख्यतः काव्य हेतुओं के कितने भेद माने हैं?
3. आचार्य राजशेखर के अनुसार प्रतिभा के कितने भेद हैं?
4. कव्यहेतुओं में किसको कवित्व का बीज माना जाता है?
5. प्रतिभा के दो भेद क्या-क्या हैं?
6. व्युत्पत्ति का शाब्दिक अर्थ क्या है?
7. अभ्यास को ही काव्य का प्रमुख हेतु माननेवाला आचार्य कौन हैं?

Answers / उत्तर

1. कारण
2. तीन
3. दो
4. प्रतिभा को
5. कारयित्री और भावयित्री
6. व्युत्पत्ति का शाब्दिक अर्थ है निपुणता, पांडित्य या विद्वत्ता
7. आचार्य दण्डी

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. काव्य हेतुओं के स्वरूप पर चर्चा कीजिए।
2. प्रतिभा के कितने भेद हैं? वे क्या-क्या हैं?
3. काव्य हेतुओं में व्युत्पत्ति के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
4. काव्य हेतुओं में अभ्यास का क्या महत्व है?

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ वाली

इकाई 5 काव्य स्वरूप

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- काव्य के आंतरिक एवं बाह्य स्वरूपों की जानकारी प्राप्त करती है
- स्वरूप के आधार पर काव्य के विभिन्न भेदों को समझता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

काव्य के मुख्यत दो पक्ष होते हैं। आंतरिक पक्ष और बाह्य पक्ष। काव्य के आंतरिक एवं बाह्य पक्षों की जानकारी कवि केलिए नितांत आवश्यक है। उदात्त काव्य की सृष्टि इन तत्वों पर निर्भर रहती है। स्वरूप के आधार पर काव्य के विभिन्न प्रकार हैं। हरेक का अपना अलग स्वरूप एवं विशेषताएँ होती हैं। प्रत्येक की रचना केलिए इन सभी बातों की जानकारी कवि केलिए अनिवार्य है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

काव्य के आंतरिक एवं बाह्य पक्षों का विश्लेषण। काव्य के विभिन्न भेदों की चर्चा।

Discussion / चर्चा

काव्य का अर्थ अत्यंत व्यापक एवं वैविध्यपूर्ण है। भाषा के माध्यम से विचाराभिव्यक्ति का सबसे बड़ा साधन है काव्य। काव्य के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए हम इसे दो उपशीर्षक में बाह्य स्वरूप और आंतरिक स्वरूप में विभक्त कर सकते हैं-

1.5.1 बाह्य स्वरूप

काव्य के बाह्य स्वरूप के अंतर्गत निम्नलिखित छः तत्वों का समावेश किया गया है -

1.5.1.1 लय

लय ही हमारे जीवन का आधार है। प्रकृति के हर कार्य में जैसे सूर्योदय, सूर्यास्त, ऋतुओं का आना - जाना आदि में भी लय के दर्शन किए जा सकते हैं। भाषा के प्रवाह में उतार चढ़ाव होते रहते हैं और इन्ही उतार-चढ़ावों के परिणाम स्वरूप लय का जन्म होता है। कविता में लय के प्रयोग से विशेष प्रभाव उत्पन्न होता है। यदि यह कहा जाए कि कविता का आनंद एक सीमा तक लय पर ही निर्भर करता है तो अतिश्योक्ति न होगी। शब्दों को एक विशेष क्रम संयोजन प्रदान करने से कविता में स्वभावतः लय आ जाता है उदाहरण-

"नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ बन बीच गुलाबी रंग"

- कामायनी

उपर्युक्त पंक्तियों में शब्द संयोजन बहुत ही अच्छे ढंग से किया गया है। किसी भी शब्द का स्थान बदल देने से लय भंग हो जाता है।

1.5.1.2 तुक

सामान्यतया आदिकाल से ही हिन्दी कविता तुकांत होती आई है। संस्कृत में कविता प्रायः अतुकांत होती है। तुकांत होने के कारण कविता में गेयता आ जाती है। आधुनिक हिन्दी कविता प्रायः अतुकांत ही है। इस से यह बात तो स्पष्ट हो जाती है कि कविता का तुकांत होना अनिवार्य नहीं है। पर तुकांत कविता जैसे दोहा, चौपाई, कुंडलियां, कवित्त, सवैया आदि को स्मरण करना आसान होता है।

1.5.1.3. छंद

छंदों का निर्धारण किसी एक पंक्ति या चरण में दिए गए वर्ण शब्द मात्राओं आदि के आधार पर किया जाता है। मध्य युग तक की संपूर्ण हिन्दी कविता विभिन्न चरणों में ही लिखी जाती थी। आज की कविताओं में भी आवश्यकतानुसार छंद बना कर उनमें मात्राओं के संयोजन की परिपाटी चल पड़ी है।

1.5.1.4. शब्द योजना

कविता का सौंदर्य उपर्युक्त शब्द चयन द्वारा ही निखरता है। भारतीय काव्यशास्त्र में 3 शब्द शक्तियों का निरूपण है - अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। (अभिधा सामान्य अर्थ का, लक्षणा संबंधित अर्थ का, तथा व्यंजना दोनों ही अर्थों में से विलक्षण अर्थ का बोध कराती है) व्यंजना की बहुलता से कविता में चार चाँद लग जाते हैं।

1.5.1.5 चित्रात्मक भाषा

जनमानस में कविता की लोकप्रियता जिन कारणों से बढ़ी है उनमें एक कारण चित्रात्मक भाषा का प्रयोग भी है। चित्रात्मक भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके प्रयोग से थोड़े से शब्दों में ही अधिक भावों का प्रकाशन किया जा सकता है। उदाहरणार्थ -

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावे, जैसे उड़ी जहाज को पंछी फिर जहाज पर आवे।।

1.5.1.6. अलंकार

अलंकारों की महिमा का वर्णन करते हुए आचार्यों ने कहा है कि अलंकार के बिना कविता संभव नहीं है। वैसे तो अलंकार की कई परिभाषाएँ हो सकती हैं लेकिन सर्वमान्य तथ्य यह है कि जिस प्रयोग से अभिव्यक्ति में विशेष सौंदर्य और अर्थवत्ता आ जाती है उसे अलंकार कहते हैं।

कवि कभी किसी बात को प्रत्यक्ष न कहकर उसे घुमा-फिराकर कहता है तो कभी साम्य स्थापित करता है। वह कभी तुलना करता है तो कभी भाव का अधिक उत्कर्ष देने के लिए बात को बढ़ा चढ़ाकर प्रस्तुत करता है। यह सब अलंकार के ही भिन्न भिन्न विधान हैं। अलंकार की सामान्यतः दो श्रेणियाँ हैं- शब्दालंकार और अर्थालंकार। इन अलंकारों के अनेक भेद व उपभेद हैं।

1.5.2 आंतरिक स्वरूप

कविता के आंतरिक तत्व के माध्यम से ही कविता की आत्मा को समझा जा सकता है। काव्य में अनुभूति और भावों की प्रमुखता का विशेष महत्व है। इन का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है -

1.5.2.1 अनुभूति की तीव्रता

यह सर्वमान्य उक्ति है कि गद्य का संबंध मस्तिष्क से है और काव्य का संबंध हृदय से। इस प्रकार का संबंध अनुभूति में तीव्रता के कारण होता है। सामान्य जनों की अपेक्षा कवि बहुत अधिक संवेदनशील होता है। वाल्मीकि ने भी जब क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक को मारे जाते हुए देखा था तो उनके मुख से शिकारी के प्रति शाप के रूप में श्लोक ही फूट पड़ा था। इससे इस बात की पुष्टि होती है की कविता हृदय की वस्तु है।

वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
उमड़ आंखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।।

जीवन के सुख-दुख के प्रति कवि की प्रतिक्रिया कविता के रूप में फूट पड़ती है।

1.5.2.2 अनुभूति की व्यापकता

प्रसिद्ध उक्ति है - जहाँ न पहुँचे रवि वहाँ पहुँचे कवि - कहने का तात्पर्य यह है कि कविता में अनुभूति की तीव्रता के साथ-साथ व्यापकता भी विद्यमान होती है। कई बार सामान्य जन वहाँ तक नहीं पहूँच पाते जहाँ पर कवि का ध्यान पहूँच जाता है। यह वस्तुएँ, दृश्य या घटनाएँ कवि के हृदय में जो भाव जागृत करते हैं उसे ही अनुभूति की व्यापकता कहते हैं।

1.5.2.3 कल्पनाशीलता

कविता कहने का ढंग वास्तव में कविता की संजीवनी शक्ति है, जो उसमें प्राण संचार करती है। कविता की रचना करते समय कुछ ऐसी शब्दावली का प्रयोग करते हैं जो हमारी कल्पना शक्ति को बढ़ाती है। विविध अलंकारों का सौंदर्य कल्पना पर ही आधारित होता है।

1.5.2.4 रसात्मकता और सौंदर्यबोध

शब्द और अर्थ कविता के शरीर हैं तो रस कविता के प्राण। रस को कविता की आत्मा भी कहा जाता है। कविता को पढ़ने पर जागृत होने वाली आनंदमयी अनुभूति ही रस है। रसास्वादन ही कविता का परम ध्येय माना जाता है। सौन्दर्यबोध कविता में अनुशीलन उत्पन्न करता है।

1.5.2.5 भावों का उदारीकरण

कविता का उद्देश्य उपदेश देना नहीं कवि जीवन के विभिन्न उलझनों को अपनी कविता में इसलिए उतारता है कि हमें निर्दयता, क्रूरता, धूर्तता, कुटिलता, अभिमान, दंभ आदि के प्रति घृणा उत्पन्न हो। फिर हम धीरे-धीरे सत्यता, सहृदयता, सदस्यता, सहिष्णुता आदि के प्रति आकृष्ट हो। इसी को भावों का उदारीकरण कहते हैं। इससे काव्य में गरिमा भी आ जाती है।

उपर्युक्त अध्ययन से हमने पाया काव्य के विभिन्न स्वरूप हैं। वे साहित्य में प्रयुक्त होकर उसे एक नया आयाम प्रदान करते हैं। वे साहित्य को प्रसिद्धि दिलाने में सहायता करते हैं। इसमें अलंकार रस सौंदर्य भाव आदि की विशेष भूमिका होती है। जिसके प्रयोग से साहित्य के सौंदर्य में वृद्धि होती है।

1.5.3 स्वरूप के आधार पर काव्य के भेद

काव्य के मुख्यतः दो भेद होते हैं। श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य।

श्रव्य काव्य वह है जो कानों से सुना अथवा मुख से पढ़ा जाता है। दृश्य काव्य वह है जो अभिनय के माध्यम से देखा सुना जाता है जैसे नाटक, एकांकी आदि। श्रव्य काव्य के दो भेद होते हैं प्रबंध काव्य और मुक्तक काव्य। प्रबंध काव्य में कोई धारावाहिक कथा होती है। (अर्थात् किसी कथायुक्त श्रव्य को प्रबंध काव्य कहा जाता है। इसमें किसी घटना अथवा क्रिया का वर्णन काव्यात्मक रूप में होता है। जयशंकर प्रसाद की रचना 'कामायनी' को इसका एक श्रेष्ठ उदाहरण माना जाता है।

प्रबंध काव्य के अंतर्गत महाकाव्य, खंडकाव्य और आख्यान गीतियाँ आती हैं।

1.5.3.1 महाकाव्य

प्राचीन आचार्यो के अनुसार महाकाव्य में जीवन का व्यापक चित्रण होता है। इसकी कथा इतिहास प्रसिद्ध होती है। इसका नायक उदात्त और महान चरित्र वाला होता है। इसमें वीर, श्रृंगार और शांत रस में से कोई एक रस प्रधान तथा शेष रस गौण होते हैं। यह प्रायः लंबे कथानक पर आधारित तथा सर्गबद्ध होता है। इसमें कम से कम 8 सर्ग का होना ज़रूरी है। महाकाव्य की कथा में धारावाहिकता तथा हृदय को भाव विभोर करने वाले मार्मिक प्रसंगों का समावेश भी होना चाहिए। आधुनिक युग में महाकाव्य के प्राचीन प्रतिमानों में परिवर्तन हुए हैं। इतिहास के स्थान पर मानव जीवन की कोई भी घटना तथा समस्या इसका विषय हो सकती है। महान परुष के स्थान पर समाज का कोई भी व्यक्ति इसका नायक हो सकता है। परंतु उस पात्र में लोक आदर्श की क्षमता का होना अनिवार्य है। हिन्दी के कुछ प्रसिद्ध महाकाव्य हैं - 'पद्मावत','श्रीरामचरितमानस', 'साकेत', 'प्रियप्रवास', 'कामायनी', 'उर्वशी', 'लोकायतन' आदि।

1.5.3.2 खंडकाव्य

खंडकाव्य में किसी लोकनायक के जीवन के व्यापक चित्रण के स्थान पर उसके जीवन के किसी एक पक्ष अथवा रूप का संक्षिप्त चित्रण होता है। उसे महाकाव्य का लघु रूप अथवा एक सर्ग नहीं समझना चाहिए। खंडकाव्य की अपनी पूर्णता होती है। संपूर्ण रचना में प्रायः एक ही शब्द प्रयुक्त होता है। 'पंचवट ी', 'जयद्रथ वध', 'नहुष', 'सुदामा चरित', 'पथिक', 'गंगावतरण', 'हल्दीघाटी' आदि हिन्दी के कुछ प्रसिद्ध खंडकाव्य हैं।

1.5.3.3 आख्यान गीतियाँ

महाकाव्य और खंडकाव्य से भिन्न प्रकार का गीत है - आख्यान गीतीका। इसमें वीरता, साहस, पराक्रम, बलिदान, प्रेम, करूणा, आदि की प्रेरक घटनाएँ चित्रों के माध्यम से कही जाती है। इसकी भाषा सरल, स्पष्ट और रोमांचकारी होती है। गीतात्मकता और नाट कीयता इसकी विशेषताएँ हैं। 'झांसी की रानी', 'रंग में भंग', 'विकट भट', आदि रचनाएँ आख्यान गीतियों के अंतर्गत आती हैं।

1.5.3.4 मुक्तक काव्य

मुक्तक काव्य, महाकाव्य और खंडकाव्य से भिन्न प्रकार का होता है। उसमें एक अनुभूति एक भाव या कल्पना का चित्रण होता है। महाकाव्य और खंडकाव्य जैसी धारावाहिकता न होने पर भी इनका वर्ण्य विषय अपने में पूर्ण होता है। उनके पदों का आपस में कोई संबंध नहीं होता, प्रत्येक पद या छंद स्वतंत्र होता है। जैसे विहारी और रहीम के दोहे तथा सूर और मीरा के पद। मुक्त रचनाओं को भी दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है पाठ्य मुक्तक तथा गेय मुक्तक।

1.5.3.4.1 पाठ्य मुक्तक

पाठ्य मुक्तक रचनाओं में विषय की प्रधानता होती है। ये विभिन्न विषयों पर लिखी गई छोटी - छोटी विचार प्रधान रचनाएँ होती हैं। इनमें किसी प्रसंग को लेकर भावानुभूति का चित्रण होता है अथवा किसी विचार या रीति का वर्णनकिया जाता है। 'तार सप्तक' की रचनाएँ सुमित्रानंदन पंत की 'पतझड़' सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जी की 'भिक्षुक', 'वह तोड़ती पत्थर', आदि रचनाएँ इसी के अंतर्गत आती हैं।

1.5.3.4.2 गेय मुक्तक

इसमें भाव प्रवणता आत्माभिव्यक्ति सौन्दर्यमय कल्पना, संक्षिप्तता, संगीतात्मकता की प्रधानता होती हैं। कबीर, तुलसी, रहीम के भक्ति एवं नीति के दोहे तथा बिहारी, मतिराम, देव आदि की रचनाएँ इसी कोटि में आती हैं।

उपरोक्त अध्ययन से हमें काव्य के विभिन्न स्वरूप की जानकारी मिली। उसमें मुक्तक काव्य, खंड काव्य, महाकाव्य जैसी अनेक विधाएँ हैं। निश्चित रूप से प्रत्येक विधा का अपना स्वरूप और संरचना है।

Critical Overview / अवलोकन

काव्य का बाहरी एवं आंतरिक सौन्दर्य काव्य को साहित्य में आयाम प्रदान करते हैं। काव्य में अलंकार, रस, सौंदर्य भाव आदि की विशेष भूमिका है जिसके प्रयोग से साहित्य के सौंदर्य में वृद्धि होती है। स्वरूप के आधार पर काव्य के भेदों की जानकारी भी कवि केलिए अनिवार्य है।

Recap / पुनरावृत्ति

- काव्य के बाहरी पक्ष
- काव्य के आंतरिक पक्ष
- स्वरूप के आधार पर काव्य के भेद
- पाठ्य मुक्तक रचनाओं में विषय की प्रधानता
- काव्य के मुख्यतः दो भेद होते हैं, श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य

- प्राचीन आचार्यों के अनुसार महाकाव्य में जीवन का व्यापक चित्रण होता है।
- खंडकाव्य में किसी लोकनायक के जीवन के व्यापक चित्रण के स्थान पर उसके जीवन के किसी एक पक्ष अथवा रूप का संक्षिप्त चित्रण होता है।
- मुक्तक काव्य, महाकाव्य और खंडकाव्य से भिन्न है।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. काव्य के कितने भेद होते हैं?
2. रामचरितमानस किस विधा की रचना है?
3. कबीर, तुलसी आदि के दोहे काव्य के किस श्रेणी में आते हैं?
4. महाकाव्य में कम-से-कम कितना सर्ग होना आवश्यक है?
5. काव्य के बाह्य स्वरूप के अंतर्गत कितने तत्वों का समावेश किया गया है?
6. काव्य के भेद कौन - कौन से हैं?
7. महाकाव्य के उदाहरण दीजिए।

Answers / उत्तर

1. दो
2. प्रबंध काव्य
3. गेय मुक्तक
4. आठ
5. छः तत्व
6. श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य
7. 'पद्मावत', 'श्रीरामचरितमानस', 'साकेत', 'प्रियप्रवास', 'कामायनी', 'उर्वशी', 'लोकायतन' आदि।

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. काव्य के बाह्य स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
2. काव्य के आंतरिक स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
3. काव्य के विभिन्न भेदों पर चर्चा कीजिए।
4. स्वरूप के आधार पर काव्य के विभिन्न भेदों की चर्चा कीजिए।

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

SGOU

इकाई 6 काव्य की आत्मा

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- काव्य का प्राणभूत तत्व संबंधी जानकारी प्राप्त करता है
- विभिन्न काव्यशास्त्रीय संप्रदायों को समझता है
- विभिन्न संप्रदायों एवं प्रवर्तकों के बारे में समझता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

प्राचीन काल से ही काव्य की आत्मा क्या है? इस विषय को लेकर आचार्यों के बीच चर्चाएं हुई हैं। फलस्वरूप विभिन्न काव्यशास्त्रीय संप्रदायों का उदय हुआ। विभिन्न आचार्यों ने इस विषय पर अपने-अपने मंतव्य व्यक्त किए। विभिन्न मतों के खंडन-मंडन हुए। इन संप्रदायों में से छः संप्रदाय सशक्त बने।

Keywords / मुख्य बिन्दु

काव्य की आत्मा, काव्यशास्त्र संबंधी विभिन्न संप्रदाय।

Discussion / चर्चा

'आत्मा' दर्शनशास्त्र का शब्द है, जिसे शरीर में प्राणतत्व की संज्ञा प्रदान की गयी है। जिस प्रकार प्राण के अभाव में शरीर का कोई महत्व नहीं है, उसी प्रकार काव्यात्मा के अभाव में काव्य निष्प्राण हो जाता है। इस प्रकार काव्य का प्राणतत्व या सारभूत तत्व ही काव्य की आत्मा है।

भारतीय काव्यशास्त्र में आत्मा शब्द का प्रयोग सबसे पहले आचार्य वामन ने किया था। उन्होंने रीति विवेचन के प्रसंग में कहा है- 'रीतिरात्मा काव्यस्य' (अर्थात् रीति काव्य की आत्मा है। उनसे पूर्व आचार्य दण्डी ने शब्दार्थ को काव्य का शरीर तथा दस गुणों को उसका प्राण कहा था। वामन के उपरांत आचार्य आनंदवर्धन ने 'काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति' कहकर ध्वनि को काव्य की आत्मा घोषित करने का प्रयास किया।

1.6.1 काव्यशास्त्र के विभिन्न संप्रदाय

काव्य की आत्मा पर विचार करते हुए काव्यशास्त्र में विभिन्न संप्रदायों का उदय हुआ। वे इसप्रकार हैं-

संप्रदाय	प्रवर्तक
1. रस संप्रदाय	- आचार्य भरतमुनि
2. रीति संप्रदाय	- आचार्य वामन
3. अलंकार संप्रदाय	- आचार्य भामह
4. ध्वनि संप्रदाय	- आचार्य आनन्दवर्धन
5. वक्रोक्ति संप्रदाय	- आचार्य कुंतक
6. औचित्य संप्रदाय	- आचार्य क्षेमेंद्र।

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

1.6.1.1 रस सिद्धांत

रस सिद्धांत भारतीय काव्यशास्त्र का प्राचीनतम सिद्धांत है, लेकिन इसे व्यापक प्रतिष्ठा बाद में प्राप्त हुई। रस सिद्धांत का प्रवर्तक आचार्य भरतमुनि हैं। उन्होंने अपने ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' में रस का सर्वांग निरूपण किया। 'रस' शब्द की व्युत्पत्ति 'रसस्यते असो इति रसाः' के रूप में की गई है; (अर्थात् जिसका आस्वादन किया जाए, वही रस है। काव्य या नाटक पढ़ते, सुनते या देखते समय सहृदय के हृदय में जो आनंदानुभूति उत्पन्न होती है उसे रस कहा जा सकता है।

1.6.1.2 रीति संप्रदाय

रीति शब्द की व्युत्पत्ति 'रिङ़' धातु से 'ऋ' प्रत्यय के योग से हुई है। उसका अर्थ है-मार्ग, पथ, गति, शैली आदि। आचार्य वामन ने रीति सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा की है। उन्होंने काव्यालंकार सूत्रवृत्ति में 'रीति' को काव्य की आत्मा घोषित की। वामन के मत में रीति काव्य की आत्मा है - रीतिरात्मा काव्यस्य। उनके अनुसार विशिष्ट पद-रचना, रीति है और गुण उसका विशिष्ट धर्म है। विशिष्ट पदरचना रीतिः। विशिष्ट शब्द को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं - विशेषो गुणात्मा। (अर्थात् 'विशिष्टता' गुण से आती है; गुणात्मक पदरचना रीति है। गुणात्मकता से उनका अभिप्राय ओज, प्रसाद, माधुर्य आदि काव्य गुणों से हैं। उक्त विवेचन से रीति की परिभाषा है- 'प्रसाद, ओज, माधुर्य आदि गुणों से युक्त पदरचना।'

1.6.1.3 अलंकार संप्रदाय

भारतीय काव्यशास्त्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं प्राचीन सिद्धांत है- अलंकार संप्रदाय। प्रत्येक काव्यशास्त्रीय आचार्यों ने किसी-न-किसी रूप में अलंकार को स्वीकार किया है। फिर भी इसके प्रवर्तक होने का श्रेय आचार्य भामह को दिया जाता है। इसे प्रतिष्ठित एवं पुष्ट करनेवाले आचार्यों में रुद्रट, जयदेव, दण्डी, उद्‌भट, विश्वनाथ, जगन्नाथ आदि प्रमुख हैं। इन आचार्यों ने भी अलंकार को काव्य की आत्मा घोषित की।

1.6.14. वक्रोक्ति संप्रदाय

वक्रोक्ति दो शब्दों की संधि से निर्मित शब्द है- वक्र और उक्ति। इसका शाब्दिक अर्थ है- ऐसी उक्ति जो सामान्य से अलग हो। टेढा कथन (अर्थात् जिसमें लक्षणा शब्द-शक्ति हो, वक्रोक्ति है। भामह ने वक्रोक्ति को एक अलंकार माना था। उनके परवर्ती कुन्तक ने वक्रोक्ति को एक सम्पूर्ण सिद्धान्त के रूप में विकसित कर काव्य के समस्त अंगों में इसको समाविष्ट कर लिया। इसलिए कुन्तक को वक्रोक्ति संप्रदाय का प्रवर्तक आचार्य माना जाता है। उनके अनुसार वक्रोक्ति केवल वाक्चातुर्य या युक्ति चमत्कार नहीं है, वह कवि-व्यापार अथवा कवि-कौशल है। उन्होंने रस को वक्रोक्ति का प्राण मानकर कल्पना के साथ भावना के महत्त्व को भी स्वीकार किया।

1.6.1.5. ध्वनि संप्रदाय

'ध्वन्यते इति ध्वनिः'

(अर्थात् जो व्यंग्यार्थ को ध्वनित करता है, वही ध्वनि है। भारतीय काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों में ध्वनि संप्रदाय का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। बड़े-बड़े आचार्यों ने अतार्किक रूप से साहित्य में ध्वनि की प्रतिष्ठा की है। इसका स्वरूप अत्यंत व्यापक है। इस सिद्धांत का प्रवर्तक आचार्य आनंदवर्धन है। आनंदवर्धन ने रस और ध्वनि का समन्वय किया है कि परवर्ती आचार्यों ने ध्वनियुक्त सरस काव्य को ही सर्वश्रेष्ठ कहा। ध्वनि द्वारा रस की ही व्यंजना की जाती है, अतः काव्य की आत्मा तो रस है, ध्वनि उसकी साधिका अवश्य मानी जा सकती है।

1.6.1.6 औचित्य संप्रदाय

औचित्य को काव्य में विशेष महत्व प्रदान करनेवाला आचार्य है- क्षेमेंद्र। वे मूलतः ध्वनिवादी आचार्य थे। परन्तु उन्होंने अपने ग्रंथ 'औचित्य विचारचर्चा' में औचित्य को व्यापक काव्य तत्व के रूप में प्रतिष्ठित कर उसे काव्य की आत्मा स्वीकृत की। उनका कथन है -

'औचित्यं रस सिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम।।'

(अर्थात् रस से सिद्ध काव्य पर स्थिर जीवित प्राणतत्व औचित्य है। औचित्य के बिना रस की सत्ता संभव नहीं है। रस को स्थिर जीवनी शक्ति प्रदान करनेवाला तत्व औचित्य है, वही काव्य का प्राणतत्व है। क्षेमेंद्र से पूर्व ही आचार्यों ने औचित्य पर विचार किया। भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में नायक के स्वरूप, अभिनय, वेशभूषा आदि केलिए औचित्य की आवश्यकता पर बल दिया।

Critical Overview / अवलोकन

काव्यशास्त्र में सर्वाधिक चर्चित विषय है - काव्य की आत्मा। आत्मा के अभाव में काव्य का काव्यत्व नष्ट हो जाता है। अर्थात् काव्य निष्प्राण हो जाता है। काव्य की आत्मा विषय को लेकर ही काव्यशास्त्र में विभिन्न संप्रदायों का उदय हुआ।

Recap / पुनरावृत्ति

- अलंकार संप्रदाय।
- रस संप्रदाय।
- रीति संप्रदाय।
- ध्वनि संप्रदाय।
- वक्रोक्ति संप्रदाय।
- औचित्य संप्रदाय।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'विशिष्ट पद रचना रीतिः' किसका कथन है?
2. औचित्य संप्रदाय के प्रवर्तक कौन हैं?
3. 'रीतिरात्मा काव्यस्य' किसकी उक्ति है?
4. संचारी भावों की संख्या कितनी मानी जाती है?
5. ध्वनि संप्रदाय के प्रवर्तक कौन है?
6. वक्रोक्ति किन - किन शब्दों की सोधि से बनी है?

Answers / उत्तर

1. वामन
2. क्षेमेंद्र
3. वामन
4. 33
5. आनंदवर्धन
6. वक्र और उक्ति

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. ध्वनि संप्रदाय पर विचार कीजिए।
2. वक्रोक्ति एवं औचित्य संप्रदाय पर टिप्पणी लिखिए।
3. रीति संप्रदाय की चर्चा कीजिए।
4. अलंकार संप्रदाय के महत्त्व पर विचार कीजिए।

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

SGOU

BLOCK 02

भारतीय काव्यशास्त्र के प्रमुख सम्प्रदाय

SOU

इकाई 1 रस संप्रदाय - सामान्य परिचय

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- भारतीय काव्यशास्त्र के छः संप्रदायों से अवगत होता है
- भारतीय काव्यशास्त्र के छः संप्रदायों के प्रवर्तक आचार्यों से परिचित होता है
- 'रस' शब्द से परिचित होता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

'काव्यशास्त्र' काव्य (साहित्य) का शास्त्र है। यह काव्य कृतियों के विश्लेषण के आधार पर समय-समय पर उद्भावित सिद्धांतों की ज्ञान राशि है। 'काव्यशास्त्र' के 'साहित्य शास्त्र', 'अलंकार शास्त्र' आदि पुराने नाम भी थे। भारतीय काव्यशास्त्र का एक महत्वपूर्ण सिट्धात है। रस संप्रदाय। इसके अनुसार काव्य का प्राण रस है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, काव्य संप्रदाय

Discussion / चर्चा

2.1.1 भारतीय काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य

संस्कृत में उपलब्ध काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के आधार पर भरतमुनि भारतीय काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य माने जाते हैं। भरतमुनि की प्रसिद्धि 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ के रचयिता के रूप में है। उनके व्यक्तित्व पर स्पष्ट रूप से किसी भी ग्रंथ में नहीं लिखा गया है। उनका जीवनकाल भी निश्चित रूप से किसी ग्रंथ में नहीं मिलता। पंडित राज जगन्नाथ भारतीय (संस्कृत) काव्यशास्त्रीय परंपरा के अंतिम आचार्य हैं, जिनका समय 17 वीं शती है।

2.1.2 काव्य संप्रदाय

भारतीय काव्यशास्त्र का प्रादुर्भाव अनेक आचार्यों के विचारों के समन्वय का परिणाम है। इनमें प्रत्येक आचार्य ने जिस विशेष काव्य तत्व पर अपने मत की पुष्टि की, वह उनके नाम के साथ 'संप्रदाय' के रूप में कहा जाने लगा। काव्य शास्त्री - संप्रदाय मुख्य रूप से छः हैं- (1) अलंकार संप्रदाय (2) रीति संप्रदाय, (3) ध्वनि संप्रदाय, (4) वक्रोक्ति संप्रदाय, (5) रस संप्रदाय और (6) औचित्य संप्रदाय। इन संप्रदायों को 'सिद्धांत' भी कहा जाता है। इनमें प्रत्येक संप्रदाय (सिद्धांत) के सर्जक और पोषक आचार्य उस

संप्रदाय के अंतर्गत आते हैं। इनमें प्रत्येक संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य हैं - भामह (अलंकार संप्रदाय), वामन (रीति संप्रदाय), आनन्दवर्धन (ध्वनि संप्रदाय), कुन्तक (वक्रोक्ति संप्रदाय), भरतमुनि (रस संप्रदाय) और क्षेमेन्द्र (औचित्य संप्रदाय)।

2.1.3 रस क्या है?

जीवन के मनोरंजक (आनंददायक) प्रसंगों में 'रस' का अनुभव होता है। आनंद ही रस है। प्रिय जनों से वार्तालाप करने, पुस्तकों के वर्णनों को पढ़ने, सिनेमा देखने तथा गीतों को सुनने से प्राप्त होनेवाला आनंद ही 'रस' है।

भारतीय साहित्य शास्त्र के ग्रंथों में रस का सर्वप्रथम विवेचन भरतमुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' में मिलता है। 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ के प्रणयन का समय ईसवीं सन की प्रथम शताब्दी माना जाता है। इस ग्रंथ में नाटक के दर्शन से प्राप्त होनेवाले आनंद को 'रस' कहा गया है। रस संबन्धी संपूर्ण विवेचन का आधार भरतमुनि का 'रस सूत्र' है। 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ के छ' अध्याय में भरतमुनि ने रस की सम्यक व्याख्या 'रस सूत्र' में दी है। यथा-

'विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगाद्रसनिष्पति :'

(अर्थात् 'विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।' भरतमुनि ने यह भी लिखा है कि 'स्थायीभाव' ही रसत्व को प्राप्त करता है। यद्यपि भरतमुनि के 'रससूत्र' में 'स्थायीभाव' शब्द नहीं आया है, उनका मतलब था कि 'स्थायीभाव' में विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। इस प्रकार रस के चार अंग होते हैं - स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव।

आचार्य विश्वनाथ कृत 'साहित्य दर्पण' में 'रस' का परिचय देते हुए कहा गया है- 'सहृदयों के हृदय का स्थायीभाव जब विभाव, अनुभाव और संचारी भाव का संयोग प्राप्त कर लेता है तब रस रूप में निष्पन्न होता है।'

भरतमुनि ने 'रस' पर खुद यह प्रश्न उठाया कि 'रस इति कः पदार्थः' ((अर्थात् 'यह रस क्या पदार्थ है?') उन्होंने ही उत्तर भी दिया- 'आस्वाद्यत्वात्' ((अर्थात् 'आस्वाद के लिए।')। रस में आस्वाद प्रदान करने का गुण होने के कारण वह 'रस' कहलाता है। भरतमुनि के मत में रस नाटक का वह तत्व है, जो सहृदय को आस्वाद प्रदान करता है और जिसके आस्वाद से वह हर्षित हो उठता है।

Critical Overview / अवलोकन

काव्य पढ़ते, सुनते जिस आनंद की अनुभूति होती है, वही रस है। पाठक या श्रोता के हृदय में स्थित 'स्थायी भाव' ही 'रस' रूप में परिणत होता है।

Recap / पुनरावृत्ति

- जीवन के मनोरंजक (आनंददायक) प्रसंगों में 'रस' का अनुभव होता है
- भारतीय साहित्य शास्त्र के ग्रंथों में रस का सर्वप्रथम विवेचन भरतमुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' में मिलता है
- 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ के छ' अध्याय में भरतमुनि ने रस की सम्यक व्याख्या 'रस सूत्र' में दी है
- 'विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगाद्रसनिष्पति'
- विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है
- स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव रस के चार अंग हैं

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भारतीय काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य कौन हैं?
2. नाट्यशास्त्र के रचयिता कौन हैं?
3. काव्यशास्त्रीय परंपरा के अंतिम आचार्य कौन हैं?
4. काव्यशास्त्रीय संप्रदाय मुख्य रूप से कितने हैं?
5. भरतमुनि ने रस की सम्यक व्याख्या किस में दिया है और वह क्या है?
6. रस से क्या तात्पर्य है?

Answers / उत्तर

1. भरतमुनि
2. भरतमुनि
3. पंडित राज जगन्नाथ
4. छः
5. भरतमुनि ने रस की सम्यक व्याख्या 'रस सूत्र' में दी है और वह है-
   'विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगाद्रसनिष्पति'
6. काव्य पढ़ते, सुनते जिस आनंद की अनुभूति होती है, वही रस है।

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. रस की परिभाषा दीजिए।
2. भारतीय काव्यशास्त्र पर आलेख तैयार कीजिए।
3. नाट्यशास्त्र और भरतमुनि पर टिप्पणी तैयार कीजिए।
4. भारतीय काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य पर आलोख तैयार कीजिए।
5. संस्कृत काव्यशास्त्रीय परंपरा पर टिप्पणी लिखिए।

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

इकाई 2 रस निरूपण, रस निष्पत्ति, साधारणीकरण, नव रस, प्रमुख आचार्य

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- रस के अंगों तथा रस-निष्पत्ति का परिचय प्राप्त करता है
- साधारणीकरण संबंधी अवधाराणाओं को समझता है
- नव रसों से परिचित होता है
- रसवादी आचार्यों का परिचय प्राप्त करता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

भारतीय साहित्य शास्त्र के ग्रंथों में रस का पहला उल्लेख भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' में मिलता है। यह ग्रंथ 'दृश्य काव्य' या 'नाटक' को दृष्टि में रखकर लिखा गया है। इसमें नाटक के दर्शन से प्राप्त होनेवाला आनन्द 'रस' कहा गया है। भारतीय साहित्य शास्त्र में काव्य का मूल प्रयोजन रस-रूप आनंद की प्राप्ति है। 'नाट्यशास्त्र'में रस की व्याख्या से संबन्धित 'रस सूत्र' है। इसके अनुसार विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्य दर्पण' ग्रंथ में रस का अर्थ और भी स्पष्ट करके बताया है कि सहृदयों के मन का स्थायीभाव विभाव, अनुभाव और संचारी भावों का संयोग प्राप्त कर 'रस' रूप में निष्पन्न होता है। इस दृष्टि से रस के चार अंग हैं- स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारीभाव।

Keywords / मुख्य बिन्दु

रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय

Discussion / चर्चा

2.2.1 रस निरूपण

'रस' काव्य का अंतरंग तत्व है। अतः वह काव्य के बहिरंग तत्व अलंकार की भाँति नही है। अलंकार काव्य की शोभा बढ़ाता है, जबकि 'रस'काव्य में शोभा उत्पन्न करता है। अतः रस 'काव्य की आत्मा' मानी जाती है और अन्य सभी काव्य तत्व 'रस' के ही उपादान हैं। अतः रस काव्य का सर्वप्रमुख तत्व है।

2.2.2 रस के अंग

रस के चार अंग होते हैं- (1) स्थायीभाव, (2) विभाव, (3) अनुभाव और (4) संचारी भाव।

2.2.2.1 स्थायी भाव

जो भाव मन में स्थायी रूप से वासना स्वरूप या संस्कार स्वरूप विद्यमान रहते हैं उन्हें 'स्थायी भाव'

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

कहते हैं

स्थायीभावों की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

i. स्थायीभाव रस का मूल है। आचार्य विश्वनाथ ने स्थायीभाव को रस-रूप अंकुर का मूल कहा है। स्थायीभाव वृक्ष के बीज के समान अंकुरित होकर रस के रूप में परिणत होता है।

ii. स्थायीभाव चित्त में स्थिर रूप से निवास करते हैं।वे चित्त की भावना या संस्कार हैं। वे चित्त में वैसे छिपे रहते हैं जैसे मिट्टी में गंध। जैसे जल की बूँदें पड़ने पर मिट्टी की गंध व्यक्त हो जाती है वैसे चित्त में छिपे स्थायी भाव भी बाह्य कारणों से जागरित हो जाते हैं। सहृदय के हृदय में स्थित स्थायीभाव जब विभाव (बाह्य कारण), अनुभाव और संचारी भावों द्वारा रसावस्था में पहुँचकर आस्वाद योग्य बनता है तब उसे 'रस' कहा जाता है। भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' रस संबन्धी संपूर्ण निरूपण का मूलाधार है। इस ग्रंथ में आ' रस माने गये हैं। अतः आ' स्थायी भाव भी माने गये हैं।

यथा -

स्थायी भाव		रस
रति	-	श्रृंगार रस
हास	-	हास्य रस
शोक	-	करुण रस
क्रोध	-	रौद्र रस
उत्साह	-	वीर रस
भय	-	भयानक रस
जुगुप्सा (घृणा)	-	बीभत्स रस
विस्मय (आश्चर्य)	-	अद्‌भुत रस

भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' में स्थायी भावों का परिचय यों दिया गया है -

'रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहं भयं तथा

जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायीभाव प्रकीर्तिततः।'

(अर्थात् 'रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय आदि स्थायीभाव कहे जाते हैं।')

इन स्थायी भावों से उद्‌भूत रसों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं -

'श्रृंगारहास्यकरुण रौद्रवीरभयानका :

बीभत्साद्‌भुत संरज्ञौत्यष्टौ नाट्ये रसास्मृताः'

(अर्थात् 'श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्‌भुत आदि नामों के आ' रसामृत नाट्य में हैं।')

भरतमुनि ने उपर्युक्त आठ रसों के बारे में कहा। बाद में शांत रस साहित्य में सर्वमान्य हो गया तो रस संख्या नौ हो गयी। 'शांत रस' का स्थायी भाव है 'निर्वेद' (वैराग्य)। बाद में 'वात्सल्य' तथा 'भक्ति' भी रस माने गये। 'वात्सल्य रस' का स्थायी भाव है 'पुत्र विषयक रति' और 'भक्ति रस' का स्थायी भाव है 'ईश्वर विषयक रति'।

2.2.2.2 विभाव

'विभाव' का मतलब है 'कारण'। सहृदय (पाठकों, श्रोताओं या दर्शकों) के हृदय में मूलतः स्थित स्थायीभावों को उद्‌बोधित करनेवाले कारणों को 'विभाव' कहते हैं। 'विभावयन्ति इति विभावाः'। (अर्थात् 'ये विभाव विभावन करते हैं।' (अर्थात् ये विभाव स्थायीभावों को आस्वाद योग्य बनाते हैं। अतः'विभाव' रस की उत्पत्ति के कारण हैं।

विभाव के दो भेद होते हैं - आलंबन विभाव और उद्दीपन विभाव।

आलंबन विभाव : स्थायीभाव रस रूप में परिणत होता है 'आश्रय' में। 'आश्रय' वह है जिसमें रस उत्पन्न होता है। मन में सुषुप्तावस्था में रहनेवाले स्थायीभावों के जागरित होने और रसावस्था में पहुँचने का कारण कोई पात्र या बाह्य वस्तु होता है। यह पात्र या बाह्य वस्तु 'आलंबन विभाव' है। (अर्थात् काव्य या नाटक

के जिस पात्र या वस्तु के कारण किसी पात्र के या सहृदय के मन का स्थायी भाव जागरित होता है वह पात्र या वस्तु 'आलंबन विभाव' है। जिस पात्र या सहृदय में स्थायीभाव जागरित होता है वह 'आश्रय' कहलाता है। उदाहरणार्थ किसी काव्य में नायिका को देखकर नायक के हृदय का 'रति' स्थायी भाव जागरित होता है तो नायिका 'आलंबन' है और नायक 'आश्रय' है। ये आलंबन और आश्रय सहृदय (श्रोता या पाठक या दर्शक) के स्थायीभावों को जागरित कर रसावस्था तक पहुँचने के कारण बनते हैं। संक्षेप में कहें तो जिसके हृदय में भाव उत्पन्न होता है वह 'आश्रय' है और जिसके प्रति भाव प्रवृत्त होता है (अर्थात् स्थायीभाव जागरित होता है) वह 'आलंबन' है।

उद्दीपन विभावः आलंबन के कारण सुषुप्तावस्था से जागनेवाले स्थायीभाव को जागरित रखने में जो सहायक भूत कारण बनता है, वह 'उद्दीपन विभाव' है। आलंबन की शारीरिक चेष्टाएँ, बातें आदि आलंबनगत उद्दीपन बनती हैं। उदाहरणार्थ 'श्रृंगार रस' में नायक और नायिका की चेष्टाएँ, उक्तियाँ आदि आलंबनगत उद्दीपन हैं। वन, उपवन, चाँदनी, पुष्प, पवन आदि प्रकृतिगत उद्दीपन हैं। आचार्य विश्वनाथ (ग्रंथ-साहित्य दर्पण) के मत में 'आलंबन विभाव' के कारण जागरित होनेवाले स्थायीभाव को उद्दीप्त करनेवाला विभाव 'उद्दीपन विभाव' है। किसी भी रचना में नायक (जो 'आश्रय' है) के सामने खड़ा होता शत्रु आलंबन विभाव है, जिसे देखकर नायक के मन में सुषुप्तावस्था में रहनेवाला 'उत्साह' स्थायी भाव जाग उठता है। शत्रु के साथ सेना, युद्ध के बाजे, शस्त्र आदि उद्दीपन विभाव हैं। ये उद्दीपन विभाव शत्रु को देखकर जागरित हुए स्थायी भाव को उद्दीप्त करते हैं। संक्षेप में कहें तो 'उद्दीपन' स्थायीभाव को रसावस्था तक पहुँचाने का सहायक कारण है।

2.2.2.3 अनुभाव

'आश्रय' की चेष्टाएँ अनुभाव के अंतर्गत आती हैं। आश्रय के चित्त में सुषुप्तावस्था में रहे स्थायीभाव 'आलंबन विभाव' के कारण जागरित और 'उद्दीपन विभाव' के कारण उद्दीप्त होने पर जो शारीरिक चेष्टा की जाती है, वह 'अनुभाव' कहलाता है। यानी 'अनुभाव' भाव (स्थायीभाव) का अनुगामी भाव है 'अनुभाव'। विभावों के कारण स्थायी भाव के जागरित और उद्दीप्त होने के बाद 'आश्रय' में प्रकट होनेवाला भाव 'अनुभाव' है। उदाहराणार्थ 'वियोग श्रृंगार' में विरह से व्याकुल नायिक द्वारा सिसकियाँ भरना। 'रौद्र रस' में आँखें लाल होना, कठोर वचन कहना, डाँटना आदि। 'भयानक रस' में ज़ोर से रोना, काँपना आदि।

अनुभाव के भेद :- अनुभावों के चार भेद होते हैं - आंगिक (कायिक), वाचिक, आहार्य और सात्विक।

'आंगिक अनुभाव' अंगों की चेष्टाओं के रूप में होता है। यह आश्रय के अधीन है। (अर्थात् यह मात्र आश्रय की इच्छा के अनुसार, प्रकट होता है। अतः इसे 'यत्नज' कहते हैं। काया से संबन्धित होने के कारण इसे 'कायिक अनुभाव' भी कहते हैं। उदाहरणार्थ 'रति' स्थायी भाव के जागरित और उद्दीप्त होने पर प्रकट होनेवाले भू - विक्षेप, लज्जा भाव आदि।

प्रयत्नपूर्वक किये जानेवाले वाक्व्यापारों को 'वाचिक अनुभाव' कहते हैं।

आरोपित कृत्रिम वेश-रचना को 'आहार्य अनुभाव' कहते हैं।

आंगिक, वाचिक और आहार्य अनुभाव आश्रय की इच्छा से प्रकट होनेवाले भाव हैं, जबकि 'सात्विक अनुभाव' पर आश्रय का कोई वश नहीं रहता। 'सात्विक अनुभाव' शरीर की सात्विक (सहज) क्रिया के रूप में होता है। 'सात्विक अनुभाव' विभावों (आलंबन और उद्दीपन) के उपस्थित होने पर खुद प्रकट होनेवाला विकार है। यथा-कुत्ते को देखने (आलंबन विभाव) और उसके भौंकने पर (उद्दीपन विभाव) आश्रय के मन का 'भय' स्थायीभाव स्वाभाविक रूप से 'भयानक रस' बनता है और आश्रय काँपता-चिल्लाता है। इस प्रकार स्थायीभाव के जागरित और उद्दीप्त होने पर होनेवाले स्वाभाविक विकारों या भावों को 'सात्विक अनुभाव' कहते हैं। इसलिए इन्हें 'अयत्नज' कहते हैं।

ये स्वयं उद्भूत होते हैं, जिन्हें रोका नहीं जा सकता। सात्विक अनुभाव आठ प्रकार के माने जाते हैं:-

i. स्तंभ - प्रसन्नता, लज्जा, व्यथा आदि से अंगों की गति रुक जाना
ii. स्वेद - भय, आश्चर्य, अनुराग आदि से शरीर का पसीने-पसीने हो जाना
iii. रोमांच - हर्ष, भय आदि से रोंगटे खड़े होना
iv. स्वरभंग - मुँह से सहज गति से वाणी का न निकलना
v. कंप - शरीर का थरथर काँपना
vi. वैवर्ण्य (विवर्णता) - मुँह का रंग उड़ जाना
vii. अश्रु - आँसू बहना और
viii. प्रलय - सुध बुध का खो जाना।

2.2.2.4 संचारी भाव

हमारे मन में स्थायी रूप से रहनेवाले भाव 'स्थायी भाव' हैं। किन्तु कुछ भाव ऐसे भी होते हैं, जो विभावों के कारण जागरित और उद्दीप्त स्थायी भाव को थोड़ी देर के लिए पुष्ट करने के निमित्त संचरित होते हैं। ऐसे भाव 'संचारी भाव' कहलाते हैं। 'संचारी' शब्द का अर्थ है 'संचरणशील होना'। एक रस को पुष्ट करनेवाला मात्र एक संचारी भाव है, ऐसा नहीं है। एक ही संचारी भाव एकाधिक रसों को पुष्ट करता है। अतः संचारी भावों को 'व्यभिचारी भाव' भी कहा जाता है। यथा - स्मृति, चिंता जैसे संचारी भाव प्रायः सभी रसों को पुष्ट करते हैं।

भारतीय परंपरा के रसाचार्यों ने संचारी भावों की संख्या तैंतीस (33) मानी है। वे हैं- निर्वेद (अर्थात् उदासीनता), ग्लानि (अर्थात् अनुत्साह), शंका, असूया, मद, श्रम (इच्छा-पूर्ति के लिए परिश्रम करना), आलस्य, दैन्य (अर्थात् दीनता), चिन्ता, मोह, स्मृति, धृति, व्रीड़ा (लज्जा), चापल्य (चपलता), हर्ष, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य (उत्सुकता), निद्रा, अपस्मार, सुप्त (स्वप्न), विबोध (प्रबोध/जागरण), अमर्ष, अवहित्था (छिपाव/दुराव), उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रास और वितर्क।

2.2.2 रस-निष्पत्ति

भरतमुनि का रस सूत्रः भरतमुनि रस संप्रदाय के मूल प्रवर्तक माने जाते हैं। उन्होंने अपने 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ में 'रस' का विवेचन किया है और 'रस' को नाटक के प्राण माने हैं। 'रस निष्पत्ति' संबन्धी आचार्यों के विवेचन का आधार भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ का रस सूत्र है, जो इस प्रकार है-

'विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगाद्रसनिष्पत्ति':(अर्थात् 'विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के (स्थायी भाव से) संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।' इस 'रस सूत्र' में भरतमुनि ने 'रस निष्पत्ति' की प्रक्रिया का उल्लेख किया है।

भरतमुनि ने नाटक के चार तत्व माने - वस्तु, अभिनय, संगीत और रस। इनमें प्रथम तीन तत्वों को उन्होंने रसाश्रित माना। उनका मतलब था कि इन तीन तत्वों की योजना रसानुरूप होनी चाहिए।

भरतमुनि के मत में नाना प्रकार के भावों के संयोग से 'स्थायी भाव' नाट्य रस को प्राप्त करता है। उनके अनुसार 'निष्पत्ति' का अर्थ है - बनना या होना या स्वरूप को प्राप्त करना। 'संयोग' का अर्थ है- स्थायी भावों के साथ सम्यक योग (संगम) (अर्थात् 'संबंध'।

2.2.3 रस निष्पत्ति संबंधी विभिन्न व्याख्याएँ

काव्य से रस किस प्रकार उत्पन्न होता है, यह काव्यशास्त्र का शाश्वत प्रश्न रहा है। संस्कृत काव्यशास्त्र के आद्याचार्य भरतमुनि ने अपने विख्यात रससूत्र में रस निष्पत्ति पर विचार करते हुए लिखा- 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।' (अर्थात् विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। विभाव अनुभाव और संचारी भाव तो स्पष्ट हैं किंतु संयोग और निष्पत्ति के अर्थ को लेकर परवर्ती आचार्यों ने अनेक मत प्रकट किए। इनमें चार मत उल्लेखनीय हैं-

1. भट्टलोल्लट (मत है 'उत्पत्तिवाद' या 'आरोपवाद।')
2. शंकुक (मत है 'अनुमितिवाद' या 'अनुमानवाद'।)
3. भट्टनायक (मत है 'भुक्तिवाद' या 'भोगवाद'।)
4. अभिनवगुप्त (मत है 'अभिव्यक्तिवाद'।)

2.2.3.1 उत्पत्तिवाद/ आरोपवाद

भट्ट लोल्लट ने निष्पत्ति का अर्थ उत्पत्तिवाद से लिया है तथा संयोग शब्द के तीन अर्थ निकाले हैं। स्थायी भाव के साथ उत्पाद्य-उद्पादक संबंध, अनुभाव के साथ गम्य-गमक संबंध तथा संचारी भावों के साथ पोष्य-पोषक सबंध। उनके मत में रस की स्थिति सचमुच मूल पात्र में निहित है। अभिनेता उसका अनुसरण करते हैं। पाठक या दर्शक में इसकी प्रतीति होती है। यह पुष्ट होकर रसावस्था तक पहुँचता है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर भट्टलोल्लट के रस विवेचन को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। उत्पादक-उत्पाद भाव, गम्य-गमक भाव और पोष्य-पोषण भाव।

2.2.3.2 अनुमितिवाद/ अनुमानवाद

शंकुक ने निष्पत्ति का अर्थ अनुमिति से लिया है। उनके अनुसार स्थायी भाव का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता। विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों से इसकी प्रतीति होती है। उदाहरणार्थ दुष्यंत-शकुंतला का प्रणय प्रत्यक्ष रूप से नहीं देखा जा सकता, लेकिन इनके हाव-भाव एवं क्रिया कलापों द्वारा हमें इनके प्रेम का पता मिलता है। रस निष्पत्ति का समर्थन शंकुक न्यायदर्शन पर आधारित 'चित्रतुरंग न्याय' से किया। चित्र में घोड़े को देखकर हम यह अनुमान लगाते हैं कि यह घोडा है। इस तरह मंच पर अभिनेताओं का अभिनय देखकर मूल पात्र का अनुमान करके स्थायी भाव का अनुभव करते हैं तथा रस के अनुभव तक पहूँचते हैं। शंकुक के अनुसार, रस की उत्पत्ति अनुमान के माध्यम से होती है, जो कि रस निष्पत्ति का आधार है। शंकुक ने निष्पत्ति का अर्थ अनुमिति से लिया है तथा संयोग का अर्थ लिया है अनुमाप्य-अनुमापक भाव संबंध।

2.2.3.3 भुक्तिवाद

रस निष्पत्ति संबंधी भट्टनायक का भुक्तिवाद 'साधाराणीकरण' से संबंधित है। उनके मत में - 'भावकत्वम्साधारणीकरणम्'। (अर्थात् भावकत्व साधारणीकरण है। इस व्यापार से विभावादी और स्थायी भावों का साधारणीकरण होता है। भट्टनायक काव्यास्वादन की 3 प्रक्रियाएँ मानते हैं - अभिधा, भावकत्व एवं भोजकत्व। अभिधा में काव्य के अर्थबोध का संबंध प्राप्त होता है। इसमें भाषा न जानने पर आस्वादन संभव नहीं। अभिधा द्वारा प्राप्त भौतिक ज्ञान हमारे हृदय में अनुभूति उद्वेलित करता है। वही भावकत्व व्यापार है। (अर्थात् काव्य की विषय-वस्तु से अनुभूति गम्य हो जाना। काव्य जन्य अनुभूतियों का लौकिक सीमाओं से मुक्त होकर आनंद में परिणत हो जाना भोजकत्व व्यापर है। इस प्रकार के व्यापार में विभावादी अपने पराए की भावना से मुक्त होकर सामान्यीकृत हो जाता है। भट्ट नायक ने निष्पत्ति से भुक्ति का अर्थ ग्रहण किया है तथा संयोग का भाव के लिए भोज्य-भोजक संबंध माना है।

2.2.3.4 अभिव्यक्तिवाद

अभिनवगुप्त के अनुसार संयोग का अर्थ व्यंजना तथा निष्पत्ति का अर्थ अभिव्यक्ति है। उनके मत में रस की निष्पत्ति सहृदय समाज में होती है। उन्होंने व्यंजना शक्ति के आधार पर रससूत्र की व्याख्या की। उनके मत में विभावादी और स्थायीभाव परस्पर व्यंजक-व्यंग्य बनकर संयोग द्वारा रस की अभिव्यक्ति करते हैं। उन्होंने रस की विवेचना कर उसमें अलौकिकता का समावेश किया। लोक व्यवहार में रति आदि भाव विद्यमान है। सफल अभिनय से सहृदय तन्मय होते जाते हैं। वे रसास्वाद में आत्मविभोर तथा आनंद विह्वल बन जाते हैं। वे अपने व्यक्तिगत भावों तथा ज्ञानों से मुक्त हो जाते हैं। (अर्थात् लौकिक रूप नष्ट हो जाता है और अलौकिक रूप धारण कर लेता है। यहाँ रस आस्वाद है, आस्वाद्य नहीं।

2.2.3 साधारणीकरण

काव्य में व्यक्त भाव सहृदय साधारण द्वारा आस्वादित होते हैं तो उसे 'साधारणीकरण' कहते हैं। साधारणीकरण के समय रामादि पात्र तथा उनके भाव (किसी भी रचना के कोई भी पात्र तथा उन पात्रों के भाव हो सकते हैं।) सहृदय पाठक/श्रोता/दर्शक से तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं।)

'साधारणीकरण' का अर्थ है 'जो साधारण नहीं है, उसको साधारण कर देना'। 'साधारणीकरण' की प्रक्रिया के कारण महाकवियों की वाणी देश, काल और वातावरण की सीमा लांधकर सहृदयों को आनन्द प्रदान करती है। साधारणीकरण सिद्धांत का बीज भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' में मिलता है। भरतमुनि के अनुसार जब भावों को सामान्य रूप से प्रस्तुत किया जाता है तब रस की उत्पत्ति होती है। यहाँ 'सामान्य रूप' से उनका तात्पर्य 'साधारणीकरण' से ही है। किन्तु 'साधारणीकरण' का निश्चित उल्लेख हमें भट्टनायक के उद्धरणों में ही सर्वप्रथम मिलता है। भट्टनायक के अनुसार 'साधारणीकरण' विभाव आदि का होता है और यह भावकत्व व्यापार का जीवन है, जिसके द्वारा स्थायीभाव रस रूप में परिणित होता है।

भट्टनायक :- भट्टनायक रससूत्र के तीसरे प्रमुख व्याख्याता हैं। उनका मत 'भुक्तिवाद' कहलाता है। उन्होंने लोल्लट और शंकुक के मतों का खंडन करते हुए कहा कि रस की उत्पत्ति नहीं होती है, उसकी अनुमिति नहीं होती है, बल्कि उसकी 'भुक्ति' होती है। उन्होंने 'संयोग' का अर्थ 'संबन्ध' (भोज्य-भोजक संबन्ध) लिया और 'निष्पत्ति' का अर्थ 'भुक्ति' लिया।

'रस निष्पत्ति' को भट्टनायक का सबसे बड़ा योगदान 'साधारणीकरण सिद्धांत' है। भट्टनायक के मत में शब्द रूप काव्य के तीन व्यापार होते हैं - (1) अभिधा व्यापार, (2) भावकत्व व्यापार और (3) भोजकत्व व्यापार। 'अभिधा व्यापार' से काव्य का शब्दार्थ स्पष्ट होता है, 'भावकत्व व्यापार' से काव्य में वर्णित विभाव आदि व्यक्ति विशेष के न रहकर सर्वसाधारण के हो जाते हैं और 'भोजकत्व व्यापार' से साधारणीकृत स्थायीभाव का रस रूप में भोग करते हैं।

भट्टनायक ने 'साधारणीकरण' की परिभाषा इस प्रकार दी है- 'भावकत्वं साधारणीकरण तेन हि व्यापारेण विभावदय च स्थायी साधारणीक्रियन्ते।'

(भावकत्वं = भावकत्व, साधारणीकरणं = साधारणीकरण, तेन हि व्यापारेण = इस व्यापार से, विभावादय = विभावा आदि, च = और, स्थायी = स्थायीभाव, साधारणीक्रियन्ते = साधारणीकृत होता है) (अर्थात् 'भावकत्व साधारणीकरण है'। इस भावकत्व व्यापार से विभाव आदि और स्थायीभाव का साधारणीकरण हो जाता है। -

भट्टनायक के 'भुक्तिवाद' का मूलाधार 'सांख्य दर्शन' है, जिसमें प्रकृति को सत्, रज एवं तम से युक्त (यानी त्रिगुणवाली) माना जाता है। 'सत्' में प्रीति, 'रज' में 'अप्रीति' और 'तम' में विषाद की स्थिति होती है।

साधारणीकरण होने से सहृदय के सत्वगुण का उद्रेक होता है तथा रजोगुण एवं तमोगुण का शमन होता है। भावकत्व व्यापार (अर्थात् साधारणीकरण) के बाद भोजकत्व व्यापार शुरू होता है और सहृदय अपने ही साधारणीकृत स्थायीभाव का रस रूप में भोग करते हैं। यूँ भट्टनायक ने रस का स्थान सहृदय सामाजिक का हृदय बताया है। काव्य का रस रूप में भोग करते समय रजोगुण और तमोगुण की निवृत्ति होती है और सत्व गुण का उद्रेक होने पर सहृदय सामाजिक लोकोत्तर आनंद का अनुभव करते हैं।

भट्टनायक के 'भुक्तिवाद' का दोष है कि उन्होंने भावकत्व और भोजकत्व नामक जिन नये काव्य व्यापारों की कल्पना की है उनके कोई शास्त्रीयाधार नहीं हैं।

आश्रय और आलंबन का साधारणीकरण हो जाने से स्थायीभाव देश-काल के बंन्धन से मुक्त होता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भट्टनायक की भाँति आलंबनत्व धर्म के साधारणीकरण को स्वीकारा। उन्होंने अभिनवगुप्त की भाँति सहृदय और उसके स्थायीभाव के साधारणीकरण को भी स्वीकारा। इस प्रकार शुक्लजी की मान्यता भट्टनायक और अभिनवगुप्त के मतों का समन्वित रूप है। परन्तु उन्होंने साधारणीकरण का मूल तत्व आलंबनत्व धर्म को ही माना।

2.2.4 नवरस

रस संख्या पर काव्यशास्त्रियों ने अपने-अपने मत प्रकट किये। काव्यशास्त्रियों में सर्वप्रथम भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ में रसों का वर्गीकरण किया। भरतमुनि ने रस संख्या आठ मानी - श्रृंगार, हास्य, करुण, वीर, रौद्र, भयानक, बीभत्स और अद्भुत। भरतमुनि के बाद आचार्य दंडी ने भी आठ रसों को माना। उद्भट ने एक और रस (शांत रस) मिलाकर रस संख्या नौ मानी। इस 'शांत रस' को अन्य काव्यशास्त्रियों ने स्वीकारा। बाद में रुद्रट ने 'स्नेह' स्थायीभाववाले 'प्रेयान' को जोड़कर रस संख्या दस कर दी। किन्तु अनंतर आचार्यों ने 'प्रेयान' को नहीं माना। धनंजय ने भरतमुनि कृत आठ रसों को ही माना। किन्तु अभिनवगुप्त ने 'शांत रस' का प्रबल शब्दों में समर्थन किया। अभिनवगुप्त ने स्पष्ट कहा भी है कि 'रस नौ होते हैं'। 'एवां ' ते नवैव रसाः'। आचार्य विश्वनाथ ने पूर्वोक्त नौ रसों के साथ 'वात्सल्य' को दसवाँ रस माना। वैष्णव आचार्य रूप गोस्वामी ने 'श्री हरिभक्तिरसामृत सिन्धु' में 'भक्ति' को प्रधान रस घोषित किया। किन्तु संस्कृत के अंतिम मेधावी आचार्य पंडित राज जगन्नाथ ने रस संख्या नौ ही मानी।

परवर्ती काव्यशास्त्रियों ने भरतमुनि-कृत आठ रसों को ही प्रामाणिक माना। किन्तु शांत, वात्सल्य और भक्ति रसों की अवश्य प्रतिष्ठा हुई। इन तीनों को भी जोड़ने से रसों की संख्या ग्यारह होती है।

भरतमुनि को मान्य श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत आदि आठ रसों के साथ 'शान्त रस' भी साहित्य में सर्वमान्य हो चुका है। ये ही नवरस हैं।

नव रसों में प्रत्येक के अंग देख लें-

1. श्रृंगार रस

श्रृंगार रस के दो पक्ष होते हैं - (1) संयोग (संभोग) श्रृंगार और (2) वियोग (विप्रलंभ) श्रृंगार। श्रृंगार रस केआलंबन (विभाव) हैं श्रेष्ठ गुण और रूप युक्त नायक या नायिका आदि। उद्दीपन विभाव हैं - नायक या नायिका की वेश-भूषा, विविध चेष्टाएँ आदि पात्रगत उद्दीपन और चाँदनी, वसंत, सुरभित पवन जैसै बाह्य उद्दीपन। बाह्य उद्दीपन संयोग पक्ष में आनंद बढ़ाते हैं और वियोग पक्ष में दुख। आलिंगन, चुंबन, कट ाक्ष जैसे कई अनुभाव होते हैं। श्रृंगार रस के संयोग (सुखात्मक) और वियोग (दुखात्मक) दो पक्ष होने के कारण सभी 'संचारी भाव' श्रृंगार रस के संचारी भाव होते हैं। अन्य किसी रस में सब संचारी भाव नहीं आ सकते।

'श्रृंगार रस' का शासन सब संचारी भावों पर रहता है, अन्य रसों की अपेक्षा यह अधिक व्यापक रस है, इस रस से प्राप्त आनंद का अनुभव सब अवस्थाओं के नर-नारी कर सकते हैं- इन गुणों के कारण 'श्रृंगार रस' को 'रसराज' कहते हैं।

2. हास्य रस

स्थायी भाव	-	हास
आलंबन विभाव	-	हास्योत्पादक वस्तुएँ, विकृत रूप-रचना।
उद्दीपन विभाव	-	हास्यास्पद व्यक्ति की चेष्टाएँ
अनुभाव	-	मुस्कुराना, हँसना आदि।
संचारी भाव	-	हर्ष, आलस्य, असूया आदि।
रस	-	हास्य

3. करुण रस

स्थायी भाव	-	शोक
आलंबन विभाव	-	विनष्ट प्रिय व्यक्ति, नष्ट सुख-सुविधाएँ आदि।

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

उद्दीपन विभाव - स्मरण, चिन्ता।

रस - करुण

4. रौद्र रस

स्थायी भाव - क्रोध

आलंबन विभाव - शत्रु

उद्दीपन विभाव - शत्रु का अनिष्ट काम, कठोर वचन

रस - रौद्र

5. वीर रस

स्थायी भाव - उत्साह

आलंबन विभाव - शत्रु

उद्दीपन विभाव - शत्रु सेना, शत्रु के हाथ में शस्त्र आदि

अनुभाव - मुट्ठी बाँधना, भ्रू-भंग आदि।

संचारी भाव - गर्व, धृति, स्मृति, आवेग, मंद आदि।

रस - वीर

6. भयानक रस

स्थायीभाव - भय

आलंबन विभाव - जानवर, चोर, एकांत स्थान, वन आदि।

उद्दीपन विभाव - जानवर की चेष्टाएँ, चोर के हाथ में चाकू आदि।

अनुभाव - कंपन, स्वेद, मरण, रोना आदि।

संचारी भाव - चिन्ता, ग्लानि, शंका, आवेग आदि।

रस - भयानक

7. बीभत्स रस

स्थायी भाव - जुगुत्सा या घृणा

आलंबन विभाव - रक्त, दुर्गन्ध, सड़ा हुआ मांस आदि।

उद्दीपन विभाव - घृणास्पद व्यक्तियों की चेष्टाएँ, गन्दी वस्तुओं में कीड़ों का बिलबिलाना आदि।

अनुभाव - थूकना, आँखें मूँदना, मुँह फेर लेना आदि।

संचारी भाव - अपस्मार, चिन्ता, वैवर्ण्य आदि।

रस - वीभत्स

8. अद्भुत रस

स्थायी भाव - विस्मय या आश्चर्य

आलंबन विभाव - असाधरण वस्तु या घटना

उद्दीपन विभाभ - असाधारण रूप से व्यवहार

अनुभाव - आँखें फाड़कर देखना, अनजाने ही शब्द मुँह से निकलना आदि।

संचारी भाव - चिंता, हर्ष, आवेग, आदि।

रस - अद्भुत

9. शांत रस

स्थायी भाव - निर्वेद

आलंबन विभाव - संसार की नश्वरता का बोध आदि।

उद्दीपन विभाव - आश्रम, तीर्थ स्थान आदि।

अनुभाव - अश्रु, रोमांच आदि।

संचारी भाव - स्मरण

रस - शांत रस

2.2.5 प्रमुख आचार्य

रस सिद्धांत का प्राचीन उपलब्ध ग्रंथ भरतमुनि का 'नाट्य शास्त्र' है। इस ग्रंथ में सूत्र शैली में 'रस' शब्द का ही नहीं, उसके अंगों-उपांगों का भी सम्यक विवेचन है। भरतमुनि से पूर्व 'रस सिद्धांत' की परंपरा निश्चय ही विद्यमान थी। भरतमुनि तक आते-आते उसे कम-से-कम दो शताब्दियाँ अवश्य लगी होंगी। किन्तु भरतमुनि के पूर्व युग का कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं है।

यह निर्विवाद है कि 'रस संप्रदाय' का सर्वप्रथम उपलब्ध ग्रंथ भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' है। इसमें रसों का वर्णन छ' अध्याय में और संचारी भावों सात्विक भावों का निरूपण सातवें अध्याय में है। भरतमुनि ने 'नाट्य' को वाङ्मय का सर्वश्रेष्ठ रूप माना और रस को उसका प्राण स्वीकार किया। उनके मत में कोई भी नाट्यांग रस के बिना चल नहीं सकता। उन्होंने यह भी प्रतिपादित किया कि नाटक के चार प्रमुख अंगों - पाठ्य, अभिनय, संगीत और रस-में से प्रथम तीनों का नियंता 'रस' ही है। उन्होंने नाटक के उद्देश्यों में भी 'रस' को प्रधानता दी।

रस संप्रदाय के प्रमुख आचार्यों के मतों का परिचय पाने को रस संप्रदाय के इतिहास पर जाना पड़ेगा।

2.2.6 रस संप्रदाय का इतिहास

रस संप्रदाय के इतिहास को तीन भागों में बाँटा जा सकता है-

1. ध्वनि पूर्ववर्ती काल (आरंभ से लेकर रूद्रट तक)
2. ध्वनि काल (आनंदवर्धन से लेकर महाराज भोज तक)
3. ध्वनि परवर्ती काल (मम्मट से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक)

ध्वनि पूर्ववर्ती कालः 'ध्वनि पूर्ववर्ती काल' में भरतमुनि के पश्चात् 'रस' के संबन्ध में दो प्रकार की विचारधाराएँ मिलती हैं - (अ) रस विरोधी धारा और (आ) रसवादी धारा।

'रस विरोधी धारा' के आचार्यों में भामह, दंडी, वामन, उद्भट और रूद्रट आते हैं।

'रसवादी' धारा के आचार्यों में भट्ट लोल्लट, शंकुक, रूद्रभट्ट, भट्ट नायक, अभिनव गुप्त आदि आते हैं।

1. रस विरोधी धाराः 'रस विरोधी आचार्यों' ने भी रस की पूर्ण उपेक्षा नहीं की। उन्होंने रस की सत्ता तो स्वीकार की, पर उसे प्राणतत्व नहीं माना। इसलिए उन्हें 'रस विरोधी आचार्य' कहा गया। आचार्य भामह ने रस का अलंकारों में पूर्ण अंतर्भाव कर लिया और 'रसवद् अलंकार' में उन्होंने श्रृंगार का ही वर्णन किया, अन्य रसों की उपेक्षा कर दी। इसका कारण यह है कि भामह ने काव्य को शब्दार्थ रूप माना। उनके मत में काव्य सौन्दर्य का मूल 'अलंकार' है। रस और भावादि भी 'शब्दार्थ' के चमत्कार की परिधि में आते हैं, अतः वे उन्हें ग्राह्य हैं, क्योंकि उनका दृष्टिकोण वस्तुपरक है, 'रस' उनकेलिए गौण होकर रह गया।

दंडी ने भी शब्दार्थ में ही काव्य का मूल सौन्दर्य माना। उन्होंने अलंकार को ही काव्य सौन्दर्य का पर्याय मानते हुए 'रस' का 'रसवद् अलंकार' के अंतर्गत वर्णन किया। भामह ने श्रृंगार रस का मात्र उल्लेख किया तो दंडी ने आठों रसों का वर्णन किया। उन्होंने केवल स्थायी भाव की ही रस-परिणति में वर्णन किया, किन्तु उदाहरणों में विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के चित्रण द्वारा रस-परिपाक प्रस्तुत किया।

उद्भट ने भी रस-भावादि का वर्णन 'रसवद् अलंकार' के अंतर्गत करके भामह का अनुकरण किया। उन्होंने 'शांत रस' को भी मिलाकर नौ रसों का उल्लेख किया।

वामन ने रस का प्रयोग 'काव्यालंकार सूत्र' में एक ही स्थान पर किया। उन्होंने अर्थगुण 'क्रान्ति' का लक्षण यों दिया -

'दीप्त रसत्वं कान्ति'

दीप्ता रसा श्रृंगारादयो यस्य दीप्त रसः।-

(अर्थात् 'दीप्त रसत्व ही 'कांति' है।' जिसके श्रृंगार आदि रस दीप्त हो वह दीप्त रस हुआ।'

रुद्रट अलंकारवादी थे, किन्तु रस के प्रति उन्होंने उपेक्षा नहीं की। उनका रस-वर्णन स्वतंत्र है, 'रसवद् अलंकार' के अंतर्गत नहीं। उन्होंने काव्य में रस के महत्व का वर्णन किया, किन्तु उनका पक्षपात अलंकार के प्रति होने के कारण वे 'रस विरोधी धारा' में आये। काव्य का लक्षण 'ननु शब्दार्थों काव्यम्' कहा। (ननु = एक अव्यय, जिसका व्यवहार कोई बात पूछने या संदेह प्रकट करने को किया जाता है।) यानी रुद्रट की दृष्टि देहवादी है। रुद्रट के समय तक आते-आते रस के प्रति आकर्षण बढ़ने लगा था।

(आ) रसवादी धारा:'ध्वनि पूर्ववर्ती काल' में (उपर्युक्त) अलंकारवादी रस विरोधी धारा के साथ-साथ रसवादी धारा भी प्रवाहित हो रही थी। इनमें लोल्लट ने भरतमुनि के रस सूत्र 'विभावानुभावव्यभिचारी संयोगाद्रसनिष्पत्तिः' की व्याख्या की। उन्होंने कहा कि काव्य में सरस अर्थ का निबंधन आवश्यक है। उनके मत में रस अनंत है, किन्तु नाटक में आठ रसों का प्रयोग होना चाहिए। शंकुक 'रस सूत्र' के दूसरे व्याख्याकार हैं। लोल्लट की तरह शंकुक ने भी 'रस' का 'नाट्य रस' के अर्थ में ग्रहण किया। लोल्लट रस-निष्पत्ति की अपनी व्याख्या में अनुकार्य और अनुकर्ता पर रुक जाते हैं, किन्तु शंकुक रस को सहृदय तक पहुँचा देते हैं। रुद्रभट्ट ने 'श्रृंगार रस' का विस्तार से वर्णन किया। उनके 'श्रृंगार तिलक' ग्रंथ के पहले परिच्छेद में नवरस, भाव तथा नायक-नायिका भेद का वर्णन है, दूसरे परिच्छेद में विप्रलंभ श्रृंगार का वर्णन है और तीसरे में अन्य रसों का। उन्होंने स्पष्ट लिखा कि 'रस के बिना कविता शोभा नहीं देती।'

2.2.6.1 ध्वनि काल (850-1050 ई)

इस काल में आनंदवर्द्धन, भट्टनायक, राजशेखर, कुन्तक, अभिनवगुप्त, धनंजय, महिमभट्ट, क्षेमेन्द्र, भोजराज, मम्मट आदि आचार्य आते हैं। इस काल में रस की स्थापना 'ध्वनि' के रूप में हुई। इन आचार्यो ने रस सिद्धांत का मंडन किया। इनमें आनंदवर्द्धन ने 'रस-ध्वनि' के रूप में, क्षेमेन्द्र ने 'रसाश्रित औचित्य' के रूप में वर्णन किया। भोजराज की दृष्टि 'समन्वयवादी' रही, फिर भी रस के प्रति उनका विशेष आग्रह रहा। कुन्तक ने 'वक्रोक्ति' के प्रति अपना आग्रह दिखाया, किन्तु रस के प्रति उनके मन में विशेष सम्मान है।

भट्टनायक ने साधारणीकरण सिद्धांत की उद्भावना करके काव्यास्वाद की मौलिक समस्या का समाधान किया। अभिनवगुप्त ध्वनिवादी होते हुए भी रस के प्रति आग्रहशील हैं। उन्होंने शांत रस के प्रति विशेष आग्रह दिखाया। श्रृंगार रस का भी विस्तार से वर्णन किया। राजशेखर ने रस के महत्व को स्वीकार किया और लिखा - 'शब्दार्थो ते शरीरं रस आत्मा।' (अर्थात् 'शब्दार्थ शरीर है और रस आत्मा है।') धनंजय ने रस को शब्दार्थ का मूल और एकमात्र तात्पर्य कहा। रस से उनका मतलब उस आनंदानुभूति से है, जो विभावादि से युक्त स्थायीभाव के कारण होती है। महिमभट्ट ने ध्वनिवाद का खंडन करके काव्य की रसात्मकता का समर्थन किया।

आनंदवर्द्धन ने रस की महत्ता की घोषणा की, फिर भी उसका माध्यम ध्वनि ही रही। क्षेमेन्द्र ने रस की चर्चा औचित्य के आधार पर की। भोजराज ने सभी काव्यांगों के समन्वय पर विशेष बल दिया। उन्होंने वाङ्मय के तीन भेद 'वक्रोक्ति, रसोक्ति और स्वभावोक्ति' करके 'रसोक्ति' को अधिक मनोग्राही माना। वक्रोक्तिवादी कुन्तक 'वक्रोक्तिजीवितम्' ग्रंथ में रस के महत्व का अनेक स्थानों पर वर्णन किया। कुन्तक ही सर्वप्रथम आचार्य हैं, जिन्होंने काव्य लक्षणों और काव्य प्रयोजनों में रस को स्थान दिया। उन्होंने 'रसवद् अलंकार' का निषेध करके रस की अलंकार्यता का प्रतिपादन किया।

2.2.6.2 ध्वनि परवर्ती काल

इस काल में प्रत्येक आचार्य का विशेष ध्यान 'रस' पर केन्द्रित रहा। पंडितराज जगन्नाथ ने काव्य रस की आनंदमयता के प्रमाण में श्रुति का उदाहरण देकर रस को आत्मानंद घोषित किया।

रुय्यक, जयदेव, अप्पय दीक्षित आदि अलंकारवादियों का ध्यान रस की अपेक्षा अलंकार-ध्वनि की ओर

अधिक केन्द्रित हुआ। फिर भी उन्होंने रस को अपने पूर्ववर्ती आलंकारिकों की अपेक्षा अधिक आग्रह से ग्रहण किया। जयदेव ने स्पष्ट रूप से लिखा-

'अंगीकरोतिः यःकाव्यं शब्दार्थावनलेकृति।।

असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृति।।'

(अर्थात् 'शब्दार्थ से अनलंकृत काव्य को माननेवाले अग्नि को अनुष्ण क्यों नहीं मानते?'

रसवादी आचार्य विश्वनाथ ('साहित्य दर्पण' ग्रंथ) ने रस का समस्त वाङ्मय में महत्व प्रतिपादित किया। उनके मत में काव्य के लक्षण में केवल रस का उल्लेख यथेष्ट है। यथा-'वाक्य रसात्मकं काव्यम्।'(अर्थात् 'रसात्मक वाक्य काव्य है'। उनके मत में रीति, गुण, अलंकार आदि रस का उत्कर्ष करते हुए ही काव्य का उत्कर्ष करते हैं।

'उत्कर्षहेतवः प्रोक्ता गुणालंकाररीतय :

(अर्थात् 'गुण, अलंकार, रीति आदि काव्य के उत्कर्ष के हेतु हैं।'

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि रस की आत्मपरक व्याख्या ही अधिक मान्य हुई है।

Critical Overview / अवलोकन

भरतमुनि के रस सूत्र के चार व्याख्याकारों ने (भट्ट लोल्लट, शंकुक, भट्ट नायक और अभिनवगुप्त आदि ने) 'निष्पत्ति' और 'संयोग' के अर्थ अपने-अपने दृष्टि कोणों के आधार पर दिये। अभिनवगुप्त का मत सर्वश्रेष्ठ माना गया है। क्योंकि उन्होंने समष्टिगत रस की कल्पना की है। अभिनव गुप्त के बाद रस-निष्पत्ति की चर्चा करनेवाले आचार्य-धनंजय, धनिक, महिमभट्ट, मम्मट और पंडितराज जगन्नाथ को मूल रूप से अभिनव गुप्त का मत मान्य है, यद्यपि इन्होंने अपनी-अपनी मान्यताएँ स्थापित करने का प्रयास किया है। 'स्थायी भाव' में विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।

Recap / पुनरावृत्ति

- 'रस' काव्य का अंतरंग तत्व है
- अलंकार काव्य की शोभा बढ़ाता है, जबकि 'रस' काव्य में शोभा उत्पन्न करता है
- रस के चार अंग होते हैं- स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव
- 'विभाव' का मतलब है 'कारण'
- विभाव के दो भेद होते हैं - आलंबन विभाव और उद्दीपन विभाव
- 'आश्रय' की चेष्टाएँ अनुभाव के अंतर्गत आती हैं
- हमारे मन में स्थायी रूप से रहनेवाले भाव 'स्थायी भाव' हैं
- 'विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगाद्रसनिष्पत्ति'
- भट्टलोल्लट के 'उत्पत्तिवाद' या 'आरोपवाद'
- शंकुक के 'अनुमितिवाद' या 'अनुमानवाद'
- भट्टनायक के 'भुक्तिवाद' या 'भोगवाद'
- अभिनवगुप्त के 'अभिव्यक्तिवाद'

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. नाट्यशास्त्र में कितने रस माने गये हैं?
2. बीभत्स रस का स्थायी भाव क्या है?
3. विभाव का मतलब क्या है? और उसके कितने भेद हैं?
4. संचारी भाव से क्या तात्पर्य है?
5. संचारी भावों की संख्या कितनी है?
6. रस सूत्र के व्याख्याकार शंकुक के मत का नाम क्या है?
7. रस सूत्र के आचार्य भट्टनायक के मत का नाम क्या है?
8. अभिनवगुप्त के काव्य तत्व का नाम क्या है?

Answers / उत्तर

1. 8
2. जुगुप्सा
3. विभाव का मतलब है 'कारण' और उसका दो भेद हैं।
4. विभावों के कारण जागरित और उद्दीप्त होनेवाले सथायीभाव को थोडी देर के लिए पुष्ट करने के निमित्त संचरित होनेवाला भाव संचारी भाव हैं।
5. 33
6. 'अनुमितिवाद' या 'अनुमानवाद'
7. 'भुक्तिवाद' या 'भोगवाद'
8. 'अभिव्यक्तिवाद'

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. नव रस पर टिप्पणी तैयार कीजिए।
2. रस निष्पत्ति पर आलेख तैयार कीजिए।
3. साधारणीकरण से क्या तात्पर्य है और उस पर आलेख तैयार कीजिए।
4. रस सूत्र के व्याख्याकारों पर आलेख तैयार कीजिए।
5. साधारणीकरण के मूल तत्व पर पर्चा लिखिए।

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

इकाई 3 अलंकार संप्रदाय - प्रमुख आचार्य

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- अलंकार संप्रदाय से परिचित होता है
- काव्य में अलंकारों के महत्व से अवगत होता है
- अलंकार संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य तथा अन्य आचार्यों के मतों से अवगत होता है
- अलंकारवादियों की परंपरा से अवगत होता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

अलंकार काव्य में शब्द और अर्थ का उत्कर्ष करनेवाला साधन है। अलंकार के सहारे कविता अपना सौन्दर्य बढ़ाती है। अलंकार साधन है, साध्य नहीं। वह अप्रस्तुत वस्तु योजना के रूप है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

काव्य की आत्मा, आभूषण, अंगों की सुन्दरता, अलंकार साधन, वर्ण विन्यास, काव्यालंकार

Discussion / चर्चा

2.3.1 अलंकार संप्रदाय और उसके प्रवर्तक

काव्य में 'अलंकार' कवि की वाणी के आभूषण हैं। अलंकारों से अलंकृत होकर सामान्य बात विशेष मनोहरता (सौन्दर्य) से संपन्न होता है। अतः कहा जा सकता है कि 'अलंकार' कवि की चमत्कारपूर्ण उक्ति है।

भारतीय काव्यशास्त्र में 'रस संप्रदाय' के अतिरिक्त सबसे पुराना है 'अलंकार संप्रदाय'। काव्यशास्त्र के आदि आचार्य (रसवादी) भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ में उपमा, रूपक, यमक, दीपक आदि चार अलंकारों का विवेचन किया, किन्तु इन्हें अधिक महत्व नहीं दिया। अलंकार को काव्य की आत्मा घोषित करते हुए 'अलंकार संप्रदाय' की स्थापना करने का श्रेय, 'काव्यालंकार' ग्रंथ के रचयिता भामह (छठी शताब्दी) को है। भरतमुनि और भामह के काल के बीच कुछ और भी विद्वानों ने अलंकारों की चर्चा की थी, किन्तु उनके ग्रंथ अनुपलब्ध हैं। उन विद्वानों के नाम (रामशर्मा, मेधाविन, राजमित्र आदि नाम) केवल भामह के 'काव्यालंकार' ग्रंथ में आये हैं। इस स्थिति में भामह ही 'अलंकार संप्रदाय' के प्रवर्तक माने जाते हैं।

2.3.2 काव्य में अलंकारों की संख्या

आचार्य भामह के 'काव्यालंकार' में क्रमशः 'काव्य शरीर निर्णय', 'अलंकार निर्णय', 'दोष

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

निर्णय', 'न्याय निर्णय', 'शब्द शुद्धि' जैसे छः मुद्दों पर विचार किया गया है। भामह ने 'वक्रोक्ति' को समस्त अलंकारों का मूल मान। उन्होंने अलंकारों की संख्या 38 मानी। भामह के बाद आचार्य दंडी (7 वीं शती) ने 'काव्यदर्श' ग्रंथ लिखकर 'अलंकार संप्रदाय' की परंपरा को आगे बढ़ाया। दंडी ने भामह के अलंकार विवेचन को संशोधित कर अलंकारों की संख्या 35 मानी। बाद में उद्भट (9 वीं शती) ने कुछ अलंकारों को जोड़कर अलंकारों की संख्या 41 कही। रुद्रट ने 'काव्यालंकार' ग्रंथ में अलंकारों की संख्या 50 से अधिक कही। रुद्रट के पूर्व कुछ अलंकारवादियों ने रस, भाव आदि को भी अलंकार माना, किन्तु रुद्रट ने इसका विरोध किया। आगे चलकर कुछ आचार्यो ने अपने-अपने ढंग से अलंकारों का निरूपण किया, जैसे- मम्मट (11 वीं शती, ग्रंथ-काव्य प्रकाश), रुय्यक(12 वीं शती, ग्रंथ-अलंकार सर्वस्व), जयदेव (13 वीं शती, ग्रंथ-चन्द्रालोक), विद्याधर (13 वीं शती, ग्रंथ-एकावली), विश्वनाथ (14 वीं शती, ग्रंथ-साहित्य दर्पण), केशव मिश्र (16 वीं शती, ग्रंथ-अलंकार शेखर), अप्पय दीक्षित (17 वीं शती, कुवलयानन्द) आदि। इनमें से मम्मट और विश्वनाथ को छोड़कर शेष सभी अलंकारवादी थे, जो अलंकार को ही काव्य की आत्मा मानते थे, जबकि मम्मट और विश्वनाथ क्रमशः ध्वनी और रस को मानते थे। कुवलयानन्द तक आते-आते अलंकारों की संख्या लगभग सवा सौ हो गयी।

2.3.3 काव्य में अलंकार का महत्व

'अलंकार' शब्द का अर्थ है 'आभूषण'। आभूषण जैसे शरीर का अंग नहीं है, वरन् ऊपर से पहननेवाला पदार्थ है वैसे 'अलंकार' काव्य के मूल विषय का अंग न होकर काव्य शैली से संबन्धित तत्व है। (अर्थात् अलंकार कथ्य न होकर कथन शैली का अंग है। आचार्य मम्मट के मत में 'जैसे हार आदि आभूषण कं' आदि अंगों की सुन्दरता बढ़ाते हैं वैसे अनुप्रास, उपमा आदि अलंकार शब्द और अर्थ के सौन्दर्य में वृद्धि करते हैं'। - 'काव्यप्रकाश' ग्रंथ

आभूषण पहनने पर भी शरीर का सौन्दर्य तब तक बना रहता है जब तक उसमें प्राण रहता है। अलंकार के बिना भी सरस (रस युक्त) रचना काव्य ही कही जाती है। क्योंकि रस काव्य का प्राण है (अर्थात् रस काव्य की आत्मा है।) किन्तु रसात्मक उक्ति का सौष्ठव 'अलंकार' से बढ़ जाता है। अतः'अलंकार' काव्य का अस्थिर धर्म है, जो काव्य का उत्कर्ष बढ़ाने में सहायक होता है। मतलब है कि अलंकार युक्त रहना काव्य के लिए अनिवार्य नहीं है।

अलंकार काव्य में शब्द और अर्थ का उत्कर्ष करनेवाला साधन है। अलंकार के सहारे कविता अपना सौन्दर्य बढ़ाती है। अलंकार साधन है, साध्य नहीं। वह अप्रस्तुत वस्तु योजना के रूप में हो (उदाः उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकार), वाक्य वक्रता के रूप में हो (उदाः अप्रस्तुत प्रशंसा, व्याज स्तुति, विरोधाभास आदि अलंकार) या वर्ण विन्यास के रूप में हो (उदाः अनुप्रास अलंकार) भावोत्कर्ष के साधन बनते हैं। रस के पोषक के रूप में अलंकार का प्रयोग होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'रस मीमांसा' नामक आलोचनात्मक ग्रंथ के पहले संस्करण में कहा है- 'जैसे एक असुन्दर स्त्री अलंकारों से सुन्दर नहीं हो सकती वैसे प्रस्तुत वस्तु या तथ्य की रमणीयता के अभाव में अलंकारों का ढेर काव्य का सजीव रूप नहीं खड़ा कर सकता।' (अर्थात् काव्य का अपना सहज सौन्दर्य है, उसे बढ़ाने का कार्य मात्र 'अलंकार' कर सकता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी-कभी सहायक होनेवाली उक्ति काव्यालंकार है।'

2.3.4 अलंकारवादियों की परंपरा

'अलंकार संप्रदाय' के प्रवर्तक हैं आचार्य भामह। उन्होंने अलंकार को काव्य का प्रमुख अंतरंग तत्व माना। भामह के 'काव्यालंकार' ग्रंथ के टीकाकार उद्भट ने 'काव्यालंकार लोचन'भामह के मतों का पोषण किया।

भामह के मत में 'न कान्तमपि निभूषं विभाति

वनितामुखम्'। (अर्थात् 'यह निश्चय है कि आभूषण के बिना वनिता का मुख शोभा नहीं पाता है।') ।भामह ने वक्रोक्ति को अलंकार का मूल माना। उनके शब्द और अर्थ साधारण नहीं है, अपितु वक्र हैं। यह वक्रता अलंकारों से ही उत्पन्न होती है।

उनके 'शब्दार्थो काव्यं' (अर्थात् 'शब्दार्थ काव्य है') का अर्थ यही है कि 'काव्य अलंकारों से युक्त है।'

उद्भट ने भामह के 'काव्यालंकार' ग्रंथ की टीका लिखकर 'काव्यालंकार लोचन - भामह के 'अलंकार संप्रदाय' का समर्थन किया।

दंड़ी अलंकारवादी आचार्य हैं। उन्होंने अलंकारों को काव्य का शोभाकारक धर्म कहा-'काव्य शोभाकारान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते।' (अर्थात् 'काव्य का शोभाकारक (शोभा करनेवाला) धर्म अलंकार कहा जाता है।') दंड़ी ने रस, भाव आदि को स्वतंत्र स्थान नहीं दिया। उन्होंने 'रस' को 'रसवत अलंकार' कहा। उन्होंने आ‌ठों रसों को 'रसवत् अलंकार' माना। उन्होंने काव्य के शोभाकारक तत्वों को अलंकार माना। भामह ने वक्रोक्ति को अलंकार का परम आश्रय माना, तो दंड़ी ने अतिशयोक्ति को माना। काव्य की आत्मा पर भामह का भी ध्यान नहीं गया। काव्य के शरीर (अर्थात् शब्दार्थ) और उसके अलंकारों पर ही उन्होंने विचार किया। दंड़ी की रचना है 'काव्यादर्श।'

वामन ने अलंकार को महत्वपूर्ण स्थान दिया। किन्तु सहायक रूप में माना। उन्होंने 'काव्यालंकार' ग्रंथ में 'सौन्दर्य' का 'प्रतिष्ठापरक' कहा, यथा- 'सौन्दर्यमलंकारः' ((अर्थात् 'अलंकार सौन्दर्य है।') वामन के मत में अलंकार से ही काव्य ग्राह्य बनता है। यथा- 'काव्य ग्राह्यमलंकारात्'। ((अर्थात् 'अलंकार' से काव्य ग्राह्य बनता है। उन्होंने 'गुण' (काव्य गुण) को नित्य तत्व और 'अलंकारों' को सहायक तत्व माना। वामन ही पहले आचार्य है, जिन्होंने अलंकारों और गुणों में भेद स्पष्ट किया।

रूद्रट ही पहले आचार्य हैं, जिन्होंने रस को अलंकार (रसवद् अलंकार) मानने की प्रवृत्ति का खंड़न किया। उन्होंने रस को स्वतंत्र स्थान दिया। उन्होंने रस-चित्रण पर विशेष बल दिया और अन्य कवियों को भी इसके लिए प्रेरित किया।

यथा- तस्मात् कर्तव्य यत्ने महीयसा रसैर्युक्तम्।

(तमस्मात् = इसलिए, कर्तव्यं = कर्तव्य, यत्नेन = यत्न से, महीयसा = बहुत बड़ा, रसैर्युक्तम् = रसः युक्तम् = रस युक्त।)

(अर्थात् 'इसलिए बहुत बड़े यत्न से रस युक्त काव्य करना (हमारा) कर्तव्य है।' रूद्रट का अलंकार निरूपण भी नितांत मौलिक है। उन्होंने ही सर्वप्रथम वास्तव, औपम्य अतिशय और श्लेष आदि के आधार पर अलंकारों का वर्गीकरण किया और अलंकारों के सूक्ष्म भेदों- उपभेदों का निरूपण किया।

रूद्रट के पश्चात् 'ध्वनि सिद्धांत' की स्थापना होने से रूद्रट के समर्थकों (रूय्यक, अप्पय दीक्षित, जयदेव आदि) को अलंकारवादी होने के नाते अलंकार संप्रदाय के क्षेत्र में विशेष महत्व नहीं मिला। जयदेव ने अलंकार का प्रबल समर्थन किया।

Critical Overview / अवलोकन

आभूषण पहनने पर भी शरीर का सौन्दर्य तब तक बना रहता है जब तक उसमें प्राण रहता है। अलंकार के बिना भी सरस (रस युक्त) रचना काव्य ही कही जाती है। क्योंकि रस काव्य का प्राण है (अर्थात् रस काव्य की आत्मा है।) किन्तु रसात्मक उक्ति का सौष्ठव 'अलंकार' से बढ़ जाता है। अतः'अलंकार' काव्य का अस्थिर धर्म है, जो काव्य का उत्कर्ष बढ़ाने में सहायक होता है।

Recap / पुनरावृत्ति

- ‘अलंकार संप्रदाय’ भारतीय काव्यशास्त्र में ‘रस संप्रदाय’ के अतिरिक्त सबसे पुराना है
- काव्य में ‘अलंकार’ कवि की वाणी के आभूषण हैं
- ‘अलंकार’ शब्द का अर्थ है ‘आभूषण’
- अलंकार के बिना भी सरस (रस युक्त) रचना काव्य ही कही जाती है
- ‘अलंकार’ काव्य का अस्थिर धर्म है, जो काव्य का उत्कर्ष बढ़ाने में सहायक होता है
- अलंकार काव्य में शब्द और अर्थ का उत्कर्ष करनेवाला साधन है
- अलंकार के सहारे कविता अपना सौन्दर्य बढ़ाती है
- ‘अलंकार संप्रदाय’ के प्रवर्तक हैं आचार्य भामह

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. काव्यालंकार के रचनाकार कौन है?
2. काव्यदर्श के रचनाकार कौन है?
3. अलंकार संप्रदाय के प्रवर्तक कौन है?
4. ‘अलंकार’ शब्द का अर्थ क्या है?
5. काव्य में अलंकार होने से क्या तात्पर्य है?
6. भामह ने अलंकार को क्या माना है?

Answers / उत्तर

1. भामह
2. दंडी
3. आचार्य भामह
4. आभूषण
5. काव्य में ‘अलंकार’ कवि की वाणी के आभूषण हैं
6. भामह ने अलंकार को काव्य का प्रमुख अंतरंग तत्व माना।

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. काव्य में अलंकारों का स्थान निर्धारित कीजिए।
2. अलंकार आचार्य भामह पर टिप्पणी
3. अलंकार और काव्य संबंधी विषय पर चर्चा लिखिए।
4. अलंकार सिद्धांत और अन्य काव्य संबंधी सिद्धांत पर आलेख तैयार कीजिए।

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

SGOU

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

इकाई 4 अलंकार निरूपण

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- शब्दालंकार के सोदाहरण सहित परिचय प्राप्त करता है
- अर्थालंकार के सोदाहरण सहित परिचय प्राप्त करता है
- उभयालंकार के सोदाहरण सहित परिचय प्राप्त करता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

काव्य में 'अलंकार' शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म हैं। अतः अलंकार के मुख्य दो भेद होते हैं- (1) शब्दालंकार और (2) अर्थालंकार। अलंकार का और एक भेद है 'उभयालंकार'। शब्द संबन्धी चमत्कार से युक्त अलंकार 'शब्दालंकार' है। अर्थ संबन्धी विशेषता उत्पन्न करनेवाला अलंकार 'अर्थालंकार' है। शब्द और अर्थ दोनों (उभय) पर आश्रित रहकर दोनों को चमत्कृत करनेवाला अलंकार 'उभयालंकार' है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

अनुप्रास, छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास, कोमला वृत्ति, परुषा वृत्ति, श्रुत्यानुप्रास, अंत्यानुप्रास, लाटानुप्रास

Discussion / चर्चा

2.4.1 शब्दालंकार

शब्द विशेष के प्रयोग के कारण काव्य में चमत्कार उत्पन्न होता है तो 'शब्दालंकार' है। उस शब्द विशेष के स्थान पर उसका पर्यायवाची शब्द रखे तो अलंकार लुप्त होता है। अनुप्रास, यमक, वक्रोक्ति, श्लेष आदि प्रमुख शब्दालंकार हैं।

2.4.1.1 अनुप्रास

काव्य पंक्ति के पदों में समान व्यंजन वर्ण एकाधिक बार एक ही क्रम में आते हैं तो 'अनुप्रास अलंकार' होता है। 'वर्णसाम्यमनुप्रासः' (काव्य प्रकाश), (अर्थात् - 'वर्ण-साम्य होने पर 'अनुप्रास अलंकार' होता है। 'मात्र व्यंजनों की आवृत्ति होने पर 'अनुप्रास अलंकार' होता है, स्वरों की आवृत्ति में नहीं।

उदाः 'कल कल कोमल कुसुम कुंज पर' पंक्ति में कल, कल, कोमल, कुसुम, कुंज आदि पदों में अ, अ, ओ, उ, उं से युक्त 'क्' व्यंजन की आवृत्ति हुई है। यानी स्वर भिन्न हैं और व्यंजन (क्) समान है। उक्त पंक्ति में 'क्' व्यंजन प्रत्येक शब्द का पहला वर्ण है। अतः अनुप्रास अलंकार है।

अनु (=अनुगामिनी) + प्र (=प्रकर्ष) + आस (=बार बार रखना) के योग से 'अनुप्रास' शब्द बना है। 'अनुप्रास' का अर्थ है 'वर्णनीय' रस की अनुकूलता के अनुसार वर्णों को बार-बार रखना। 'अनुप्रास' रस की अनुगामिनी प्रकृष्ट रचना है। 'अनुप्रास' में रस के संचार में सहायक पदों की रचना होती है।

'अनुप्रास' अलंकार पाँच प्रकार के होते हैं- (1) छेकानुप्रास, (2) वृत्यानुप्रास, (3) श्रुत्यानुप्रास, (4) अंत्यानुप्रास और (5) लाटानुप्रास। अनुप्रास के इन प्रकारों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार हैं-

'**छेकानुप्रास**' जहाँ पर व्यंजन वर्ण की एक बार समता हो वहाँ छेकानुप्रास होता है। जैसे-

'जन रंजन भंजन दनुज, मनुज रूप सुर भूप।' यहाँ 'जन', 'नुज' और 'प' की एक बार आवृत्ति हुई है।

'**वृत्यानुप्रास**' जहाँ पर व्यंजन वर्णों की अनेक बार आवृत्ति हो वहाँ वृत्यानुप्रास होता है। इस अनुप्रास का नाम 'वृत्ति' के आधार पर पड़ा है। वृत्तियाँ तीन हैं 'मधुरा(उपनागरिका) वृत्ति, कोमला वृत्ति और 'पा वृत्ति। 'मधुरा वृत्ति' में मधुर वर्णों की आवृत्ति होती है। (अर्थात् 'ट'वर्ग को छोड़कर अन्य वर्णों, सानुनासिक वर्णों आदि की आवृत्ति होती है। उदाः

कंकन किंकिन नुपूर धुनि सुनि। -

('न' वर्ण की आवृत्ति हुई है।)

तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नैन सुख रंजन जातक से। -

(सानुनासिक वर्णों,ज, न आदि वर्णों की आवृत्ति हुई है।)

'**कोमला वृत्ति**' में य, र, ल, व आदि वर्णों की आवृत्ति होती है और अल्प समास होता है।

उदा : नवस कंवल हूते कोंबल चरन है।-

(कंवल चरण (=चरण कमल) में समास है। व, ल आदि वर्णों की आवृत्ति है।)

'**परुष वृत्ति**' में ट, ', ड, ढ जैसे ओजपरक वर्णों की आवृत्ती होती है। उदाः

'सब जाति फटी दुख की दुपटी, कपटी न रहै'- यहाँ 'ट' वर्ण की आवृत्ति है।

(3) श्रुत्यानुप्रास 'एक ही उच्चारण स्थान से उच्चरित वर्णों की आवृत्ति है तो श्रुत्यानुप्रास है। उदाः'तुलसीदास सीदत निसि दिन देखत तुम्हारी निठुराई।-

- इसमें 'त', 'स' आदि दंत्य वर्णों की आवृत्ति है।

(4) अंत्यानुप्रास 'छंद के अंतिम चरण में वर्ण की समता है तो अंत्यानुप्रास है। उदाः

'देख्यौ शुद्धोदन महीपाल

वा रैन दिन है अति विहाल

लखि परयो इंद्र को ध्वज बिसाल

अति शुभ्र खचित रवि किरण जाल।'

-इसमें अंतिम 'ल' वर्ण की समता है।

(5) लाटानुप्रास 'यह लाट देश (दक्षिणी गुजरात) के लोगों को अधिक प्रिय होने से 'लाटानुप्रास' नाम पड़ा। इसमें शब्द और अर्थ एक ही रहते हैं, किन्तु अन्य पद के साथ अन्वय करे तो पूरी उक्ति का अर्थ भिन्न होता है।

उदा : पराधीन जो जन, नहीं स्वर्ग नरक ता हेतु

पराधीन जो जन नहीं, स्वर्ग नरक ता हेतु

'इसमें पहले दल का अर्थ है कि 'जो जन पराधीन है, ता हेतु (=उसकेलिए) स्वर्ग नहीं, नरक बना है। 'दूसरे दल का अर्थ है कि' जो जन पराधीन नहीं है उसकेलिए नरक (भी) स्वर्ग है। '(अर्थात् उसे स्वाधीन या स्वतंत्र होने के कारण नरक का वा सभी स्वर्ग के समान सुखद है।'

'पूत सपूत तो का धन संचय

पूत कपूत तो का धन संचय।'

(पूत = पुत्र, सपूत = सुपुत्र, कपूत = दुष्ट पुत्र,

का = क्या) अन्वय करने पर अर्था होता है -'पुत्र सुपुत्र है तो उसकेलिए धन संचय करने से कोई लाभ नहीं। (अर्थात् वह अपनेलिए धन स्वयं कमायेगा)। पुत्र कुपुत्र है तो भी उसकेलिए धन संचय करने से कोई लाभ नहीं। (अर्थात् संचित धन को वह नष्ट कर देगा ही।)

2.4.1.2 यमक

लाटानुप्रास 'अनुप्रास' अलंकार के पाँच भेदों में एक है। 'लाटानुप्रास' में शब्दों या वाक्यों की आवृत्ती होती है। सभी बार शब्दों के अर्थ समान रहते हैं, किन्तु अन्वय करने से पूरी उक्ति का अर्थ बदल जाता है।

'लाटानुप्रास' से मिलता-जुलता, किन्तु भिन्न एक अलंकार है 'यमक।' 'यमक' में समान शब्द या वाक्यांश एकाधिक बार आते हैं, लेकिन उनके अर्थ सर्वत्र भिन्न होते हैं। 'यमक' शब्द का अर्थ है दो (जुड़वाँ)। जैसे जुड़वे बच्चे रूप में एक से होते हुए भी अलग-अलग व्यक्ति होते हैं वैसे एक ही रूप, किन्तु दो अर्थवाले शब्द (पद) की आवृत्ति होने से 'यमक' अलंकार होता है।

'यमक' के दो भेद होते हैं- अभंगपद यमक एवं भंगपद यमक। जहाँ एक ही रूपवाले पद एकाधिक बार भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होते हैं तो 'अभंगपद यमक' है।

जैसे-

'सजना है मुझे सजना के लिए।'

'यहाँ पहले 'सजना' का अर्थ है 'अलंकृत होना।'

दूसरे 'सजना' का अर्थ है 'नायक' (पति)।

अन्य उदा :

'कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय

यहि पाये बौराये जग उहि खाये बौराय।'

'यहाँ 'कनक' शब्द दो बार दो अर्थों में आया है। 'कनक' शब्द के क्रमशः अर्थ है 'सोना' और 'धतूरा'। 'कनक' शब्द का भंग किये बिना ही ये अर्थ मिलते हैं। अतः'कनक' शब्द में 'अभंगपद यमक' है। 'अभंग' का अर्थ है 'मिला हुआ।'

जहाँ एक ही रूपवाले पद की आवृत्ति होती है और उनमें किसी एक को भंग करके वाक्य के अन्य पद का अंश मानने से ही अर्थ मिलता है वहाँ 'भंगपद यमक' है। उदाः

'सीतल चंदन चंद न ही।'- यहाँ दूसरी बार 'चंदन' उच्चारण के लिए 'नहीं' का पहलेवाला 'न' वर्ण उसके पहलेवाले 'चंद' शब्द के अंत में जोड़कर उच्चरित करना है। (जैसे - चंद न = चंदन)। 'भंग' का अर्थ है 'टूटा हुआ।'

'तू मोहन के उर बसी है, उरबसी समान'

यहाँ 'उर बसी' प्रयोग में 'भंगपद यमक है' 'उरवसी' का अर्थ है 'उर में बसी।' 'उरबसी' का अर्थ है 'उर्वशी'।

2.4.1.3 श्लेष

'यमक' अलंकार में एक ही शब्द एकाधिक बार भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है। किन्तु कोई शब्द एक ही बार प्रयुक्त हो और उसके एकाधिक अर्थ हों तो 'श्लेष अलंकार' होता है। 'श्लेष' शब्द का अर्थ है 'चिपका हुआ'। 'श्लेष' के लिए प्रयुक्त शब्द में एक सेअधिक अर्थ चिपके रहते हैं।

'श्लेष' अलंकार के दो प्रकार हैं- (1) शब्द श्लेष और (2) अर्थ श्लेष। 'शब्दश्लेष' में 'श्लेष' केलिए प्रयुक्त शब्द के एकाधिक अर्थ होते हैं। उस शब्द के स्थान पर उसका पर्याय रख दिया जाये, तो श्लेष नहीं रहता।

उदा : 'पानी गए न ऊबरै मोती मानस चूना।'- में 'पानी' शब्द एक बार प्रयुक्त हुआ है जिसके क्रमशः अर्थ है क्रांति, आत्म सम्मान और जल। कांति नहीं है तो मोती, आत्मसम्मान नहीं है तो मन, जल नहीं है तो चूना नहीं बचते।

'चिरजीवो जोरी जुरै क्यों न सनेह गंभीर।

को घटि, ये वृषभानुजा वे हलधर के वीर'।।

-इसमें 'वृषभानुजा' के दो अर्थ हैं-(1) वृषभानु+जा= वृषभानु की पुत्री 'राधा' (2) वृषभ + अनुजा= बैल की अनुजा 'गाय'। 'हलधर के वीर' के दो अर्थ हैं - (2) हल धारण करनेवाला वीर 'बैल', (1) हलधर (बलराम) का वीर भाई 'कृष्ण'। पंक्तियों का अर्थ है - राधा और कृष्ण की जोड़ी चिरंजीवी रहेगी। उनका स्नेह क्यों गंभीर नहीं है? इनमें कौन-सी कमी है?

एक वृषभानु की पुत्री 'राधा' है तो दूसरा बलराम का भाई 'कृष्ण' है। एक बैल की बहन 'गाय' है तो दूसरा हल धारण करनेवाला बैल है।

'अर्थ श्लेष' में श्लेष केलिए प्रयुक्त शब्द का अर्थ दो या अधिक पक्षों में लागू होता है। उस शब्द के पर्यायवाची शब्द प्रयुक्त होने पर भी अर्थ बने रहते हैं।

2.4.1.4 वक्रोक्ति

'वक्र' (अर्थात् 'टेढ़ा') और 'उक्ति' (अर्थात् 'कथन') शब्दों के योग से 'वक्रोक्ति' शब्द बना है। कही गयी उक्ति को घुमा-फिराकर उसका दूसरा अर्थ ग्रहण करना 'वक्रोक्ति' है। जहाँ पर श्लेष से अथवा काकु (अर्थात् कं' की विशेष ध्वनि) के कारण प्रत्यक्ष अर्थ के स्थान पर दूसरा अर्थ कल्पित किया जाए वहाँ पर 'वक्रोक्ति' होती है।

वक्रोक्ति दो प्रकार होती है - श्लेष वक्रोक्ति और काकु वक्रोक्ति।

'श्लेष वक्रोक्ति' में वक्ता जो कहना चाहता है उससे भिन्न अर्थ श्रोता ग्रहण करता है। उदा :

'है री सखी कृष्णचंद्र? चन्द्र कहूँ कृष्ण होता?' - इस पंक्ति में 'कृष्ण' का अर्थ 'काला' लगाया गया है अतः इसमें राधा से पूछा जाता है - 'री सखी (तेरा प्रेमी) कृष्ण चंद्र है? (चाँदनी देनेवाला) चन्द्र कहीं कृष्ण (काला) होता है?'

अन्य उदाः

'को तुम? हरि प्यारी? कहा वानर को पुर काम?

स्याम सलोने, स्याम कपि? क्यों ने डरै तब नावम"

- इसमें 'हरि' (कृष्ण) का अर्थ 'वानर' तथा 'श्याम' (कृष्ण) का अर्थ 'काला' लगाये गये हैं। (उपर्युक्त पंक्तियों का अर्थ है - 'कौन हो तुम? हरि (वानार) की प्यारी है'? वानर को पुर में कहा (उक्या) काम है? कृष्ण काला है, कपि (वानर) भी काला है। तब उससे क्यों न डरे? 'यहाँ वक्रोक्ति से 'हरि' का 'वानर' अर्थ निकलता है।

'काकु' का अर्थ है व्यंग्य। इसमें किसी शब्द का ऐसा उच्चारण करता है जिससे उसका विरुद्ध अर्थ सूचित हो। कं' की विशेष ध्वनि 'काकु' है। यानी इसमें शब्द की विशेष ध्वनि से (अर्थात् शब्द के विशेष उच्चारण से उसका भिन्न अर्थ या अभिप्राय ग्रहण किया जाता है। काकु युक्त उच्चारण से निषेधात्मक अर्थ या विपरीतार्थ निकलता है। कभी कहे हुए वाक्य का कं' की ध्वनि या स्वर विकार से अन्य अर्थ निकलता है तो 'काकु वक्रोक्ति' है। उदाः

'मैं सुकुमारी नाथ वन जोगू।'

मैं सुकुमारी हूँ, पर नाथ वन में योगी बना है।'

(सुकुमारी= कोमलांगी, जोगू= योगी, वैरागी) (अर्थात् यह अर्थ तभी मिलता है जबकि 'सुकुमारी' के उच्चारण के बाद थोड़ा 'ककर बाकी शब्दों का उच्चारण किया जाता है।

2.4.2 अर्थालंकार

अर्थालंकार अर्थ पर आधारित है। अतः शब्द के स्थान पर उसके पर्यायवाला शब्द रखने पर भी अलंकार बना रहता है। प्रमुख अर्थालंकार हैं- उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत, विरोधाभास आदि। जैसे-

2.4.2.1 उपमा

उपमा सादृश्यमूलक (साम्यमूलक) अलंकार है। इसमें उपमेय (जिसकी उपमा किसी वस्तु से की जाये) और उपमान (वह वस्तु जिससे उपमा दी जाये) की समानता का भाव रहता है। उपमा अलंकार में किसी वस्तु की विशेषता (रूप, गुण आदि संबन्धी विशेषता)

स्पष्ट करने केलिए समान विशेषता प्रत्यक्ष होनेवाली दूसरी वस्तु से समता की जाती है। उपमा के चार अंग होते हैं 'उपमेय, उपमान, वाचक और धर्म।

उपमेय- जिस वस्तु की समता की जाती है (या उपमा दी जाती है) वह 'उपमेय' कहलाता है। इसे 'विषय', वर्ज्य या 'प्रस्तुत' भी कहते हैं।

उपमान - जिस वस्तु से समता की जाती है (या उपमा दी जाती है) वह 'उपमान' कहलाता है। इसे 'विषयी', 'अवर्ण्य' या 'अप्रस्तुत' भी कहते हैं।

वाचक - उपमेय और उपमान की समता प्रकट करनेवाला शब्द 'वाचक' कहलाता है।

धर्म - उपमेय और उपमान में रूप, गुणयारंग का जो साम्य है वह 'धर्म' कहलाता है।

उपमा का उदा : 'पीपर पाक सरिस मन डोला।'- यहाँ मन उपमेय पीपर (= पीपल) उपमान, सरिस (= सदृश) वाचक शब्द और डोला (=हिला) धर्म हैं।

उपमा के भेदः पूर्णोपमा के चारों अंग काव्य पंक्ति में प्रत्यक्ष हैं तो 'पूर्णोपमा' है। उदा : उपर्युक्त पंक्तियाँ।

लुप्तोपमाः उपमान, उपमेय, धर्म और वाचक में से (उपमा के चार अंगों में से) किसी का लोप हो तो 'लुप्तोपमा' है। उपमेय लुप्तोपमा (उपमेय का लोप हो तो) का उदाहरण हैं- 'कल्पलता' सी अतिशय कोमल'। यहाँ कल्पलता- उपमान, सी-वाचक, अतिशय कोमल- धर्म ।यहाँ उपमेय वस्तु का लोप है।

मालोपमाः साधारणतया एक उपमेय की तुलना एक उपमान से की जाती है। कभी-कभी उपमेय का उत्कर्ष और भी बढ़ाने के लिए एक उपमेय केलिए एकसाथ बहुत से उपमान लाये जाते हैं। तब उपमानों की एक माला तैयार होती है। इसे 'मालोपमा' कहते हैं। यानी जहाँ एक ही उपमेय के कई उपमान माला के समान आते हैं वहाँ 'मालोपमा' होती है। उदाः

'हिरनी से मीन से सुखंजन से चा' कमल से विलोचन तुम्हारे।' - यहाँ लोचन (उपमेय) की तुलना हिरनी, मछली, खंजन कमल आदि (चार उपमानों) सी की गयी है।'हिरन' मृग है, 'मीन' मछली है, 'खंजन' पक्षी है और 'कमल' फूल है।

अन्य उदा : बिना प्राण के जैसे गात, बिना चंद के जैसे रात।

बिना नीर के जैसे ताल, बिना स्वामी के जैसे ताल।।

- यहाँ स्वामिहीन बाला (स्त्री) उपमेय है। इस उपमेय की तुलना (1) बिन प्राण के गात (निर्जीव देह) (2) बिन चाँद की रात (अंधेरी रात) और (3) बिन नीर के ताल (सूखे तालाब) से की गयी है। एक उपमेय की तुलना तीन उपमानों से की गयी है।

रसनोपमाः जहाँ उपमान या उपमेय उत्तरोत्तर (एक के अनंतर दूसरा) उपमेय या उपमान होते हैं वहाँ रसनोपमा है। (अर्थात् पहला उपमेय दूसरे उपमेय का उपमान हो जाये और दूसरा उपमेय तीसरे उपमेय हो उपमान बन जाये, इस प्रकार क्रम चलता जाये तो 'रसनोपमा' अलंकार है।

उदा :- 'वच सी माधुरि मूरती, मूरती सी कल कीरति।

कीरति लौ सब जगत में, छायी रही तव नीति।।'

(वच= वचन, सी = समानमाधुरि = मधुर, मूरर्ती = मूर्ति, कल = मधुर, की रति = कीर्ति, तव = तुम्हारी)

(अर्थात् 'तुम्हारे वचन के समान मधुर तुम्हारी मूर्ति है, मूर्ति के समान तुम्हारी मधुर कीर्ति सब जगत में (पूरे संसार में)' छायी हुई है; कीर्ति के समान ही तुम्हारी नीति सब जगत में छायी हुई है।

-इस उदाहरण में पहला उपमेय वचन मूर्त्ति का उपमान बन जाता है, फिर मूर्त्ति उपमेय कीर्त्ति का उपमान कीर्त्ति उपमेय नीति का उपमान बन जाते हैं। अतः रसनोपमा अलंकार है।

उपमेयोपमाः उपमेय और उपमान एक दूसरे के उपमान और उपमेय हो जाते हैं तो उपमेयोपमा है।

उदा :- भरत राम सम राम भरत सम। - यहाँ भरत

और राम परस्पर एक दूसरे के उपमेय और उपमान होते हैं।

अन्य उदाः भूपर भाऊं भुवप्पति को कर सो मन औ मन सो कर ऊँचो। (भू पर = भूमि पर, भाऊ = बूँदी नरेश भाऊसिंह, भुवप्पति = भूपति उ राजा, को = का, कर = हाथ, सो = सा = जैसा, औ = और, ऊँचो= ऊँचा) (अर्थात् राजा भाऊ सिंह का कर जैसा मन ऊँचा (विशाल) है और मन जैसा कर ऊँचा है।

-यहाँ भाऊसिंह का कर और भाऊ सिंह का मन एक दूसरे के उपमेय और उपमान हैं। धर्म है 'ऊँचा'। वाचक शब्द है 'सो'।

अनन्वयोपमाः उपयुक्त उपमान न मिल सकने के कारण स्वयं उपमेय को ही उपमान मान लिया जाता है तो 'अनन्वयोपमा' है। (अर्थात् इसमें उपमेय के समान उपमेय ही कहा जाता है। उदाः 'भरत भरत सम जानि'। (अर्थात् 'भरत को भरत समान मानना चाहिए।' यहाँ भरत (उपमेय) का उपमान भरत ही कहा गया है।यानी भरत सदृश और कोई उपमान नहीं है।

2.4.2.2 रूपक

यह अभेद प्रधान अलंकार है। इसमें उपमेय पर उपमान का आरोप होता है।

'उपमा' अलंकार में उपमेय और उपमान का भेद बना रहता है। किन्तु जब उपमेय और उपमान में इतनी समता रहती कि दोनों एक जैसे जान पड़ते हैं तो 'रूपक' अलंकार है। 'रूपक' में उपमेय और उपमान का भेद बना रहता है। परंतु जब दोनों में समता बढ़ जाती है तब दोनों एक जैसे जान पड़ते हैं तो 'रूपक' होता है। उदाः

'चन्द्रमुख' का अर्थ है 'चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख'। किन्तु 'मुखचन्द्र' का अर्थ 'मुख के समान सुन्दर चन्द्रमा' नहीं हो सकता। तब 'मुख चन्द्र' का अर्थ होता है 'मुख ही चन्द्रमा है।'

रूपक के भेदः

उपमेय में उपमान के आरोप के आधार पर 'रूपक' के दो भेद हैं - (1) अभेद रूपक, (2) तद्रूप रूपक। उपमेय पर उपमान का आरोप दो प्रकार का होता है, एक अभेदता के द्वारा, दूसरा तद्रूपता के द्वारा। इस आधार पर ही रूपक के (1) तद्रूप रूपक, (2) अभेद रूपक जैसे दो भेद किये गये हैं।)

अभेद रूपकः उपमेय और उपमान में भेद नहीं देखा जाता तो 'अभेद रूपक' है।

उदाः (1) 'राम के नेत्र कमल ही हैं'(2)'कमल नयन'। इन उदाहरणों में नेत्र(नयन) और कमल में भेद नहीं रखा गया है। उपमेय (नेत्र/नयन), और उपमान (कमल) में भेद नहीं रखा गया है, अतः अभेद रूपक अलंकार है। 'अंबर पनघट में डूबो रही ताराघट उषा नागरी।'-इसका अर्थ है 'आकाश रूपी पनघट (पानी भरने का धार है 'पनघट') में उषा रूपी स्त्री तारा रूपी घड़े को डूबो रही है। इसमें आकाश पर पनघट का, उषा पर स्त्री का और तारा (नक्षत्र) पर घड़े का आरोप होने से अभेद रूपक अलंकार है।

उपमेय और उपमान में भेद रखते हुए भी, रूप, गुण या धर्म की एकरूपता स्थापित हो जाती है तो 'तद्रूप रूपक' है। उदा : 'अर्जुन का पाशुपात दूसरा पक्षधारी सर्प था। इसमें में 'पाशुपात'(उपमेय) और सर्प'(उपमान) को भिन्न समझते हुए भी पहले का दूसरे में आरोप किया गया है। 'तद्रूप रूपक' में 'दूसरा', 'अन्य', 'ऊपर' आदि शब्दों द्वारा उपमेय और उपमान की भिन्नता प्रकट की जाती है। (अर्थात् उपमान उपमेय का रूप धारण करता है, पर एक नहीं हो पाता।

'अभेद रूपक' और 'तद्रूप रूपक' में प्रत्येक के तीन भेद माने गये हैं - अधिक, न्यून और सम।

अधिक अभेद रूपक में उपमेय उपमान से अधिक दिखाया जाता है, फिर भी अभेदता रहती है। हीन अभेद रूपक में उपमेय में उपमान से कुछ कमी होने पर भी अभेदता रहती हैं। सम अभेद रूपक में उपमेय

और उपमान में पूर्ण साम्य होते हुए अभेदता दिखाई देती है।

'अधिक तद्रूप रूपक' में उपमेय में उपमान से गुण अधिक विशेषतावाला होने पर भी दोनों में तद्रूपता दिखाई पड़ती है। 'हीन तद्रूप रूपक' में उपमेय में उपमान से गुण कम होने पर भी दोनों में तद्रूपता दिखाई पड़ती है। 'सम तद्रूप रूपक' में उपमेय और उपमान में पूर्ण साम्य होते हुए तद्रूपता (एक का दूसरा रूप) दिखाई पड़ती है। 'तद्रूप रूपक' में एक दूसरे का रूप धारण करता है, किन्तु एक नहीं हो पाता।

अंगों के आधार पर भेदः रूपक के अंगों के आधार पर उसके दो भेद हैं - (1) सांगरूपक, (2) निरंगरूपक उपमेय में उपमान का अंगों सहित आरोप होता है तो सांगरूपक अलंकार होता है।

उदाः 'अम्बर पनघट में डूबो रही ताराघर उषा नागरी।'

(अर्थात् 'आकाशरूपी पनघट में उशा रूपी स्त्री ताता रूपी घड़े को डूबो रही है।'

जहाँ संपूर्ण अंगों का नहीं, केवल एक अंग का आरोप किया जाता है। निरंगरूपक अलंकार होता है।

उदाः 'ओ चिन्ता की पहली रेखा,

अरी विश्व वन की व्याली।'

- इसमें चिंता को व्याली का रूप दिया है, किन्तु व्याली के विभिन्न अंगों का चित्रण नहीं किया गया है।

उत्प्रेक्षाः'उत्प्रेक्षा' अलंकार की स्थिति उपमा और रूपक के बीच की है। इसमें 'उपमा' की भाँति उपमेय(प्रस्तुत) और उपमान (अप्रस्तुत) का सादृश्य नहीं बताया जाता है और 'रूपक' की भाँति उपमेय और उपमान को (एकाकार भी नहीं कर दिया जाता है। इसमें केवल उपमेय में उपमान की संभावना या कल्पना की जाती है। इसके वाचक शब्द हैं - जनु, मनु, जानो, मानो आदि। उदाः

उपमाः 'मुख चाँद सा सुन्दर है।' यहाँ 'मुख' उपमेय और चाँद उपमान का सादृश्या बताया गया है। 'सा' वाचक शब्द है। 'सुन्दर' धर्म है।

रूपक : 'मुख - चाँद के सौन्दर्य का क्या कहना !' यहाँ 'मुख-चाँद' का अर्थ है 'मुख रूपी चाँद'। मुख और चाँद का एकाकार किया गया है।

उत्प्रेक्षाः 'मुख मानो चाँद है।' यहाँ 'मुख' उपमेय में 'चाँद' उपमान के सौन्दर्य की संभावना की गयी है। 'मानो' वाचक शब्द है।

उत्प्रेक्षा केलिए अन्य उदाहरण -

'स्वर्ण शालियों की कलमें थीं. दूर-दूर तक फैल रहीं।

शरद इन्दिरा के मन्दिर की मानो कोई गैल रही।'

-यहाँ दूर-दूर तक फैली स्वर्ण शालियों (धानों) की कलमें (उपमेय) में शरद इंदिरा के मंदिर की गली (उपमान) की संभावना की गयी है।

उत्प्रेक्षा के भेदः 'उत्प्रेक्षा' अलंकार में संभावना वस्तु रूप में, हेतु रूप में या फल रूप में की जाती है। अतः'उत्प्रेक्षा' के तीन मुख्य भेद हैं- वस्तूत्प्रेक्षा, हेतुत्प्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा इन भेदों में क्रमशः विषय - वस्तु, कारण, परिणाम आदि की कल्पना की जाती है। 'वस्तुत्प्रेक्षा' में किसी विषय या वस्तु के स्वरूप - स्पष्टीकरण केलिए उपमेय (प्रस्तुत) में उपमान (अप्रस्तुत) की कल्पना की जाती है। 'हेतुत्प्रेक्षा' में अहेतु (जो वास्तविक कारण नहीं है) की हेतु (कारण) रूप में कल्पना की जाती है। 'फलोत्प्रेक्षा' में अफल (जो वास्तविक फल नहीं है) में फल की कल्पना की जाती है।

2.4.2.4 अतिशयोक्ति

अतिशय + उक्ति = अतिशयोक्ति। 'अतिशयोक्ति' में उपमेय (प्रस्तुत विषय) का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया जाता है। इसमें प्रस्तुत विषय का विवरण वास्तविकता से बहुत दूर होता है।

उदा : 'विधि हरिहर कवि कोविंद बानी।

कहत साधु महा सकुचानी।।'

विधि = ब्र्म्मा, हरिहर = विष्णु, कवि = महेश, कोविंद = बृहस्पति, बानी = वाणी देवी = सरस्वती, कहत = कहने में = वर्णन करने में, साधु महिमा = सज्जनों की महिमा, सकुचानी = संकोच करती)

(अर्थात् 'सज्जनों की महिमा का वर्णन करने में ब्र्म्मा, विष्णु, महेश, बृहस्पति और सरस्वती भी संकोच करती हैं।(अर्थात् 'सज्जनों की महिमा का वर्णन करने ये अपने को असमर्थ पाती हैं।'

अतिशयोक्ति के सात भेद हैं-'

1. **रूपकातिशयोक्ति :** इसमें केवल अप्रस्तुत (उपमान) का कथन किया जाता है और उससे उपमेय का बोध होता है। जब उपमेय और उपमान में इतना अभेद स्थापित किया जाता है कि उपमेय का अस्तित्व ही लुप्त होता है, केवल उपमान द्वारा उपमेय का बोध होता है।
2. **भेदकातिशयोक्ति :** उपमेय और उपमान में अभिन्नता होते हुए भी भिन्नता दिखाई देती है।
3. **संबंधातिशयोक्ति :** संबन्ध में असंबन्ध (योग्य में अयोग्यता) दिखाई देता है।
4. **असंबन्धातिशयोक्ति:** असंबन्ध में संबन्ध (अयोग्य में योग्यता) दिखाई देती है।
5. **चपलातिशयोक्ति:** हेतु (कारण) की चर्चा मात्र से कार्य संपन्न होता है।
6. **अतिक्रमणातिशयोक्ति:** कारण और कार्य एक साथ होते हैं।
7. **अत्यंतातिशयोक्ति:** कारण के पहले ही कार्य संपन्न होने का वर्णन किया जाता है।

दृष्टांत: कही गयी बात के निश्चय केलिए दृष्टांत देकर पुष्टि की जाती है तो 'दृष्टांत अलंकार' होता है। इसमें उपमेय और उसके साधारण धर्म का वर्णन करके उसकी तुलना में उपमान और उसके धर्म का वर्णन होता है।

उदा :-'सुख-दुख के मधुर मिलन से

यह जीवन हो परिपूरन

फिर धन में ओझल हो शशि

फिर शशि में ओझल हो धन।'

- यहाँ पहली दो पंक्तियों में सुख-दुख के मधुर मिलन से जीवन के परिपूर्ण होने की बात कही गयी है। अंतिम दो पंक्तियों में धन में शशि के ओझल हो जाने तथा शशि से धन के ओझल हो जाने के दृष्टांत से उसका निश्चय कराया गया है।

2.4.2.5 विरोधाभास

वास्तविक विरोध न रहकर भी किसी पदार्थ, गुण या क्रिया में विरोध के आभास का वर्णन होता है तो 'विरोधाभास' अलंकार है। उदाः 'व्यथा प्राण हूँ नित्य सुख का पता मैं।' - यहाँ एक ही व्यक्ति को 'व्यथा प्राण' और 'नित्य सुख का पता' कहने में विरोधाभास होता हैं। लेकिन मानव-जीवन में सुख और दुख मिलते रहने की बात कहने से यह विरोध मिट जाता है।

अन्य उदा: 'शीतल ज्वाला जलती है, ईंधन होता दृग जल का।'

ज्वाला शीतल नहीं हो सकती। जल ईंधन नहीं हो सकता। अतः उक्त पंक्ति में ज्वाला केलिए जल का ईंधन होना वर्णन में विरोधाभास है।

2.4.3 उभयालंकार

कवि की उक्ति में दो या अधिक अलंकार इस प्रकार मिले-जुले रहते हों कि पृथक न हो सकें, तो उभयालंकार है। संसृष्टि, संकट आदि ऐसे अलंकार हैं।

2.4.3.1 संसृष्टि

एक ही छंद में दो या अधिक अलंकार परस्पर निरपेक्ष रूप में प्रयुक्त होते हैं, तो 'संसृष्टि' अलंकार होता है। इसमें प्रयुक्त अलंकार एक दूसरे के आश्रय के बिना स्वतंत्र रूप से (अलग-अलग रूप से) पहचाने जा सकते हैं।

उदा : 'अमित, स्निग्ध, निर्धूम शिखा-सी देवों की काया है।

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

मर्त्यलोक की सुन्दरता तो क्षण भर की माया है।'

इसकी पहली पंक्ति में 'उपमा' अलंकार है ('शिखा' उपमान है, 'देवों की काया' उपमेय है, 'सी' वाचक शब्द है।) इस उदाहरण की दूसरी की पंक्ति में 'रूपक' अलंकार है, जो अभेदमूलक अलंकार है। यहाँ मर्त्यलोक की सुन्दरता को क्षणभंगुर माया कही गयी है। उपर्युक्त उदाहरण में प्रयुक्त 'उपमा' और 'रूपक' अलंकार परस्पर निरपेक्ष हैं।

2.4.3.2 संकर

जब एक ही छंद में दो या अधिक अलंकार एक दूसरे से ऐसे मिले हों कि उनकी पृथकता न जान पड़ती हो तब 'संकर' अलंकार होता है। एक ही छंद में ये अलंकार ऐसे मिले रहते हैं जैसे दूध में पानी। स्वाद से यह जान पड़ता है कि दूध में पानी मिला है, पर पानी को दूध से अलग नहीं किया जा सकता। 'संकर' भी इसी स्थिति में है कि काव्य पंक्तियों में दो या अधिक अलंकार इस प्रकार धुल-मिल जाते हैं कि वे अलग-अलग नहीं जान पड़ते।

उदाः 'रति की मूर्ति, रमा की प्रतिमा, तृषा विषमय नर की।

विधु की प्राणेश्वरी, आरती-शिखा काम के घर की।।'

(रति = कामदेव की पत्नी, रमा = लक्ष्मी, तृषा + लालच)

-इन पंक्तियों में उर्वशी में रति, रमा आदि का आरोप होने से रूपक अलंकार है। यही नहीं; उर्वशी के और भी वर्णन मिलते हैं, जो आपस में सापेक्ष हैं, अतः संकर अलंकार है। उदाः

'रावण-सिर-सरोज-वनचारी, चलि रघुवीर सिलीमुख धारी।'

(रावण-सिर-सरोज = रावण का सिर रूपी सरोज, सिलीमुख = बाण, भ्रमर)

'रावण-सिर-सरोज' (अर्थात् रावण के सिर रूपी सरोजमें रूपक अलंकार है। यह रूपक तब सिद्ध होगा जबकि राम के बाण केलिए कोई ऐसा शब्द प्रयुक्त हो, जिससे 'सिर' को 'सरोज' कहना ठीका होगा। अतः 'सिलीमुख' (=शिलीमुख) शब्द प्रयुक्त हुआ, जिसके अर्थ 'बाण' और 'भ्रमर' दोनों होते हैं। अतः 'सिलीमुख' में श्लेष अलंकार है। इस उदाहरण में 'रूपक' की सफलता 'श्लेष' पर निर्भर है। यदि शिल्ष्ट पद (श्लेष अलंकार वाला पद) 'सिलीमुख' न रहे तो रूपक निरर्थक होगा।

अलंकार के भेद :

अलंकार

(काव्य की शोभा बढ़ानेवाला तत्व तीन भेद) **शब्दालंकारः** जब काव्य में शब्दों के प्रयोग से सौंदर्य उत्पन्न होता है, तो उसे शब्दालंकार कहते हैं

अर्थालंकारः जब काव्य में अर्थ के माध्यम से सौंदर्य उत्पन्न होता है, तो उसे अर्थालंकार कहते हैं। **उभयालंकारः** जब काव्य में शब्द और अर्थ दोनों के माध्यम से सौंदर्य उत्पन्न होता है, तो उसे उभयालंकार कहते हैं।

शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक, श्लेष तथा वक्रोक्ति की प्रमुखता है।

अर्थालंकारों की मूलभूत विशेषताओं को ध्यान में रखकर आचार्यों ने इन्हें मुख्यतः पांच वर्गों में विभाजित किया है :

सादृश्यमूलक - उपमा, रूपक आदि;

विरोधमूलक - विषय, विरोधाभास आदि;

श्रृंखलाबंध - सार, एकावली आदि;

तर्क, वाक्य, लोकन्यायमूलक काव्यलिंग, यथासंख्य आदि;

गूढ़ार्थप्रतीतिमूलक - सूक्ष्म, गूढ़ोक्ति आदि।

Critical Overview / अवलोकन

अलंकार के प्रमुख दो भेदों - शब्दालंकार और अर्थालंकार में 'शब्दालंकार' शब्द संबन्धी चमत्कार से युक्त है और 'अर्थालंकार' अर्थ संबन्धी चमत्कार से युक्त है। 'अलंकार' काव्य में शब्द या अर्थ का अस्थिर धर्म है। अलंकार के प्रयोग से काव्य का प्रभाव बहुत कुछ बढ़ता है। अलंकार काव्य का साधन है, साध्य नहीं।

Recap / पुनरावृत्ति

- अलंकार काव्य का साधन है, साध्य नहीं अलंकार के मुख्य दो भेद होते हैं, शब्दालंकार और अर्थालंकार
- काव्य में 'अलंकार' शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म हैं
- अलंकार के मुख्य दो भेद होते हैं- शब्दालंकार और अर्थालंकार
- अलंकार का और एक भेद है 'उभयालंकार'
- शब्द संबन्धी चमत्कार से युक्त अलंकार 'शब्दालंकार' है
- अर्थ संबन्धी विशेषता उत्पन्न करनेवाला अलंकार 'अर्थालंकार' है
- शब्द और अर्थ दोनों (उभय) पर आश्रित रहकर दोनों को चमत्कृत करनेवाला अलंकार 'उभयालंकार' है
- अनुप्रास, यमक, वक्रोक्ति, श्लेष आदि प्रमुख शब्दालंकार हैं
- अर्थालंकार अर्थ पर आधारित है
- प्रमुख अर्थालंकार हैं उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत, विरोधाभास आदि
- कवि की उक्ति में दो या अधिक अलंकार इस प्रकार मिले-जुले रहते हों कि पृथक न हो सकें, तो उभयालंकार है
- संसृष्टि, संकट आदि ऐसे अलंकार हैं

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. शब्दालंकार किसे कहते हैं?
2. अर्थालंकार किसे कहते हैं?
3. प्रमुख अर्थालंकार का उदाहरण क्या-क्या हैं?
4. उभयालंकार से क्या तात्पर्य है?
5. समान व्यंजन वर्ण एकाधिक बार एक ही क्रम में आते हैं तो उस अलंकार का नाम नाम क्या है?
6. अनुप्रास अलंकार के कितने भेद होते हैं?
7. लाटानुप्रास किसे कहते हैं?
8. समान शब्द या वाक्यांश एकाधिक बार भिन्न अर्थों में आते हैं तो वह कौन सा अलंकार है?

Answers / उत्तर

1. शब्द संबंधी चमत्कार से युक्त अलंकार को शब्दालंकार कहते हैं।
2. अर्थ संबंधी विशेषता उत्पन्न करनेवाला अलंकार को अर्थालंकार कहते हैं
3. प्रमुख अर्थालंकार हैं- उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत, विरोधाभास आदि।
4. शब्द और अर्थ दोनों पर आश्रित रहकर दोनों को चमत्कृत करनेवाला अलंकार उभयालंकार है।
5. अनुप्रास
6. पाँच
7. जिस अलंकार में शब्द और अर्थ एक ही रहते हैं किन्तु अन्य पद के साथ अन्वय करें तो पूरी उक्ति का अर्थ भिन्न हो तो उसे लाटानुप्रास कहते हैं।
8. यमक

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. अलंकार निरूपरण विषय पर टिप्पणी तैयार कीजिए।
2. शब्दालंकार पर आलेख तैयार कीजिए।
3. अर्थालंकार पर टिप्पणी तैयार कीजिए।
4. प्रमुख अर्थालंकार का उदाहरण देकर समझाइए।
5. उभयालंकार क्या है सोदाहरण समझाइए।
6. शब्दालंकार क्या है उदाहरण सहित व्यक्त कीजिए।
7. अर्थालंकार पर आलेखन तैयार कीजिए।
8. प्रमुख अर्थालंकार का उदाहरण देकर उस पर टिप्पणी लिखिए।
9. उभयालंकार पर टिप्पणी तैयार कीजिए।

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

इकाई 5 रीति सिद्धांत : प्रमुख मान्यताएँ

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- रीति संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य का परिचय प्राप्त करता है
- रीति सिद्धांत की मान्यताओं से अवगत होता है
- रीति और काव्य गुण से अवगत होता है
- रीति के भेदों और वर्णों को समझता है
- रीति संप्रदाय की परिभाषा और काव्य गुण से परिचय प्राप्त करता है
- रीति के भेद और वर्ण समझता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

रीति संप्रदाय आचार्य वामन द्वारा प्रवर्तित एक काव्य-संप्रदाय है, जो रीति को काव्य की आत्मा मानता है। यद्यपि संस्कृत काव्यशास्त्र में रीति एक व्यापक अर्थ धारण करनेवाला शब्द है। काव्य में विशेष प्रकार की पद-रचना की पद्धति को 'काव्यशास्त्र' में 'रीति' कहते हैं। एक और रूप से कहा जाए तो रीति काव्य का बाह्य तत्व है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

वैदर्भी रीति, गौड़ी रीति, पांचाली रीति, लाटी रीति

Discussion / चर्चा

2.5.1 रीति की परिभाषा

'रीति' के शाब्दिक अर्थ हैं - चाल, पंथ, मार्ग, पद्धति, प्रणाली, शैली आदि। 'काव्यशास्त्र' में 'पद-रचना पद्धति' को 'रीति' कहा गया है। आचार्य वामन ने 'रीति' की परिभाषा यों दी है - 'विशिष्ट पद रचना रीति'। 'रीति' संबन्धी मत के प्रधान प्रतिपादक हैं आचार्य वामन (9 वीं शताब्दी)। वे 'रीति संप्रदाय' के संस्थापक आचार्य माने जाते हैं। उन्होंने 'रीति' को काव्य की आत्मा घोषित करके कहा- 'रीतिरात्मा काव्यस्या'। (रीति : + आत्मा = रीतिरात्मा = रीति आत्मा है; काव्यस्या = काव्य की)। अर्थात् 'काव्य की आत्मा रीति है।' उनका ग्रंथ है 'काव्यालंकार'।

2.5.2 काव्य गुण

'रीति' या 'पद-रचना की विशिष्टता' 'काव्य गुण' है। इससे काव्य की शोभा बढ़ती है। वामन ने कहा -'काव्य शोभाया कर्तारो धर्मा गुण:' अर्थात् 'काव्य का

शोभाकारक धर्म गुण है'। वामन ने काव्य गुणों को रीति की आत्मा या प्राण माना है - 'विशेषो गुणात्मा'। (अर्थात् 'विशेष गुण आत्मा है।'

वामन ने पद-रचना के बंधन के नित्य धर्म को गुण माना और गुणों के दो भेद किये - शब्द गुण और अर्थ गुण। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि काव्यशास्त्र में 'काव्य गुण' का सर्वप्रथम वर्णन आचार्य भरतमुनि ने किया था। उन्होंने 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ में दस प्रकार के गुणों का वर्णन किया।

वामन ने काव्यगुणों के दो भेद (शब्द गुण और अर्थ गुण) करके दोनों भेदों में दस काव्य गुण बताये। (यथा-ओज, प्रसाद, श्लेष, समता, माधुर्य, सौकुमार्य, उदारता, अर्थ-व्यक्ति और कांति।

आचार्य मम्मट (ग्रंथ-काव्य प्रकाश) ने इन सब गुणों का समावेश 'माधुर्य', 'ओज' और 'प्रसाद' में करके तीन गुण ही स्वीकार किये।

2.5.3 रीति और काव्य गुण

आचार्य वामन ने काव्य गुणों के आधार पर तीन रीतियाँ - वैदर्भी रीति, गौड़ी रीति और पांचाली रीति- निर्धारित की। इनमें 'पंचाली रीति' की कल्पना वामन की निजी उद्भावना है। उन्होंने 'गौड़ी रीति' को ओज गुण और कांति गुण से विभूषित किया। 'पांचाली रीति' को माधुर्य गुण और सौकुमार्य गुण से विभूषित किया। लेकिन 'वैदर्भी रीति' को समस्त गुणों से युक्त, दोषरहित, सर्वोत्तम और वीणा नादों जैसी मधुर रीति माना। उनके अनुसार 'रीति' पढ़ने-लिखने अथवा सीखने से नहीं आती, अपितु वह जन्मजात संस्कार से संबद्ध है।

2.5.4 वृत्तियाँ

काव्य में विशेष प्रकार की पद-रचना की पद्धति को 'काव्यशास्त्र' में 'रीति' कहते हैं। 'रीति' को 'वृत्ति' भी कहते हैं। पदों (शब्दों) की रचना वर्णों से की जाती है, अतः काव्य में नियत वर्णों की योजना का नाम 'वृत्ति' है। विशेष प्रकार की वर्ण योजना करने से कवि की उक्ति में 'रस' का संचार होता है। वर्णों और पदों (शब्दों) के अनुसार तीन 'वृत्तियाँ' (रीतियाँ) मानी गयी हैं - (1) वैदर्भी रीति (उपनागरिका वृत्ति), (2) गौड़ी रीति (प'षा वृत्ति) और (3) पांचाली रीति (कोमला वृत्ति)। इन तीनों रीतियों (वृत्तियों) से क्रमशः माधुर्य गुण, ओज गुण और प्रसाद गुण की उत्पत्ति होती है।

'अग्निपुराण' ग्रंथ में चार वृत्तियाँ मानी गयी हैं- पांचाली वृत्ति, गौड़ी वृत्ति, वैदर्भी वृत्ति और लाटी वृत्ति। आचार्य विश्वनाथ (ग्रंथ-साहित्य दर्पण) ने भी इनको माना है।

2.5.5 रीति के भेद और वर्ण

प्रत्येक रीति (वृत्ति)- वैदर्भी रीति, गौड़ी रीति और पांचाली रीति इन तीन रीतियों- में कौन-कौन से वर्ण प्रयुक्त होते हैं, यह भी मुख्य है। यथा-

2.5.5.1 वैदर्भी रीति

वामन के 'काव्यालंकार' ग्रंथ में 'वैदर्भी रीति' को समस्त गुणों से पूर्ण कहा गया है। यथा- 'समग्रगुणा वैदर्भी'। (अर्थात् 'समग्र गुणों से युक्त है वैदर्भी'। माधुर्य व्यंजक वर्णों की रचना में वैदर्भी रीति है। इसमें 'ट'वर्ग को छोड़कर शेष स्पर्श सानुनासिक वर्ण और समासरहित पद या छोटे-छोटे समस्त पद आते हैं।

जैसे - प्रकृति यहाँ एकांत बैठि निज रूप संवारति,

पल पल पलटति छनिक छवि छिन-छिन धारति।। (श्रीधर पाठक, कश्मीर सुषमा)

'वैदर्भी रीति' श्रृंगार रस, करुण रस और हास्य रसों की रचनाओं में मिलती है।

2.5.5.2 गौड़ी रीति

गौड़ी रीति ऐसी रचना में होती है, जो ओजप्रकाशक परुष वर्णों की है। आचार्य वामन ने कहा है 'ओजः कांतिमती गौडी' (काव्यालंकार ग्रंथ)। इसमें समासों की अधिकता होती है।

यथा- 'समासबहुला गौड़ी' (साहित्य दर्पण, आचार्य विश्वनाथ)।

'ट'वर्ग वर्ण, द्वित्ववर्ण (उदा :- क्क, च्च, ग्ग, त्त,

प्प, द्द), संयुक्त वर्ण (उदा :- क्ख, ग्घ, च्छ, ड्ड, त्थ, द्ध), रेफ से युक्त वर्ण (उदा :- क्र, ट्र, र्ष) आदि होते हैं। गौड़ी रीति (परुषा वृत्ति) वीर रस, बीभत्स रस और भयानक रस की रचनाओं में मिलती है। यह वृत्ति ओजगुण युक्त होने के कारण चित्त की शीतलता मिटाकर उसको दीप्त करती है।

उदा :-'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती

स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती'।

2.5.5.3 पांचाली रीति

पांचाली रीति उपचार (नम्र व्यवहार, शील आदि) से युक्त और लघु समास युक्त होती है। यथा- 'उपचारयुता वृत्ति पांचाली ह्रस्वविग्राहा'। (अग्निपुराण)।(अर्थात् 'उपचारयुक्त वृत्ति है पांचाली, ह्रस्व विग्रह (लघु समास) होता है।')

यह वृत्ति माधुर्य गुण और सुकुमारता से संपन्न होती है।

इस वृत्ति में य, र, ल, व, स, ह आदि कोमल वर्ण, छोटे-छोटे समस्त पद, समास रहित पद आदि जाते हैं। यह 'कोमला वृत्ति' श्रृंगार रस, शांत रस और अद्भुत रस के लिए अपेक्षित है।

2.5.5.4 लाटी रीति (सात्विकी वृत्ति)

ाामन के पश्चात् रूद्रट ने रस और रीति के संबन्ध पर विशेष रूप से विचार किया। रूद्रट ने ही सर्वप्रथम रस के अनुकूल रीति के चयन की बात की। वामन की तीन रीतियों के अतिरिक्त रूद्रट ने 'लाटी' नामक एक चौथे भेद की कल्पना की। 'लाटी वृत्ति' में संदर्भ स्पष्ट होता है, किन्तु समास अधिक स्प्ष्ट नहीं होते। यह 'वैदर्भी वृत्ति' और 'पांचाली वृत्ति' की मध्यवर्ती कही जाती है। यह वीर रस, रौद्र रस और भयानक रस के अतिरिक्त अन्य रसों की रचनाओं में मिलती है।

आचार्य कुंतक (10 वीं शती) ने 'रीति' को कवि स्वभाव से संबन्धित कहा। अतः उन्होंने रीति के भेदों का नामकरण नये ढंग से किया। यथा - सुकुमार मार्ग (वैदर्भी रीति), विचित्र मार्ग (गौड़ी रीति) और मध्यम मार्ग (पांचाली रीति)। परवर्ती आचार्यों ने इन नामों का प्रयोग नहीं किया, अतः ये नाम प्रचलित न हो सके। भोजराज (11 वीं शती) ने वैदर्भी, गौड़ी, पांचाली और लाटी इन चार भेदों के अतिरिक्त 'आवंतिका', 'माधवी' आदि दो भेदों की भी कल्पना की। किन्तु परवर्ती विद्वानों ने वामन के तीन भेदों को ही माना। आनंदवर्द्धन ने रीति का प्रयोग वक्त, कथ्य, विषय और रस के औचित्य के अनुसार ही करने का परामर्श दिया। इस प्रकार रीति विवेचन की परंपरा 11-12 वीं शती तक चलती रही।

Critical Overview / अवलोकन

'रीति संप्रदाय' के प्रवर्तक आचार्य वामन ने 'विशिष्ट पद रचना' को 'रीति' कहा। उनसे कहे रीति के तीन भेद - वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली-परवर्ती आचार्यों को स्वीकार्य हुए। इन तीनों भेदों का अपनी अपनी विशीषताएँ कही गयी है। विभिन्न काव्यों की शोभा बढ़ाने केलिए इन रीति भेदों का उपयोग किया जाता है। विभिन्न आचार्यों ने भिन्न भिन्न रीति भेदों का परिचय दिया है। इन विभिन्न भेदों का अध्ययन इसमें हुआ है।

Recap / पुनरावृत्ति

- चाल, पंथ, मार्ग, पद्धति, प्रणाली, शैली आदि 'रीति' के शाब्दिक अर्थ हैं ?
- 'काव्यशास्त्र' में 'पद-रचना पद्धति' को 'रीति' कहा गया है।
- 'रीति' या 'पद-रचना की विशिष्टता''काव्य गुण' है।
- 'काव्य का शोभाकारक धर्म गुण है'।
- काव्य गुणों के आधार पर तीन रीतियाँ हैं - वैदर्भी रीति, गौड़ी रीति और पांचाली रीति।

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. रीति शब्द से क्या तात्पर्य है?
2. रीति संप्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक कौन है?
3. वैदर्भी रीति क्या है?
4. गौड़ी रीति क्या है?
5. पांचाली रीति क्या है?
6. लाटी रीति से क्या तात्पर्य है?

Answers / उत्तर

1. 'पद-रचना पद्धति' को 'रीति' कहा गया है।
2. आचार्य वामन
3. वामन के 'काव्यालंकार' ग्रंथ में 'वैदर्भी रीति' को समस्त गुणों से पूर्ण कहा गया है।
4. गौड़ी रीति ऐसी रचना में होती है, जो ओजप्रकाशक प'ष वर्णो की है।
5. पांचाली रीति उपचार (नम्र व्यवहार, शील आदि) से युक्त और लघु समास युक्त होती है।
6. यह 'वैदर्भी वृत्ति' और 'पांचाली वृत्ति' की मध्यवर्ती रीति को लाटी रीति कही जाती है।

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. रीति संप्रदाय पर टिप्पणी तैयार कीजिए
2. रीति आचार्य वामन पर पर्चा लिखिए
3. रीति के विभिन्न प्रकारों पर प्रकाश डालिए।
4. अन्य संप्रदायों से रीति की विशेषता पर आलेख तैयार कीजिए।

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

इकाई 6 वक्रोक्ति संप्रदाय- सामान्य परिचय

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- वक्रोक्ति संप्रदाय का परिचय प्राप्त करता है।
- वक्रोक्ति संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य और अन्य आचार्यों की मान्यताओं से अवगत होता है।
- वक्रोक्ति के भेदों से परिचित होता है।

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

वक्रोक्ति सिद्धांत का संबंध अलंकार सिद्धांत से है। वक्रोक्ति में अलंकारों की कल्पना वैचित्र्य को व्यापक आधार पर स्वीकार किया गया है। यह कल्पना कविनिष्ठ है, सहृदयनिष्ठ नहीं। अतः कहा जाए तो वक्रोक्ति एक कथन प्रणाली या प्रतिपादन पद्धति है। वह अलंकार्य न होकर अलंकार है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

वर्ण विन्यास वक्रता, पद पूर्वार्द्ध वक्रता, पद परार्द्ध वक्रता, प्रकरण वक्रता, प्रबंध वक्रता

Discussion / चर्चा

2.6.1 'वक्रोक्ति' शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ

'वक्र' तथा 'उक्ति' शब्दों के योग से 'वक्रोक्ति' शब्द बना है, जिसका अर्थ है 'टेढ़ा कथन'। 'वाक् छल' अर्थ में साहित्य में इसका प्रयोग होता है। भारतीय काव्यशास्त्र में 'वक्रोक्ति' का सर्वप्रथम प्रयोग भामह के समय से ही मिलता है। भामह ने वक्रोक्ति को 'सर्वालंकारमूला' कहा। यहाँ तक कहा कि 'वक्रोक्ति'के अभाव में कोई अलंकार नहीं रहता।

2.6.2 'वक्रोक्ति' संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य और अन्य आचार्यों की मान्यताएँ

आचार्य भामह ने वक्रोक्ति का लक्षण बताया है- 'शब्दस्य कि वक्रता, अभिधेयस्य च वक्रता लोकोत्तीर्णेन रूपेण अवस्थानम्।' (यानी 'शब्द और अर्थ की वक्रता क्या है? इनका लोकोत्तर रूप से अवस्थान, (अर्थात् अलौकिक रूप से स्थिति।')

आचार्य दंडी ने 'वक्रोक्ति' को सर्वालंकारमूला माना। उन्होंने समस्त वाङ्मय को दो भागों - स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति-में बाँटा। 'स्वभावोक्ति' अनलंकृत स्वाभाविक कथन है और 'वक्रोक्ति' स्वाभाविक से भिन्न अतिशय कथन है। दंडी ने 'वक्रोक्ति' को 'अतिशयोक्ति' का पर्याय माना। उनके मत में श्लेष की सत्ता से वक्रोक्ति और भी चमक उठती है। ('श्लेष' का अर्थ है 'चिपका हुआ'। श्लेष केलिए प्रयुक्त शब्द में एक से अधिक अर्थ चिपके रहते हैं।)

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

आचार्य वामन ने वक्रोक्ति को अर्थालंकारों के अंतर्गत माना। उन्होंने वक्रोक्ति को 'सादृश्यमूला लक्षणा' माना।

वक्रोक्ति संप्रदाय के प्रवर्तक हैं आचार्य कुन्तक। पूर्ववर्ती आचार्यों के आधार पर कुंतक ने 'वक्रोक्ति जीवितम्' ग्रंथ में वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा मानते हुए 'आत्मा' शब्द के बदले 'जीवित' शब्द का प्रयोग किया और 'वक्रोक्ति' सिद्धांत की स्थापना की। उन्होंने वक्रोक्ति के स्वरूप को और भी व्यापक बनाते हुए कहा-'वैदग्ध्य भंगी भणिति'। यहाँ 'वैदग्ध्य' का मतलब है'कुशल प्रतिभा संपन्न कवि का काव्य निर्माण कौशल', 'भंगी' का मतलब है 'चमत्कार' (चारुता) और 'भणिति' का मतलब है 'कथन शैली'। ('प्रतिभा संपन्न कवि का चमत्कारपूर्ण कथन कौशल वक्रोक्ति है।')

'वक्र उक्ति' को वक्रोक्ति मानकर कुंतक ने उसे 'सहृदयाह्लादकारिणी' भी कहा। (अर्थात् सहृदयों/ काव्यमर्मज्ञों को आह्लादित करनेवाली) उन्होंने वक्रोक्ति के चार लक्षण बताये, जैसे-

1. वक्रोक्ति भाषाशास्त्रादि शास्त्रों तथा लोक व्यवहार में प्रचलित अर्थ से भिन्न है।
2. वह कवि प्रतिभा के कौशल से चमत्कार रूप में विलक्षणतापूर्वक प्रकट होती है।
3. वह स्मस्त कवि व्यापार - वर्ण, पद, वाक्य, प्रसंग, प्रबंध-से संबंध रखती है।

वह काव्य मर्मज्ञों के मन में आनंद उत्पन्न करती है।

वक्रोक्ति के भेद :-

कुंतक ने कविकर्म-कौशल से उद्भूत वक्रोक्ति के छः भेद माने, जैसे-

1. वर्ण विन्यास वक्रताः यह काव्य पंक्तियों के शब्दों के वर्णों का विचित्र विन्यास है। 'अनुप्रास अलंकार' में ऐसा किया जाता है। इससे रसानुकूलता, स्वाभाविकता, प्रसादत्व, श्रुति मधुरता जैसे गुण काव्य में आते हैं।
2. पद पूर्वार्द्ध वक्रताः यह काव्य पंक्ति में पदों के पूर्वार्द्ध का विचित्र विन्यास है।
3. पद परार्द्ध वक्रता : यह पदांत में प्रत्यय का विचित्रता पूर्ण प्रयोग है।
4. वाक्य वक्रता : यह काव्य पंक्तियों में पद समुदाय का विचित्रतापूर्ण विन्यास है। उदाः उपमा, श्लेष, रूपक आदि अलंकार।
5. प्रकरण वक्रता : यह किसी प्रकरण (प्रसंग) का विचित्रतापूर्ण विन्यास है।

प्रबंध वक्रता : यह काव्य रचना के समस्त प्रबंधात्मक कर्म का विचित्रतापूर्ण विन्यास है। वक्रोक्ति के उपर्युक्त छः भेदों से स्पष्ट होता है कि कुंतक ने वक्रोक्ति को समस्त कवि-व्यापार में सीमित कर दिया है (समेट लिया है।) उनका सिद्धांत कवि कर्म की वस्तुपरक व्याख्या में सीमित रहा, फिर भी उनकी दृष्टि पूर्ववर्ती आचार्यों की अपेक्षा अधिक व्यापक थी।

2.6.3 स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति

दंडी ने समस्त वाङ्मय के दो भेद किये - स्वाभावोक्ति और वक्रोक्ति। उन्होंने 'स्वभावोक्ति' को भी इसलिए अलंकार माना कि इसमें पदार्थो का जो प्रकृत गुण-वर्णन होता है, वह आकर्षक होता है, सहृदयों को आह्लादित करता है।

किन्तु कुंतक स्वभावोक्ति को अलंकार नहीं मानते। पदार्थ के स्वरूप या धर्मभूत स्वभाव का वर्णन ही स्वभावोक्ति है। कुन्तक के मत में स्वभावोक्ति को अलंकार मान ले तो इससे भिन्न काव्य की शरीर स्थानीय वह वस्तु कौन-सी है, जिसे अलंकार कहा जाए? मतलब है कि कुंतक ने स्वभावोक्ति को अलंकार्य माना, शरीर स्थानीय ही माना न कि अलंकार। उनके अनुसार काव्य की आत्मा वक्रोक्ति (अलंकार) है।

2.6.4 वक्रोक्ति अलंकार

'वक्र'(अर्थात् 'टेढ़ा') और 'उक्ति'(अर्थात् 'कथन') शब्दों के योग से 'वक्रोक्ति' शब्द बना है। कही गयी उक्ति को घुमा-फिराकर उसका दूसरा अर्थ ग्रहण करना 'वक्रोक्ति' है। जहाँ पर श्लेष से अथवा काकु (अर्थात् कं' की विशेष ध्वनि) के कारण प्रत्यक्ष अर्थ के स्थान पर दूसरा अर्थ कल्पित किया जाए वहाँ पर 'वक्रोक्ति'

होती है।

वक्रोक्ति दो प्रकार होती है - श्लेष वक्रोक्ति और काकु वक्रोक्ति।

'श्लेष वक्रोक्ति' में वक्ता जो कहना चाहता है उससे भिन्न अर्थ श्रोता ग्रहण करता है। उदा :

'है री सखी कृष्णचंद्र? चन्द्र कहूँ कृष्ण होता?' - इस पंक्ति में 'कृष्ण' का अर्थ 'काला' लगाया गया है अतः इसमें राधा से पूछा जाता है - 'री सखी (तेरा प्रेमी) कृष्ण चंद्र है? (चाँदनी देनेवाला) चन्द्र कहीं कृष्ण (काला) होता है?'

अन्य उदाः

''को तुम?हरि प्यारी? कहा वानर को पुर काम?

स्याम सलोने, स्याम कपि? क्यों ने डरै तब नावम"

- इसमें ' 'हरि' (कृष्ण) का अर्थ 'वानर' तथा 'श्याम' (कृष्ण) का अर्थ 'काला' लगाये गये हैं। (उपर्युक्त पंक्तियों का अर्थ है -'कौन हो तुम? हरि (वानार) की प्यारी है'? वानर को पुर में कहा (उक्या) काम है? कृष्ण काला है, कपि (वानर) भी काला है। तब उससे क्यों न डरे? 'यहाँ वक्रोक्ति से 'हरि' का 'वानर' अर्थ निकलता है।

'काकु' का अर्थ है व्यंग्य। इसमें किसी शब्द का ऐसा उच्चारण करता है जिससे उसका विरूद्ध अर्थ सूचित हो। कं' की विशेष ध्वनि 'काकु' है। यानी इसमें शब्द की विशेष ध्वनि से (अर्थात् शब्द के विशेष उच्चारण से उसका भिन्न अर्थ या अभिप्राय ग्रहण किया जाता है। काकु युक्त उच्चारण से निषेधात्मक अर्थ या विपरीतार्थ निकलता है। कभी कहे हुए वाक्य का कं' की ध्वनि या स्वर विकार से अन्य अर्थ निकलता है तो 'काकु वक्रोक्ति' है। उदाः

'मैं सुकुमारी नाथ वन जोगू।'

मैं सुकुमारी हूँ, पर नाथ वन में योगी बना है।'

(सुकुमारीउ कोमलांगी, जोगूउ योगी, वैरागी) (अर्थात् यह अर्थ तभी मिलता है जबकि 'सुकुमारी' के उच्चारण के बाद थोड़ा 'ककर बाकी शब्दों का उच्चारण किया जाता है।

Critical Overview / अवलोकन

आचार्य कुंतक ने सहृदयों के मन को आह्लादित करनेवाली, कवि कर्म-कौशल से निसृत चमत्कारी वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया। उन्होंने वक्रोक्ति को व्यापकता प्रदान करने का प्रयास किया, किन्तु उनकी दृष्टि मात्र कथन-चमत्कार तक सीमित रहने से उसे विशेष व्यापकता नहीं मिली।

Recap / पुनरावृत्ति

- 'वक्र' तथा 'उक्ति' शब्दों के योग से 'वक्रोक्ति' शब्द बना है, जिसका अर्थ है 'टेढ़ा कथन'
- वक्रोक्ति संप्रदाय के प्रवर्तक हैं आचार्य कुन्तक
- कुंतक के 'वक्रोक्ति जीवितम्'
- वक्रोक्ति दो प्रकार होती है -श्लेष वक्रोक्ति और काकु वक्रोक्ति।
- 'श्लेष वक्रोक्ति' में वक्ता जो कहना चाहता है उससे भिन्न अर्थ श्रोता ग्रहण करता है
- 'काकु' का अर्थ है व्यंग्य।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. वक्रोक्ति संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य कौन है?
2. वक्रोक्ति शब्द से क्या तात्पर्य है?
3. वक्रोक्ति को 'सर्वालनंकारमूला' किसने कहा?
4. 'वक्रोक्तिजीवितं' किसकी रचना है?
5. काकु का अर्थ क्या है?
6. वक्रोक्ति कितनी प्रकार की होती है और वे क्या-क्या है?

Answers / उत्तर

1. कुन्तक
2. 'टेढ़ा कथन'
3. आचार्य दंडी
4. कुन्तक
5. व्यंग्य
6. वक्रोक्ति दो प्रकार होती है- श्लेष वक्रोक्ति और काकु वक्रोक्ति

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. वक्रोक्ति संप्रदाय का परिचय दीजिए।
2. वक्रोक्ति संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य कुन्तक।
3. अन्य सिद्धांतों से वक्रोक्ति संप्रदाय की विशेषता।
4. वक्रोक्ति संप्रदाय के भेदों पर टिप्पणी लिखिए।

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

BLOCK 03

ध्वनि, औचित्य और शब्द शक्ति

SOU

इकाई 1 ध्वनि संप्रदाय : सामान्य परिचय

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- ध्वनि की परिभाषा जानता है
- ध्वनि संप्रदाय के विकास के बारे में जानकारी प्राप्त करता है
- ध्वनि संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य तथा अन्य आचार्यों से परिचित होता है
- ध्वनि काव्य के भेदों पर जानकारी प्राप्त करता है
- काव्य की आत्मा संबन्धी विभिन्न मत जानता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

'ध्वनि' शब्द की ही नहीं होती अपितु ध्वनि काव्य में पद तथा अर्थ की प्रतीति कराने वाला तत्व है। आनन्दवर्धन ने अपनी रचना 'ध्वन्यालोक' के माध्यम से ध्वनि सम्प्रदाय का प्रतिपादन किया। आरंभ में 'ध्वन्यालोक' के रचयिता को लेकर भी विद्वानों में मतैक्य नहीं था किंतु कालान्तर में उस विवाद पर विराम लग गया और आचार्य आनन्दवर्धन को 'ध्वन्यालोक' का रचयिता होने के कारण आनन्दवर्धन निर्विवाद रूप से ध्वनि सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जाने लगे। ध्वनि को काव्यात्मा के रूप में स्थापित करने वाले आचार्य के रूप में आनन्दवर्धन की प्रतिष्ठा है। आनन्दवर्धन से पहले भी ध्वनि की चर्चा हुई किंतु उसका व्यवस्थिति विवेचन आनन्दवर्धन ने ही किया। ध्वनि का सीधा संबंध शब्द शक्तियों से है। इसीलिए शब्दः शक्तियों के आधार पर ध्वनि का वर्गीकरण भी किया गया।

Keywords / मुख्य बिन्दु

ध्वनि संप्रदाय, ध्वन्यालोक, रस ध्वनि, वस्तु ध्वनि,अलंकार ध्वनि

Discussion / चर्चा

ध्वनि संप्रदाय' (ध्वनि सिद्धांत) के प्रवर्तक (संस्थापक) आनंदवर्धन ने अलंकार और रीति को काव्य की आत्मा मानने का खंड़न किया। उन्होंने ध्वनि को स्पष्ट शब्दों में काव्य की आत्मा माना। 'काव्यस्यात्मा ध्वनिरीति बुर्धैर्य:समाम्नानपूर्व'- (काव्यस्यातमा =काव्य की आत्मा, ध्वनिरिति = ध्वनि है, बुर्धैर्य = बुद्धिमान, समाम्नान = गणना)। (अर्थात् 'काव्य की आत्मा ध्वनि है, जिसे बुद्धिमान लोग पहले से कहते आये हैं।'

आनंदवर्द्धन के मत में 'ध्वनि' वह प्रतीयमान अर्थ (व्यंग्यार्थ) है, जिसे वाक्य के शब्द अपने वाच्यार्थ को गौण बनाकर अभिव्यक्त करते हैं। 'अलंकार' में ध्वनि की आवश्यकता नहीं है और 'रीति' गुणों पर आश्रित रहकर रसों की अभिव्यक्ति में सहयोग देती है। अतः अलंकार और रीति काव्य की आत्मा नहीं हो सकती। आनंदवर्द्धन के मत में 'ध्वनि' काव्य की आत्मा है।

3.1.1 काव्य की आत्मा संबन्धी विभिन्न मत

काव्यशास्त्र में 'आत्मा' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम रीतिवादी आचार्य वामन ने किया। उन्होंने 'रीति' को 'काव्य की आत्मा' मानकर कहा - 'रीतिरात्मा काव्यस्या'। काव्य की आत्मा रीति है। इसके पश्चात ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्द्धन ने सन् 875 के आसपास 'ध्वन्यालोक' ग्रंथ में ध्वनि को काव्य की आत्मा मानकर कहा - 'ध्वनिरात्मा काव्यस्या'। (अर्थात् काव्य की आत्मा ध्वनि है। वक्रोक्तिवादी आचार्य कुन्तक ने 'वक्रोक्ति जीवितम्' ग्रंथ में वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा मानकर 'आत्मा' शब्द के बदले 'जीवितं' शब्द का प्रयोग किया। 'जीवितं' शब्द का अर्थ है 'जीव' या 'जान' या 'प्राण' या 'आत्मा।' रसवादी आचार्य विश्वनाथ (ग्रंथ-साहित्य दर्पण) ने 'वाक्यं रसात्मकम् काव्यम् (अर्थात् 'रसात्मक वाक्य काव्य है)' लिखकर काव्य की आत्मा की ओर संकेत किया। आचार्य विश्वनाथ ने ऐसा भी कहा - 'काव्यस्य शब्दार्थो शरीरं रसादिश्चात्मा।' (काव्यस्य = काव्य का, शब्दार्थो = शब्द और अर्थ, रसादिश्चात्मा= रसादि : आत्मा) (अर्थात् 'शब्दार्थ काव्य के शरीर हैं और रसादि आत्मा है।'

3.1.2 ध्वनि

'ध्वनि' का अर्थ है 'आवाज़।' 'ध्वन्यते अनेन इति ध्वनिः' (अर्थात् 'जिससे ध्वनि उत्पन्न होती है, वही ध्वनि है।'

इस दृष्टि से 'ध्वनि' और 'व्यंजना' पर्यायवाची शब्द ही हैं। 'ध्वननं ध्वनिः'। (अर्थात् 'ध्वनित होना ही ध्वनि है।' व्याकरण में भाषा की सबसे छोटी इकाई 'वर्ण' के उच्चरित रूप को 'ध्वनि' कहते हैं। किन्तु 'काव्यशास्त्र' में 'ध्वनि' का मतलब शब्दों के अर्थबोध से है। 'काव्यशास्त्र' में 'ध्वनि' का संबन्ध व्यंजना से ही है, जबकि व्याकरण में ध्वनि का संबन्ध प्रायः अभिधा से है। काव्य सिद्धांत के रूप में 'ध्वनि' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग आनंदवर्द्धन के 'ध्वन्यालोक' ग्रंथ में किया गया है।

3.1.3 'ध्वनि' संबन्धी आचार्यों के मत

आनंदवर्द्धन के पूर्व के आचार्यों (भरतमुनि, भामह, दंडी, वामन आदि) के काव्य शास्त्रीय सिद्धांत विवेचन में ध्वनि की मान्यता का कोई उल्लेख नहीं मिलता। अतः अनुमान किया जाता है कि आनंदवर्द्धन के समय (9 वीं शताब्दी) या उससे थोड़े पूर्व 'ध्वनि' की मान्यता हुई होगी। ध्वनि के स्वरूप का विवेचन करते हुए आनंदवर्द्धन ने 'ध्वन्यालोक' ग्रंथ में कहा है - 'जहाँ पर शब्द अपना मुख्यार्थ छोड़कर व्यंग्यार्थ की प्रतीति कराने लगता है वहाँ ध्वनि होती है।' उनके मत में व्यंग्यार्थ (ध्वन्यार्थ) से काव्य का भाव सौन्दर्य बढ़ जाता है। उन्होंने 'प्रतीयमानार्थ' को (यानि व्यंग्य के द्वारा ध्वनियाँ प्रकट होने को) ही ध्वनि कहा है। उन्होंने रस-ध्वनि को श्रेष्ठ मानकर 'ध्वनि सिद्धांत' का प्रबल समर्थन किया।

अभिनवगुप्त ने भी 'ध्वन्यालोक' (आनंदवर्द्धन की रचना) की टीका 'ध्वन्यालोक लोचन' में 'रस' को ध्वनित माना है और यूँ रस व ध्वनि का अटूट संबंध स्थापित किया।

आचार्य मम्मट ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का समन्वय करके ध्वनि और रस सिद्धांत की प्रतिष्ठा की; अतः आचार्य मम्मट को 'ध्वनि प्रस्थापक परमाचार्य' कहा जाता है। पंडितराज जगन्नाथ ने भी रस और ध्वनि के संबंध को स्वीकार किया है।

3.1.4 ध्वनि संप्रदाय का विकास

ध्वनि संप्रदाय का विकास कुछ आचार्यों के कारण हुआ है, जेसे-

आनंदवर्द्धन : भारतीय काव्यशास्त्र में 'ध्वनि संप्रदाय' का महत्वपूर्ण स्थान है। 'ध्वनि सिद्धांत' को व्यवस्थित करने का श्रेय आनंदवर्धन को है। उन्होंने अपने ग्रंथ 'ध्वन्यलोक' में 'ध्वनि सिद्धांत' की स्थापना की। 'ध्वनि सिद्धांत' के पूर्व भारतीय काव्यशास्त्र में तीन महत्वपूर्ण सिद्धांतों - अलंकार सिद्धांत, रस सिद्धांत और रीति सिद्धांत - का प्रवर्तन हो चुका था। अत:'ध्वनि सिद्धांत' के अंतर्गत ध्वनि को काव्य की आत्मा स्वीकार करते हुए उक्त तीनों सिद्धांतों का पुनर्मूल्यांकन किया गया।

आनंदवर्द्धन के अनुसार 'जहाँ अर्थ स्वयं को तथा शब्द अभिधेयार्थ को गौण करके प्रतीयमान अर्थ (व्यंग्यार्थ) को प्रकाशित करता है उस काव्य विशेष को 'ध्वनि काव्य' कहा जाता है।' इसका मतलब यह है कि 'ध्वनि काव्य' में व्यंग्यार्थ का होना ज़रूरी है, साथ ही व्यंग्यार्थ का वाच्यार्थ से अधिक महत्वपूर्ण होना भी आवश्यक है। (अर्थात् काव्य में व्यंग्यार्थ प्रमुख है और वाच्यार्थ गौण है तो 'ध्वनि काव्य' है। ध्वनि काव्य को उदाहरण-1 I

'माली आवत देखकै कलियाँ करि पुकार।

फूलि फूलि चुन लिया काल्हि हमारी बार।।'

वाच्यार्थ है - 'माली को आते देखकर कलियाँ पुकारने लगीं। आज खिले फूल चुन लिये गये हैं, कल हमारी बारी है।' 'माली' का अर्थ 'काल' ले लें तो इन पंक्तियों में जीवन की क्षणभंगुरता का व्यंग्यार्थ मिलेगा।

आनंदवर्द्धन ने 'व्यंजना' को ध्वनि का आधारभूत तत्व मानते हुए व्यंजना के मूल में 'अभिधा' और 'लक्षणा' दोनों शब्द शक्तियों को माना। इसी आधार पर उन्होंने ध्वनि के दो भेद माने - 'अभिधा मूला' और 'लक्षणामूला।'

अभिनव गुप्त : अभिनव गुप्त ने 'ध्वन्यालोक' (आनंदवर्द्धन की रचना) की टीका 'ध्वन्यालोक लोचन' नाम से लिखी। इस टीका ग्रंथ के द्वारा उन्होंने ध्वनि सिद्धांत को विकसित किया। उन्होंने यह बात स्पष्ट की कि ध्वनिवादियों की 'व्यंजना शक्ति' ही रस की अभिव्यक्ति कर सकती है क्योंकि रस, भाव आदि का बोध व्यंग्य रूप में होता है। इस विवेचन के द्वारा उन्होंने 'रस सिद्धांत' और 'ध्वनि सिद्धांत' को परस्पर संबद्ध किया। रसवादी आचार्य अभिनव गुप्त ने रस की सम्यक पुष्टि केलिए ध्वनि सिद्धांत को महत्व दिया। उन्होंने यह सिद्ध किया कि रस वाच्य (सीधा) न होकर व्यंग्य होता है। (अर्थात् रस ध्वनित (व्यंजित) होता है। उनके मत में 'रस ध्वनि' ही काव्य की आत्मा है।

मम्मट : मम्मट रसवादी आचार्य माने जाते हैं। वे 'ध्वनि सिद्धांत' के भी प्रबल पक्षधर थे। 'ध्वनि सिद्धांत' के विरोधियों ने ध्वनि के विरोध में जो तर्क दिये, मम्मट ने उनका विद्वत्तापूर्ण ढंग से खंड़न किया। इस प्रकार उन्होंने 'ध्वनि सिद्धांत' को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। इसलिए मम्मट को 'ध्वनि प्रस्थापन परमाचार्य' (ध्वनि प्रतिष्ठापक परमाचार्य) कहा जाता है। मम्मट ने अपने 'काव्यप्रकाश' ग्रंथ में रस की प्रतीति के लिए व्यंजना के महत्व को स्वीकार किया है, जिसे उन्होंने काव्य में रस के अनुभव के लिए आवश्यक माना है। रस की प्रतीति केलिए व्यंजना का अस्तित्व मानना आवश्यक है। मम्मट ने 'व्यंजना शक्ति' की सत्ता को माना और ध्वनिवादी आचार्यों की मान्यताओं में एकरूपता लाने का कार्य किया।

3.1.5 ध्वनि के भेद

आनंदवर्द्धन ने ध्वनि के दो भेद माने - (1)अभिधामूला ध्वनि और (2) लक्षणामूला ध्वनि। 'अभिधामूला ध्वनि' में अभिधेयार्थ से व्यंग्यार्थ ध्वनित होता है। 'लक्षणामूला ध्वनि' में लक्ष्यार्थ से व्यंग्यार्थ ध्वनित होता है।

अभिधामूला ध्वनि के दो भेद हैं- (1) असंलक्ष्य क्रम ध्वनि और (2) संलक्ष्य क्रम ध्वनि। वाच्यार्थ के साथ-साथ व्यंग्यार्थ ध्वनित होता है, दोनों (वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ) के बीच समय का अंतराल प्रतीत नहीं होता तो 'असंलक्ष्य क्रमध्वनि' है। वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ की प्रतीति में समय का अंतराल होता है तो 'संलक्ष्य

क्रमध्वनि' है।

आनंदवर्द्धन ने ध्वनि के और भी तीन भेद किये- (1) रस ध्वनि, (2) वस्तु ध्वनि और (3) अलंकार ध्वनि। जैसे -

रस ध्वनिः 'रस ध्वनि' को ध्वनि संप्रदाय में महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें वाच्यार्थ छोड़ दिया जाता है। ध्वनिवादी रस को सर्वश्रेष्ठ काव्य तत्व मानते हैं, पर वे काव्य की आत्मा के पद पर ध्वनि को ही प्रतिष्ठित करते हैं।

वस्तु ध्वनिः 'वस्तु ध्वनि' में वाच्यार्थ के माध्यम से व्यंग्यार्थ का बोध होता है। जैसे-

'देख वसुधा का यौवन भार

गूँज उ'ता है जब मधुमास (पंत)'

इसका वाच्यार्थ है कि वसुधा (पृथ्वी) का यौवन-भार देखकर मधुमास (वसंत) भ्रमर के रूप में गूँज उठता है। इसका व्यंग्यार्थ है कि नायिका का यौवन देखकर नायक आनंदित होता है।

अलंकार ध्वनिः -'अलंकार ध्वनि' अलंकार पर आधारित व्यंजना है। इसमें व्यंग्यार्थ की प्रतीति अलंकार पर निर्भर है।

जैसे -

'मानहुं विधि तन स्वच्छ छवि स्वच्छ राखिबे काज।

दृग पग पोंछन कों करै भूषन पायंदाज।।' (बिहारी)। इसका अर्थ है - 'मानो विधाता ने नायिका के स्वच्छ शरीर को स्वच्छ ही बनाये रखने केलिए आभूषणों को पायंदाज बनाया है। इससे देखनेवालों के नेत्रों में लगी वासना की गन्दगी नायिका के शरीर पर पड़ने के पहले ही साफ हो जायेगी।' इन पंक्तियों में 'उत्प्रेक्षा अलंकार' के माध्यम से नायिका के सौन्दर्य की व्यंजना है। 'मानहूँ' वाचक शब्द, 'नायिका के तन की छावी' 'उपमेय' और 'भूषण' उपमान हैं। अतः अलंकार ध्वनि है।

3.1.6 प्रतीयमान अर्थः

काव्यशास्त्र में 'अभिधा', 'लक्षणा', 'व्यंजना' आदि तीन शब्द शक्तियों का उल्लेख किया जा चुका है। इन शब्दशक्तियों में 'व्यंजना' का संबन्ध 'ध्वनि' से है। 'व्यंजना' वह शब्दशक्ति है, जो काव्य के मुख्यार्थ या लक्ष्यार्थ के झीने पर्दे में छिपे हुए व्यंग्यार्थ को स्पष्ट कर काव्य के वास्तविक लावण्य को स्पष्ट करती है।

'व्यंजना शब्दशक्ति' से व्यक्त होनेवाले अर्थ को 'व्यंग्यार्थ' (प्रतीयमान अर्थ) कहा जाता है। 'प्रतीयमान अर्थ' का महत्व उन्होंने इन शब्दों में प्रकट किया है -

'प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्तुवस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।

यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवांगनासु।।'

(प्रतीयमानं = प्रतीयमान अर्थ, पुनरन्यदेव वास्तवस्ति = कुछ और ही वस्तु है, अंगनासु = रमणियों के, प्रसिद्धावायवातिरिक्तं = प्रसिद्ध अवयवों-मुख, नेत्र आदि-से भिन्न, लावण्यं यत्र तत्र = लावण्य के समान, महाकवीनाम् वाणीशु विभाति = महाकवियों की वाणी में रहता है (या ध्वनित होता है।)

(अर्थात् 'प्रतीयमान अर्थ कुछ और ही वस्तु है जो रमणियों के प्रसिद्ध अंगों से भिन्न लावण्य के समान महाकवियों की वाणी में ध्वनित होता है।'

3.1.7 ध्वनि के आधार पर काव्य-भेद

आनंदवर्द्धन ने ध्वनि के महत्व के आधार पर काव्य के तीन भेद किये -

(1)उत्तम काव्य (ध्वनि काव्य)ः इस काव्य में वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ (प्रतीयमान अर्थ) का ही प्रधान चमत्कार होता है।(अर्थात् व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ से सुन्दर हो तो वह काव्य 'ध्वनि काव्य' है।

उदाहरण :

'माली आवत देखिकै कलियाँ करि पुकार।

फूलि-फूलि चुन लिये काल्हि हमारी बार।।'

इसमें वाच्यार्थ है - 'माली ने फूल तोड़ लिये, यह देखकर कलियाँ पुकार करती हैं कि कल हमें भी तोड़ लेंगे।'

व्यंग्यार्थ है - काल रूपी माली आकर कल हमारे भी प्राण लेंगे। (अर्थात् जीवन क्षणभंगुर है।

-इस उदाहरण में वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ सुन्दर है। अतः यह ध्वनि काव्य (उत्तम काम) का उदाहरण है।

(2) **मध्यम काव्य (गुणीभूत काव्य):** इस काव्य में व्यंग्यार्थ गौण या अप्रधान होता है। इसमें व्यंग्यार्थ के साथ-साथ वाच्यार्थ भी रहता है। (अर्थात् वाच्यार्थ की तुलना में व्यंग्यार्थ कम सुन्दर हो तो 'गुणीभूत काव्य' है।

उदाहरण :

'अनदेखे देखन चाहे, देखे बिछुरन भीत।

देखे बिनु देखेहु पै तुम सो सुख नहीं मीत।।'

(अनदेखे = बिना देखे हुए, देखन चाहे = देखना चाहती हूँ (दर्शन की उत्कं'ा होती है), देखे = देखने पर, बिछुरन भीत = बिछुड़ने या वियोग होने का भय होता है, देखहु पर = देखने पर, सो = से, मीत = मित्र)

वाच्यार्थ है - 'नवयुवती अपने प्रिय से कहती है कि तुम से न मिलने पर मिलने की इच्छा होती है और तुम से मिलने पर तो वियोग होने का भय होता है। (अर्थात् दोनों स्थितियाँ दुःखद हैं।) प्रिय, देखे बिना तुम्हें देखने पर तो सुख नहीं मिलता।'

व्यंग्यार्थ है - तुम सदा मेरे साथ रहोगे तो दर्शन-सुख मिलता रहेगा और वियोग का भय भी नहीं होगा।

-इस उदाहरण में वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ कम सुन्दर है।

अतः गुणीभूत काव्य (मध्यम काव्य) का उदाहरण है।

(3) **अधम काव्य (चित्र काव्य):** इस काव्य में वाच्यार्थ ही रहता है। इसमें व्यंग्यार्थ नहीं होता।

काव्य के इन तीन भेदों से यह स्पष्ट होता है कि आनंदवर्द्धन ने प्रतीयमान अर्थ (व्यंग्यार्थ) के अभाव में भी काव्य की स्थिति स्वीकार की है।

उदाहरण :-

'तो पर वारौ उरवसी सुन राधिके सुजान।

तू मोहन के उर बसी है उरवसी समान।।'

(तो पर = तेर ऊपर, वारौ = न्योच्छावर, उरवसी = उर्वशी नामक आसरा, मोहन = कृष्ण, उर बसी = हृदय में बसी) वाच्यार्थ है - हे राधे! तेरे ऊपर उर्वशी नामक आसरा भी न्योछावर होगी। यानी तू उर्वशी से भी अधिक सुन्दर है। इसलिए तू कृष्ण के हृदय में उर्वशी के समान बसी है।

-इस उदाहरण में 'उरवसी' शब्द का तीन बार अलग-अलग अर्थों में प्रयोग होने से यमक अलंकार है। पर वाच्यार्थ मात्र मिलता है, व्यंग्यार्थ नहीं मिलता। अतः यह 'चित्र काव्य' (अधम काव्य) का उदाहरण है।

3.1.8 रस और ध्वनि

अभिनव गुप्त के अनुसार रस व्यंग्य होता है, वाच्य नहीं होता। (अर्थात् काव्य में रस कथित नहीं होता, ध्वनित होता है। (अर्थात् कवि की भावानुभूतियाँ संवेद्य रूप में ध्वनित होती हैं। 'रस सिद्धांत' का पूरक है 'ध्वनि सिद्धांत' और 'ध्वनि सिद्धांत' का मूलाधार 'शब्द शक्ति' है। ध्वनि सिद्धांत से ही रस-व्यंजना का रहस्य स्पष्ट हुआ।

3.1.9 वाच्यार्थ की दृष्टि से 'ध्वनि काव्य' के भेद

वाच्यार्थ की दृष्टि से 'ध्वनि काव्य' के मुख्य दो भेद हैं -

(1) अभिधामूला ध्वनि काव्य और (2) लक्षणामूला ध्वनि काव्य।

'घी तो यहाँ 'पये का दो छटांक मिलता है।

(छटांक = एक सेर का सोलहवाँ भाग)। इस वाक्य का व्यंग्यार्थ है 'घी बहुत महंगा है'। वाच्यार्थ के साथ-साथ व्यंग्यार्थ ध्वनित होता है। वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ के बीच कोई अंतराल प्रतीत नहीं होता। (अर्थात् 'असंलक्ष्य' रहता है।

Critical Overview / अवलोकन

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अलंकार सिद्धांत, रीति सिद्धांत और वक्रोक्ति सिद्धांत से अधिक व्यापक है 'ध्वनि सिद्धांत'। 'काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति':((अर्थात् 'काव्य की आत्मा ध्वनि है।')। अन्य आचार्यों ने 'ध्वनि' को रस की व्यंजना का माध्यम मात्र माना और रस को महत्व दिया। वस्तुतः ध्वनि सिद्धांत ने रस सिद्धांत के रहस्य को खोला, अतः ध्वनि सिद्धांत को रस सिद्धांत का पूरक ही मानना चाहिए। आनंदवर्द्धन ने भी 'रस ध्वनि' को सर्वश्रेष्ठ माना। इस प्रकार ध्वनिवादी आचार्य आनंदवर्द्धन ने भी रस के महत्व को स्वीकार लिया। अभिनवगुप्त ने तो रस और ध्वनि का ऐसा समन्वय किया कि अनंतर आचार्यों ने ध्वनि-युक्त सरस काव्य को सर्वश्रेष्ठ कहा। काव्य में ध्वनि द्वारा रस की व्यंजना की जाती है, अतः काव्य की आत्मा 'रस' ही है।

Recap / पुनरावृत्ति

- आनन्दवर्धन ने अपनी रचना 'ध्वन्यालोक' के माध्यम से ध्वनि सम्प्रदाय का प्रतिपादन किया।
- उन्होंने ध्वनि को स्पष्ट शब्दों में काव्य की आत्मा माना।
- अभिनवगुप्त ने भी 'ध्वन्यालोक' (आनंदवर्द्धन की रचना) की टीका 'ध्वन्यालोक लोचन' में 'रस' को ध्वनित माना है।
- आनंदवर्द्धन ने 'व्यंजना' को ध्वनि का आधारभूत तत्व मानते हुए व्यंजना के मूल में 'अभिधा' और 'लक्षणा' दोनों शब्द शक्तियों को माना।
- ध्वनि सिद्धांत से ही रस-व्यंजना का रहस्य स्पष्ट हुआ।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. ध्वनि संप्रदाय के प्रवर्तक कौन हैं?
2. 'ध्वन्यालोक' के रचनाकार कौन हैं?
3. 'ध्वन्यालोक' के टीकाकार कौन हैं?
4. 'ध्वनि प्रस्थापन परमाचार्य' कौन हैं?
5. आनंदवर्द्धन ने 'ध्वनि' के कितने भेद माने?
6. आनंदवर्द्धन ने ध्वनि के महत्व के आधार पर काव्य के कितने भेद किये?'
7. 'प्रतीयमान अर्थ' को यानी ध्वन्यार्थ को काव्य की आत्मा किसने कहा?
8. अलंकार पर आधारित व्यंजना को क्या कहते हैं?

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Answers / उत्तर

1. आनंदवर्द्धन
2. आनंदवर्द्धन
3. अभिनव गुप्त
4. मम्मट
5. दो
6. तीन
7. आनंदवर्द्धन ने
8. अलंकार ध्वनि

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. ध्वनि संप्रदाय के विकास के बारे में लेख लिखिए।
2. ध्वनि संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य तथा अन्य आचार्यों के बारे में टिप्पणी लिखिए
3. काव्य की आत्मा संबन्धी विभिन्न मतों पर चर्चा कीजिए
4. ध्वनि के आधार पर काव्य-भेदों का वर्णन कीजिए।

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

इकाई 2 शब्द शक्ति

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- ‘शब्द शक्ति’ से परिचित होता है
- शब्द भेद समझता है
- अर्थ भेद जानता है
- शब्द शक्तियों के भेद के बारे में जानकारी प्राप्त करता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

भाषा की तीन इकाइयाँ होती हैं- वर्ण, शब्द और वाक्य। ‘वर्ण’ भाषा की सबसे छोटी इकाई है। वर्णों से शब्द बनता है, जो भाषा की छोटी सार्थक इकाई है। शब्दों को निश्चित क्रम में रखने से वाक्य बनता है। वाक्य के द्वारा मन का भाव पूर्ण रूप से प्रकट किया जाता है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

शब्द शक्ति, वाचक शब्द, वाच्यार्थ, व्यंग्यार्थ, लक्ष्यार्थ

Discussion / चर्चा

हिन्दी व्याकरण में किसी वाक्य के भाव को समझने के लिए प्रयुक्त अर्थ को शब्द शक्ति कहा जाता है। कुछ वाक्य ऐसे होते हैं जिनके अर्थ सभी लोगों के लिए समान होते हैं लेकिन कुछ वाक्य ऐसे होते हैं जिनका अर्थ प्रत्येक व्यक्ति अपनी परिस्थितियों के अनुसार लेता है।

3.2.1 शब्द शक्ति किसे कहते है?

‘शब्दार्थ संबन्धः शक्तिः’ (अर्थात् शब्द और अर्थ के संबन्ध को ‘शब्द शक्ति’ कहते हैं। शब्द शक्तियों द्वारा वाक्य में प्रयुक्त ‘शब्द’ (पद) के अर्थ का बोध होता है। शब्दों के अर्थों का बोध करानेवाले अर्थ व्यापारों को ‘शब्द शक्ति’ कहते हैं।

शब्द भेदः ‘शब्द’ मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं- (1) वाचक (2) लक्षक और (3) व्यंजक। इनमें ‘वाचक शब्द’वाच्यार्थ का बोधक होता है। वाचक शब्द पर आश्रित रहता है ‘लक्षक शब्द’। लक्षक शब्द वाच्यार्थ से थोड़ा भिन्न अर्थ देता है। वाचक और लक्षक शब्दों की अपेक्षा रखता है ‘व्यंजक शब्द’। व्यंजक शब्द परोक्षार्थ देता है।

अर्थ भेदः तीन शब्द भेदों (वाचक, लक्षक और व्यंजक) से संबन्धित तीन प्रकार के ‘अर्थ’ होते हैं - (1) वाच्यार्थ, (2) लक्ष्यार्थ और (3) व्यंग्यार्थ।

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

वाचक शब्द का अर्थ 'वाच्यार्थ' है। लक्षकशब्द का अर्थ 'लक्ष्यार्थ' है। व्यंजक शब्द का अर्थ 'व्यंग्यार्थ' है।

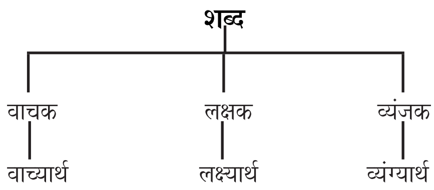

3.2.2 शब्द शक्तियों के भेद

वाचक, लक्षक और व्यंजक शब्दों के क्रमशः वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ का बोध 'शब्द शक्तियों' द्वारा होता है। अतः शब्द शक्तियों के भी तीन भेद हैं (1) अभिधा, (2) लक्षणा और (3) व्यंजना।

'अभिधा' वाच्यार्थमूलक शब्द शक्ति है, 'लक्षणा' लक्ष्यार्थमूलक शब्द शक्ति है और 'व्यंजना' व्यंग्यार्थमूलक शब्द शक्ति है।

3.2.3 शब्द शक्ति का महत्व

(1) शब्द शक्ति से अर्थ का बोध होता है।

(2) जब सामान्य भाषा में व्यक्ति अपनी बात नहीं कर पाता तब 'व्यंजना' का सहारा लेता है। व्यंजना से युक्त काव्य उच्च कोटि का माना जाता है।

शब्द शक्ति

(वाक्य के शब्दों में अर्थ का बोध करानेवाला अर्थव्यापार)

Critical Overview / अवलोकन

काव्य में रस का संचार शब्द-शक्तियों के द्वारा होता है। यहाँ शब्दों का विशेष महत्व माना गया हैं। काव्य-भाषा में वाक्यों की रचना इस बात का सूचक हैं कि उसमें अनेक प्रकार के शब्दों का प्रयोग प्रकरण, प्रसंग और कवि-आशय के अनुसार हुआ है। कवियों की कृतियों में शब्दों के अनेक अर्थ ढूँढने की प्रथा उचित नहीं कही जा सकती। देखना यह चाहिए कि कवि ने शब्दों का प्रयोग कर जिन अभीष्ट अर्थों को रखना चाहा हैं, उसमें वह कहाँ तक सफल हुआ हैं।

Recap / पुनरावृत्ति

- भाषा विचार-विनिमय का साधन है।
- हिन्दी व्याकरण में किसी वाक्य के भाव को समझने के लिए प्रयुक्त अर्थ को शब्द शक्ति कहा जाता है।
- वाचक, लक्षक और व्यंजक शब्दों के क्रमशः वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ का बोध 'शब्द शक्तियों' द्वारा होता है।
- शब्द शक्ति से अर्थ का बोध होता है।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. शब्द कितने प्रकार के होते हैं
2. शब्दों के प्रकारों के नाम क्या-क्या हैं?
3. 'शब्द शक्ति' किसे कहते हैं?
4. वाचक शब्द का अर्थ क्या कहते हैं?
5. लक्ष्यार्थमूलक शब्द शक्ति किसे कहते हैं?
6. जब सामान्य भाषा में व्यक्ति अपनी बात नहीं कर पाता तब किसका सहारा लेता है?
7. व्यंग्यार्थमूलक शब्द शक्ति को क्या कहते हैं?
8. किसके द्वारा वाक्य में प्रयुक्त 'शब्द' (पद) के अर्थ का बोध होता है?

Answers / उत्तर

1. तीन
2. वाचक, लक्षक और व्यंजक
3. शब्दों के अर्थों का बोध करानेवाले अर्थ व्यापारों को 'शब्द शक्ति' कहते हैं।
4. वाच्यायर्थ
5. लक्षणा
6. 'व्यंजना
7. व्यंजना
8. शब्द शक्तियों द्वारा

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. शब्द शक्ति किसे कहते है? कितने भेद हैं? समझाइए?
2. शब्द शक्ति का महत्व क्या-क्या हैं?
3. शब्द भेद किसे कहते हैं? कितने प्रकार के हैं?
4. अर्थ भेद किसे कहते हैं? कितने प्रकार के हैं?

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

इकाई 3 अभिधा शब्द शक्ति

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- अभिधा शब्द शक्ति समझता है
- अभिधा शब्द शक्ति द्वारा अर्थबोध के आधार जानता है
- शब्द निर्माण के प्रकार के बारे में जानकारी प्राप्त करता है
- वाक्य में अनेकार्थी शब्दों के प्रयोग से परिचित होता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

अभिधा शब्द शक्ति' तब होती है जबकि श्रोता या पाठक वाक्य सुनने या वाक्य पढ़ने के बाद उसका लोकप्रसिद्ध अर्थ (मुख्यार्थ/वाच्यार्थ/अभिधेयार्थ/ संकेतित अर्थ) तुरंत प्राप्त करता है। यों 'अभिधा शब्द शक्ति' से किसी भी वाक्य के श्रोता या पाठक 'वाच्यार्थ' ही ग्रहण करता है। किन्तु वाक्य में वाच्यार्थ के अलावा अन्य अर्थ भी हो सकते हैं, परंतु वाक्य के सुनने या पढ़ने पर सबसे पहले वाच्यार्थ ही ग्रहण किया जाता है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

अभिधा शब्द शक्ति, शब्द-रचना, व्याख्या या विवृति, पद सान्निध्य, अभिधेयार्थ

Discussion / चर्चा

3.3.1'अभिधा शब्द शक्ति' किसे कहते हैं?

जिस शब्द शक्ति से प्रचलित अर्थ का बोध हो, उसे अभिधा शब्द शक्ति कहते हैं-

जैसे- दिवस का अवसान समीप था।

(यहाँ - दिवस का अर्थ दिन है)

वाक्य में अनेकार्थवाला शब्द प्रयुक्त हुआ हो तो अन्य शब्दों के सान्निध्य (निकटता), वार्तालाप के प्रसंग, स्थल, समय आदि के अनुसार अर्थ ग्रहण किया जाता है। उदाः

'राम और लक्ष्मण वन जा रहे हैं।' - इस वाक्य में लक्ष्मण भी राम के साथ वन जाने के कारण ((अर्थात् 'राम' के साथ 'लक्ष्मण' के सान्निध्य से) अर्थ निकलता है कि 'राम और लक्ष्मण दशरथ पुत्र हैं।'

'राम और कृष्ण वृन्दावन में हैं' ।- इस वाक्य में राम के साथ कृष्ण के सान्निध्य से तथा वृन्दावन स्थल का संकेत होने के कारण अर्थ निकलता है कि 'कृष्ण के साथ बलराम है।'

'मोती नटखट लड़का है।'

'मोती महंगा है।'

-इन दोनों वाक्यों में 'मोती' शब्द के निकटस्थ शब्दों के संयोग से क्रमशः अर्थ निकलते हैं कि पहला 'मोती' व्यक्ति का नाम है और दूसरा 'मोती' कीमती वस्तु है।

'अभिधा शब्द शक्ति' से प्राप्त होनेवाला अर्थ 'वाच्यार्थ' (अभिधेयार्थ) कहलाता है और यह अर्थ प्रकट करनेवाला शब्द 'वाचक' शब्द कहलाता है। वाचक शब्द से वाच्यार्थ का बोध देनेवाली शब्द शक्ति 'अभिधा' है।

3.3.2 अभिधा शब्द शक्ति द्वारा अर्थबोध के आधारः-

'अभिधा शब्द शक्ति' द्वारा अर्थबोध कुछ आधारों पर होता है। वे आधार इस प्रकार हैं-

3.3.2.1. व्याकरण

शब्द-रचना (शब्द-निर्माण) की जानकारी होने से सहज ही प्रस्तुत शब्द का अर्थबोध होता है। साधारणतया शब्द निर्माण तीन प्रकार से होते हैं-

शब्द के साथ शब्द जुड़कर (अर्थात् शब्द + शब्द), जैसे- देश + प्रेम = देशप्रेम, मन + बल = मनोबल।

शब्द के पहले उपसर्ग जुड़कर ((अर्थात् उपसर्ग+शब्द), जैसे-

यथा+शक्ति = यथाशक्ति, अ+सत्य=असत्य।

शब्द के बाद प्रत्यय जुड़कर ((अर्थात् शब्द+प्रत्यय), जैसे-

गाड़ी+वन= गाड़ीवान, करना+वाला=करनेवाला।

3.3.2.2 कोश

कोश में वर्णमाला क्रम में शब्द रखे जाते हैं। कोश में प्रत्येक शब्द की विशेषताएँ भी दी जाती हैं,

जैसे- एकार्थ या अनेकार्थ, लिंग, प्रस्तुत शब्द किस भाषा का है इसका संकेत (सं. यानी संस्कृत, अं. यानी अंग्रेज़ी, फा. यानी फारसी) आदि। किसी भी शब्द का अर्थ कोश में मिलता है। संदर्भानुसार अर्थ लिया जाता है।

3.3.2.3 व्यवहार

एक वस्तु बार-बार व्यवहार में आने पर वह अपना अर्थ (उपयोग) खुद स्पष्ट करती है। वस्तु का नाम जाने बिना ही देखने मात्र से उसका अर्थ (उपयोग) स्पष्ट होता है। उदाहरणार्थ कुछ ऐसी 'जड़ी-बूटियाँ' हैं कि उनके नाम याद नहीं आते, किन्तु देखने मात्र से उनका अर्थ (उपयोग) याद आता है।

3.3.2.4 व्याख्या या विवृति

किसी भी शब्द का अन्वय या व्याख्या करने पर अर्थ स्पष्ट होता है। उदाः लाभेच्छा उ लाभ की इच्छा।

3.3.2.5 पद सान्निध्य (पद की निकटता)

कभी-कभी वाक्य में प्रयुक्त शब्द का अर्थ मिलने केलिए उससे संबन्धित (निकटस्थ) शब्द को भी देखा जाता है। उदाः

'कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।

इहि खाये बौराये जग उहि पाये बौराय।।'

यहाँ 'कनक' शब्द दो बार भिन्न अर्थों में आया है। 'कनक' शब्द के दो अर्थ हैं- (1) धतूरा और (2) सोना।

वाक्य में अनेकार्थी शब्दों का प्रयोग होने से अन्य पदों के सान्निध्य मात्र से उचित अर्थ ले सकते हैं। खाये बौराये (= खाने से बावला होता है) पद प्रयोग आने से 'कनक' का एक अर्थ 'धतूरा' लिया जाता है। 'पाये बौराय' (उपाने मात्र से बावला होता है) पद प्रयोग आने से 'कनक' का 'सोना' अर्थ लिया जाता है।

अन्य उदाहरणः मोती नटखट लड़का है।

मोती सुन्दर है।

अन्य पदों (नटखट, लड़का) के सान्निध्य से पहले

वाक्य में 'मोती' लड़के का नाम है और दूसरे वाक्य में 'मोती' एक वस्तु है।

Critical Overview /अवलोकन

जितने प्रकार के शब्द होंगे उतने ही प्रकार की शक्तियाँ होंगी। शब्द तीन प्रकार के- वाचक, लक्षक एवं व्यंजक होते हैं तथा इन्हीं के अनुरूप तीन प्रकार के अर्थ- वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ होते हैं। शब्द और अर्थ के अनुरूप ही शब्द की तीन शक्तियाँ- अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना होती हैं।

Recap / पुनरावृत्ति

- अभिधा शब्द शक्ति' से किसी भी वाक्य के श्रोता या पाठक 'वाच्यार्थ' ही ग्रहण करता है
- वाक्य में अनेकार्थवाला शब्द प्रयुक्त हुआ हो तो अन्य शब्दों के सान्निध्य वार्तालाप के प्रसंग, स्थल, समय आदि के अनुसार अर्थ ग्रहण किया जाता है
- एक वस्तु बार-बार व्यवहार में आने पर वह अपना अर्थ (उपयोग) खुद स्पष्ट करती है
- किसी भी शब्द का अन्वय या व्याख्या करने पर अर्थ स्पष्ट होता है

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अभिधा शब्द शक्ति से किसी भी वाक्य के श्रोता या पाठक क्या ग्रहण करता है?
2. जिस शब्द शक्ति से प्रचलित अर्थ का बोध हो, उसे क्या क्या कहते हैं?
3. अभिधा शब्द शक्ति' से प्राप्त होनेवाला अर्थ क्या कहलाता है?
4. किस से अन्य पदों के सान्निध्य मात्र से उचित अर्थ ले सकते हैं?
5. साधारणतया शब्द निर्माण कितने प्रकार से होते हैं?
6. शब्द कितने प्रकार के होते हैं?
7. शब्दों के प्रकारों के नाम क्या-क्या हैं?
8. 'शब्द शक्ति' किसे कहते हैं?

Answers / उत्तर

1. वाच्यार्थ
2. अभिधा शब्द शक्ति
3. वाच्यार्थ' (अभिधेयार्थ)
4. अनेकार्थी शब्दों का प्रयोग होने से
5. तीन
6. तीन
7. वाचक, लक्षक और व्यंजक
8. शब्दों के अर्थों का बोध करानेवाले अर्थ व्यापारों को 'शब्द शक्ति' कहते हैं।

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. 'अभिधा शब्द शक्ति' द्वारा अर्थबोध कुछ आधारों पर होता है। वे आधार क्या-क्या हैं?
2. अभिधा शब्द शक्ति' किसे कहते हैं?
3. शब्द निर्माण के प्रकारों के बारे में टिप्पणी लिखिए

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

इकाई 4 लक्षणा शब्दशक्ति

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- लक्षणा शब्द शक्ति से परिचित होता है
- लक्षणा शब्द शक्ति के भेद समझता है
- लक्ष्यार्थ के आधार पर लक्षणा शब्द शक्ति के भेद जानता है
- वाच्यार्थ एवं लक्ष्यार्थ के संबन्ध के आधार पर लक्षणा शब्द शक्ति' के भेद समझता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

जहाँ, शब्द का वाच्यार्थ (मुख्यार्थ) लेने में बाधा उपस्थित होने पर वाच्यार्थ से ही संबन्धित अन्य अर्थ लिया जाता है वहाँ 'लक्षणा शब्द शक्ति' होती है। (अर्थात् 'शब्द' के वाच्यार्थ से संबन्धित अन्य अर्थ का बोध करानेवाली शक्ति 'लक्षणा शब्द शक्ति' है।'यह अन्य अर्थ रूढ़ि अथवा प्रयोजन के आधार पर लिया जाता है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

लक्षणा शब्द शक्ति, लक्ष्यार्थ, वाच्यार्थ, गौणी लक्षणा और शुद्धा लक्षणा,लक्षण लक्षणा,साध्यवसाना

Discussion / चर्चा

3.4.1 लक्षण शब्द शक्ति किसे कहते हैं?

जब वक्ता द्वारा कहे गये शब्द के मुख्य अर्थ से मूल अर्थ ना निकले, परन्तु मुख्य अर्थ से सम्बंधित किसी एक लक्षण के आधार पर कोई अन्य अर्थ निकले, यह अन्य अर्थ देने वाली शब्द शक्ति, लक्षणा शब्द शक्ति कहलाती है।

उदा: ऐसे उल्लू को कोई नहीं समझ सकता।

ऐसा गधा कहीं नहीं मिलेगा।

- इन दो उदाहरणों में 'उल्लू', 'गधा' इन शब्दों के वाच्यार्थ क्रमशः'पक्षी विशेष' और 'जानवर विशेष' नहीं लिये जाते। इन शब्दों के अर्थ क्रमशः 'उल्लू की भाँति मूर्ख व्यक्ति' और 'गद्दे की भाँति मूर्ख व्यक्ति' लिये जाते हैं। (अर्थात् यहाँ उल्लू और गधे का स्वभाव विशेष (अर्थात् 'मूर्खता' अर्थ लिया जाता है। यह अर्थ विशेष प्रयोजन के आधार पर लिया जाता है। इस प्रकार जिस शब्द शक्ति

से वाच्यार्थ से संबन्धित अन्य अर्थ (लक्ष्यार्थ) लिया जाता है वह 'लक्षणा शब्द शक्ति' है।

'लक्षणा शब्द शक्ति' में कुछ मुख्य बातें होती हैं, जैसे -

1. शब्द के वाच्यार्थ में बाधा, क्योंकि वह संदर्भानुसार असंगत लगता है।
2. वाच्यार्थ से संबन्धित अन्य अर्थ की प्रतीति।
3. अन्य अर्थ (लक्ष्यार्थ) रूढ़ि या प्रयोजन से निकलता है।
4. अन्य अर्थ (लक्ष्यार्थ) रहने से भाषा में चमत्कार होता है।

3.4.2 लक्षणा शब्द शक्ति के भेद

विभिन्न आधारों पर 'लक्षणा शब्द शक्ति' के कई भेद होते हैं। जैसे -

3.4.2.1 लक्ष्यार्थ के आधार पर

लक्ष्यार्थ के आधार पर लक्षणा शब्द शक्ति के दो भेद हैं - रूढ़ि लक्षणा और प्रयोजनवती लक्षणा।

रूढ़ि लक्षणा: वाच्यार्थ में बाधा होने पर रूढ़ि (परंपरा) के आधार पर लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाता है तो 'रूढ़ि लक्षणा' होती है। उदा: 'पंजाब वीर हैं।' -इस वाक्य में 'पंजाब' का 'पंजाब के निवासी' अर्थ रूढ़ि के आधार पर लिया जाता है। अत: रूढ़ि लक्षणा है। वाक्य का अर्थ होता है 'पंजाब के निवासी वीर हैं।'

प्रयोजनवती लक्षणा: वाच्यार्थ में बाधा होने पर किसी विशेष प्रयोजन केलिए लक्ष्यार्थ लिया जाता है तो 'प्रयोजनवती लक्षणा' है। 'गोपाल गधा है।'- इस वाक्य का वाच्यार्थ नहीं ले सकता, क्योंकि गोपाल मनुष्य है, वह गधा नहीं हो सकता। अंत: गधा के 'मूर्खता' स्वभाव विशेष पर जाना पड़ता है। तब वाक्य का अर्थ होता है 'गोपाल मूर्ख है।' यहाँ गोपाल की मूर्खता को व्यक्त करने का प्रयोजन लिया गया है। अत: प्रयोजनवती लक्षणा है।

3.4.2.2 वाच्यार्थ एवं लक्ष्यार्थ के संबन्ध के आधार पर-

1. गौणी लक्षणा और शुद्धा लक्षणा।

गौणी लक्षणा: जहाँ गुण सादृश्य के आधार पर लक्ष्यार्थ का बोध होता है वहाँ 'गौणी लक्षणा' होती है।

उदा:'रामु शेर है।'- इस वाक्य में रामु को शेर जैसा वीर बताने केलिए उसको शेर कहा गया है।

रामु और शेर में 'वीरता' गुण-सादृश्य है। अत: गौणी लक्षणा है।

अन्य उदाहरण: 'सुरेश हवा हो गया।'- हवा का गुण है तेज़ चलना। अत: इस वाक्य का अर्थ होता है 'सुरेश तेज़ चला।' (अर्थात् सुरेश तुरंत गायब हो गया। सुरेश और हवा में 'तेज़ी' गुण सादृश्य है।

अत: गौणी लक्षणा।

शुद्धा लक्षणा: जहाँ गुण सादृश्य को छोड़कर अन्य किसी आधार पर अर्थ लिया जाता है वहाँ 'शुद्धा लक्षणा' होती है। उदा:'लाल पगड़ी आ रही है।'

- इस वाक्य का अर्थ है'लाल पगड़ी' पहना सिपाही आ रहा है। क्योंकि लाल पगड़ी खुद नहीं आ सकती। अत: वाच्यार्थ में बाधा है। लाल पगड़ी पहनकर व्यक्ति आ सकता है।'लाल पगड़ी' और 'लाल पगड़ी पहना व्यक्ति' में साहचर्य संबन्ध है। अत:'शुद्धा लक्षणा' है।

3.4.2.3 वाच्यार्थ है या नहीं, इस आधार पर

उपदान लक्षणा - 'उपदान लक्षणा' में वाच्यार्थ बना रहता है और वाच्यार्थ के साथ ही लक्ष्यार्थ का बोध होता है। उदा: 'लाल पगड़ी आ रही है।'- इस वाक्य का वाच्यार्थ है कि 'लाल पगड़ी आ रही है।' लक्ष्यार्थ है - लाल पगड़ी पहनकर सिपाही आ रहा है।

उक्त उदाहरण में वाच्यार्थ के साथ लक्ष्यार्थ का बोध होता है।

अत: उपादान लक्षणा है।

लक्षण लक्षणा: 'लक्षण लक्षणा' में वाच्यार्थ पूरी तरह समाप्त होता है, तभी लक्ष्यार्थ का बोध होता है। 'गोपाल गधा है।'- यह वाक्य 'लक्षण लक्षणा' का उदाहरण है। गोपाल जानवर (गधा) नहीं हो सकता। अत: वाच्यार्थ समाप्त होता है और 'गोपाल गधा के समान मूर्ख है' लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाता है।

'लक्षण लक्षणा' का अगला नाम है 'जहत् स्वार्था लक्षणा।''जहत्' और 'स्वार्था'के योग से 'जहत्स्वार्था' शब्द बना है। 'जहत्' का अर्थ है 'छोड़ना।''स्व' (=अपना) और 'अर्थ'शब्दों के योग से 'स्वार्था' शब्द बना है, जिसका अर्थ है 'अपना अर्थ'। 'जहत् स्वार्था' का अर्थ है 'अपना अर्थ छोड़ना', यानी 'वाच्यार्थ छोड़ना।'

'जहत्स्वार्था लक्षणा' (लक्षण लक्षणा) में पद या वाक्य अपने वाच्यार्थ को छोड़कर अभिप्रेत अर्थ (लक्ष्यार्थ) को प्रकट करता है। उदा:'वह घर पानी में है।' घर पानी में स्थित नहीं होता। अतः वाच्यार्थ छोड़ना पड़ता है। तब अभिप्रेत अर्थ (लक्ष्यार्थ) 'वह घर पानी के तट पर है' लक्ष्यार्थ पर जाता है। अन्य उदाहरण : 'उसका घर गंगा में है।' गंगा के प्रवाह के कारण घर गंगा में स्थित नहीं हो सकता। अतः वाच्यार्थ छोड़ दिया जाता है, और लक्ष्यार्थ लिया जाता है 'उसका घर गंगा के बिल्कुल किनारे पर है।'

''अजहत् स्वार्था लक्षणा' उपादान लक्षण का अगला नाम है। इसमें 'अ' उपसर्ग है, जो 'नहीं' अर्थ देता है। 'अजहत्' का अर्थ है 'छोड़ना नहीं।' (अर्थात् इसमें वाच्यार्थ छोड़ नहीं दिया जाता है। इसमें 'लक्ष्यार्थ' वाच्यार्थ के अंग रूप में अन्वित (लगा) होता है। उदा:'चक्र सुदर्शन करता सदा जन की रखवारी।'- सुदर्शन चक्र रक्षा नहीं कर सकता। अतः 'विष्णु भगवान' लक्ष्यार्थ लेना पड़ता है। क्योंकि 'सुदर्शन चक्र' विष्णु भगवान के हाथ में है। विष्णु भगवान के साथ सुदर्शन चक्र अंग रूप में रहता है। अतः वाच्यार्थ के साथ लक्ष्यार्थ भी ग्रहण किया जाता है।

3.4.2.4 उपमेय-उपमान के आधार पर-

उपमेय और उपमान के आधार पर लक्षणा के दो भेद हैं - 'सरोपा लक्षणा' और'साध्यवसाना लक्षणा।'

सरोपा लक्षणा- उपमेय (जिसकी उपमा की जाये) और उपमान (जिससे उपमा की जाये) में अभेद आरोप करने से लक्ष्यार्थ की प्रतीति होती है तो 'सरोपा लक्षणा' है।

उदाः 'उदित उदयगिरी मंच पर रघुवर बाल पतंग।'

(उदित = उदय हुआ, उदयगिरि = उदय पर्वत, रघुवर = श्रीराम, पतंग = शलभ, बाल पतंग = प्रभातकालीन सूर्य)

-इस उदाहरण में उदयगिरि (उपमेय) रूपी मंच पर प्रभातकालीन सूर्य (उपमान) का उदय दिखाकर उपमेय पर उपमान का अभेद आरोप किया गया है। अतः 'सरोपा लक्षणा' है।

साध्यवसाना लक्षणा- केवल उपमान (जिससे उपमा की जाये) का कथन होता है, लक्ष्यार्थ की प्रतीति हेतु उपमेय पूरी तरह छिप जाता है तो 'साध्यवसाना लक्षणा' है।

उदा : शेर आया तो युद्ध क्षेत्र से गीदड़ भाग गये। इस उदाहरण में शेर से तात्पर्य है वीर और गीदड़ (अर्थ है जानवर विशेष-सियार) से तात्पर्य है कायर। यहाँ उपमेय को छिपा देने के कारण 'साध्यवसाना लक्षणा' है।

3.4.3 लक्षणा शब्द शक्ति का अन्य भेद

विपरीत लक्षणा-

उदाः कागज़ी पहलवान।

'कागज़' पतला है। पहलवान कुश्ती लड़नेवाला बली पुरुष है। 'पहलवान' को कागज़ी विशेषण होने से पहलवान के गुण का विपरीत अर्थ लेना पड़ता है। (अर्थात् 'दुर्बल' अर्थ लेना पड़ता है। अतः विपरीत लक्षणा है।

विभिन्न आधारों पर लक्षणा शब्द शक्ति के भेद

1. वाचयार्थ में बाधा होने पर रूढ़ि और प्रयोजन के आधार पर

लक्षणा
- **रूढ़ि** (रूढ़ि के आधार पर लक्ष्यार्थ लेता है।)
- **प्रयोजनवती** (विशेष प्रयोजन केलिए लक्ष्यार्थ लेता है।)

2. वाच्यार्थ एवं लक्ष्यार्थ के संबन्ध के आधार पर

लक्षणा
- **गौणी** (गुण सादृश्य के आधार पर लक्ष्यार्थ लेता है।)
- **शुद्धा** (गुण सादृश्य को छोड़कर अन्य किसी आधार पर लक्ष्यार्थ लेता है।)

3. वाच्यार्थ की स्थिति के आधार पर

लक्षणा
- **उपादान/अजहत्स्वार्था** (वाच्यार्थ के साथ लक्ष्यार्थ का बोध होता है।)
- **लक्षण/जहत् स्वार्था** (वाच्यार्थ के विना लक्ष्यार्थ का बोध होता है)

4. उपमेय - उपमान के आधार पर

लक्षणा
- **सारोपा** (उपमेय और उपमान में अभेद का आरोप होता है।)
- **साध्यवसाना** (केवल उपमान का कथन होता है।)

Critical Overview/अवलोकन

जब किसी शब्द के मुख्यार्थ में बाधा हो या अभीष्ट अर्थ का बोध न हो तब अन्य अर्थ किसी लक्षण पर अथवा दीर्घ काल से माने जा रहे रूढ़ अर्थ पर आधारित होता है।लक्षणा शब्द शक्ति के लिए शब्द के मुख्य अर्थ या वाच्यार्थ में बाधा होना, मुख्यार्थ से सम्बंधित कोई अन्य अर्थ लिया जाना, उस शब्द के लक्ष्यार्थ को ग्रहण करने का कोई विशेष प्रयोजन होना आदि तीन बातें आवश्यक हैं।

Recap / पुनरावृत्ति

- ‘शब्द’ के वाच्यार्थ से संबन्धित अन्य अर्थ का बोध करानेवाली शक्ति ‘लक्षणा शब्द शक्ति’ है।
- लक्ष्यार्थ के आधार पर लक्षणा शब्द शक्ति के दो भेद हैं - रूढ़ि लक्षणा और प्रयोजनवती लक्षणा।
- वाक्य में वाच्यार्थ पूरा लुप्त हो गया है या नहीं इस आधार पर लक्षणा के दो भेद हैं- उपादान लक्षणा और लक्षण लक्षणा।
- उपमेय और उपमान के आधार पर लक्षणा के दो भेद हैं - ‘सरोपा लक्षणा’ और‘साध्यवसाना लक्षणा।’
- वाच्यार्थ के ठीक विपरीत अर्थ ध्वनित होता है तो ‘विपरीत लक्षणा’ होती है।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. गुण सादृश्य के आधार पर लक्ष्यार्थ का बोध होता है तो उस लक्षणा का नाम क्या है?
2. वाच्यार्थ के साथ ही लक्ष्यार्थ का बोध होता है तो उस लक्षण का नाम क्या है?
3. वाच्यार्थ पूरी तरह लुप्त रहता है और लक्ष्यार्थ का बोध होता है तो उस लक्षणा का क्या नाम होता है?
4. 'लक्षण लक्षणा का दूसरा नाम क्या है?
5. 'उपदान लक्षणा' का दूसरा नाम क्या है?
6. उपमेय और उपमान में अभेद आरोप करने से लक्ष्यार्थ की प्रतीति होती है तो उस लक्षणा का नाम क्या है?
7. लक्ष्यार्थ की प्रतीति हेतु उपमेय पूरी तरह छिपा रहता है तो उस लक्षणा का नाम क्या है?

Answers / उत्तर

1. गौणी लक्षणा
2. उपादान लक्षणा
3. लक्षण लक्षणा
4. जहत् स्वार्था लक्षणा
5. अजहत् स्वार्थ लक्षणा
6. सरोपा लक्षणा
7. साध्यवसाना लक्षणा

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. लक्षण शब्द शक्ति किसे कहते हैं? कितने भेद हैं? समझाइए।
2. वाक्य में शब्दों के वाच्यार्थ एवं लक्ष्यार्थ के आधार पर 'लक्षणा शब्द शक्ति' के कितने भेद होते हैं?व्याख्या कीजिए।
3. जहत् स्वार्था लक्षणा क्या है? सोदाहरण समझाइए।
4. उपमेय और उपमान के आधार पर लक्षणा के कितने भेद हैं? व्याख्या कीजिए।

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ वाली

इकाई 5

व्यंजना शब्द शक्ति

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- व्यंजना शब्द शक्ति से परिचित होता है
- व्यंजना के भेद समझता है
- शाब्दी व्यंजना और आर्थी व्यंजना में अंतर समझता है
- वस्तु व्यंजना के बारे में जानकारी प्राप्त करता है
- अलंकार व्यंजना और भाव व्यंजना से परिचित होता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

अंजन' शब्द में 'वि' उपसर्ग लगाने से 'व्यंजना' शब्द का निर्माण होता है। अंतः व्यंजना का अर्थ हुआ-' विशेष प्रकार का अंजन'। जब किसी शब्द के अभिप्रेत अर्थ का बोध न तो मुख्यार्थ से होता है और न ही लक्ष्यार्थ से, अपितु कथन के संदर्भ के अनुसार अलग-अलग अर्थ से या व्यंग्यार्थ से हो, वहां व्यंजना शब्द शक्ति होती है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

व्यंग्यार्थ,शाब्दी व्यंजना,अभिधामूला शाब्दी व्यंजना, लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना',आर्थी व्यंजना,वस्तु व्यंजना

Discussion / चर्चा

3.5.1 व्यंजना शब्द शक्ति किसे कहते हैं?

कभी-कभी अभिधा शब्द शक्ति और लक्षणा शब्द शक्ति से वाक्य का अभिप्रेत अर्थ पूरी तरह नहीं मिलता। तब जिस शक्ति से अभिप्रेत अर्थ तक पहुँचता है उसे 'व्यंजना शब्द शक्ति' कहते हैं। 'व्यंजना शब्द शक्ति' से निकलनेवाले अर्थ को 'व्यंग्यार्थ' कहते हैं।

'पेट में चूहा दौड़ा रहा है।'- इस वाक्य का वाच्यार्थ नहीं ले सकता। क्योंकि पेट में चूहा नहीं दौड़ेगा। अतः व्यंग्यार्थ पर जाना है। इस वाक्य का व्यंग्यार्थ है 'भूख लग रही है।'

'अभिधा' और 'लक्षणा' की अपेक्षा 'व्यंजना' में अर्थ और भी सूक्ष्म होता है। व्यंजना शब्द शक्ति से जो अर्थ ध्वनित होता है उसे 'व्यंग्यार्थ' कहते हैं। व्यंग्यार्थ का वाच्यार्थ से कोई संबन्ध नहीं होता।

काव्य शास्त्र के छः संप्रदायों में एक है 'ध्वनि संप्रदाय'। यह ध्वनि संप्रदाय 'व्यंजना' पर आधारित

है। ध्वनि को काव्यशास्त्रियों ने प्रमुख काव्य तत्त्व माना है।

3.5.2 व्यंजना के भेद

व्यंजना के दो भेद हैं - (1) शाब्दी व्यंजना और (2) आर्थी व्यंजना।

3.5.2.1 शाब्दी व्यंजना

'व्यंजना शब्द शक्ति' का संबन्ध ध्वन्यार्थ से है। इसमें अर्थ किसी शब्द विशेष के प्रयोग पर आधारित रहता है। इस शब्द विशेष को 'व्यंजक शब्द' कहते हैं। व्यंजक शब्द को हटाकर उसकी जगह पर्यायवाची शब्द रखने से 'व्यंजना शब्द शक्ति' नहीं रह जाती, 'व्यंग्यार्थ' भी नहीं मिलता। (अर्थात् जहाँ शब्द विशेष के कारण व्यंग्यार्थ का बोध होता है और वह शब्द विशेष हटा देने पर व्यंग्यार्थ समाप्त होता है वहाँ 'शाब्दी व्यंजना' है।

उदाः 'चिरजीवौ जोरी जुरै क्यों न सनेह गंभीर।
को घटि ये वृषभानुजा वे हलधर के वीर।।'

-यहाँ 'वृषभानुजा', 'हलधर के वीर' इन शब्द विशेषों के कारण व्यंग्यार्थ मिलता है। 'वृषभानुजा' और 'हलधर के वीर' के अर्थ हैं क्रमशः गाय (वृषभ + अनुजा = बैल की बहन = गाय), और बैल (हल धारण करनेवाला वीर 'बैल')। अतः उक्त पंक्तियों का एक अर्थ है 'बैल और गाय की जोड़ी' चिरंजीव रहे। इनका स्नेह गंभीर है।

'वृषभानुजा' और 'हलधर के वीर' के अगले अर्थ हैं (व्यंग्यार्थ हैं)- क्रमशः राधा (वृषभानु + जा = वृषभानु की बेटी = राधा), हलधर के वीर (बलराम के वीरभाई = कृष्ण)। (अर्थात् कृष्ण और राधा में कोई एक दूसरे से कम नहीं है। उनका स्नेह गंभीर है। वे चिरंजीव रहें।

'वृषभानुजा', 'हलधर के वीर'- इन व्यंजक शब्दों को हटाकर पर्यायवाली शब्द रख दिये जायें तो व्यंजना समाप्त हो जायेगी।

शाब्दी व्यंजना के भेद :

'शाब्दी व्यंजना' के दो भेद हैं-'अभिधामूला'शाब्दी व्यंजना' और 'लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना'।

3.5.2.2 अभिधामूला शाब्दी व्यंजना

इसमें वाच्यार्थ से एकबारगी व्यंग्यार्थ पर पहुँचते हैं। एक ही शब्द के एकाधिक अर्थ होते हैं, तो उनमें से कौन-सा अर्थ ग्रहण किया जाए इसका निर्णय'अभिधामूला शाब्दी व्यंजना' करती है। 'अभिधामूला शाब्दी व्यंजना' में व्यंजक शब्द के स्थान पर उसका पर्यायवाची शब्द रखने से व्यंजना का लोप होता है। उदाः

'सोहत नाग न मद बिना, तान बिना नहीं राग।'

-इसमें 'नाग' और 'राग' के एकाधिक अर्थ होते हैं।

पर 'नाग' का 'हाथी' अर्थ 'मद' से और 'राग' का रागिनी अर्थ 'तान' से नियंत्रित हैं। यदि 'नाग' का पर्यायवाची शब्द भुजंग (उसर्प) उक्त काव्य पंक्ति में 'नाग' के स्थान पर रख दिया जाये तो व्यंग्यार्थ समाप्त हो जायेगा।

3.5.2.3 लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना

जिस व्यंजना में किसी शब्द के लक्ष्यार्थ के बाद व्यंग्यार्थ पर पहुँच जाता है, वहाँ 'लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना' है। उस शब्द का पर्याय रख देने से व्यंजना का लोप हो जाता है। उदाः 'आप निरे गधे हैं।' यहाँ व्यंग्यार्थ है'आप निरे मूर्ख हैं'। यहाँ 'मूर्ख' व्यंग्यार्थ में गधे की स्वभाव विशेषता 'मूर्खता' लक्ष्यार्थ के ज़रिए पहुँचता है। 'गधे' के बदले और कोई शब्द रखने से व्यंजना का लोप हो जायेगा।

अन्य उदाहरण

'कैसा भरा हुआ सरोवर है कि लोग लोट-लोट कर नहा रहे हैं।' -इस वाक्य में लक्ष्यार्थ के बाद ही व्यंग्यार्थ पर पहुँच सकते हैं। भरे हुए सरोवर में लोट-लोटकर नहाने की ज़रूरत नहीं है। अतः व्यंग्यार्थ निकलता है कि 'सरोवर छिछला है।' (अर्थात् नहाने

को ज़रूरी पानी सरोवर में नहीं है।

3.5.2.4 आर्थी व्यंजना

जहाँ व्यंजना वाक्य के किसी शब्द विशेष पर अवलंबित न हो, (अर्थात् पर्याय रखने पर भी व्यंजना बनी रहे वहाँ आर्थी व्यंजना है। (अर्थात् 'आर्थी व्यंजना' में शब्द विशेष पर बल नहीं दिया जाता, भाव ही प्रमुख है। उसमें समानार्थी शब्द रख देने पर भी अर्थ की प्रतीति होती है।

उदाः 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी

आंचल में है दूध आँखों में पानी'

\- इस उदाहरण में दूसरी पंक्ति में नारी के गुणों (ममता, सहनशीलता) की व्यंजना हुई है। यह व्यंग्यार्थ किसी शब्द विशेष के कारण न होकर अर्थ (भाव) के कारण है। अतः आर्थी व्यंजना है।

3.5.3 काव्य तत्वों के आधार पर व्यंजना के भेद

काव्य के विषय, अलंकार, भाव(रस)आदि के आधार पर व्यंजना के तीन भेद हैं - (1) वस्तु व्यंजना, (2) अलंकार व्यंजना और (3) भाव व्यंजना (रस व्यंजना)।

3.5.3.1 वस्तु व्यंजना

व्यंग्यार्थ द्वारा किसी तथ्य की व्यंजना होती है तो 'वस्तु व्यंजना' होती है।

उदाः 'उषा सुनहले तीर बरसती जय लक्ष्मी सी उदित हुई

उधर पराजित काल रात्रि भी जल में अंतर्निहित हुई।।'

-सूर्योदय के इस वर्णन में रात्रि बीत जाने और हृदय में आशा का उदय होने की सूचना मिलती है।

-अतः वस्तु व्यंजना का उदाहरण है।

अन्य उदाहरणः

'पत्ता तक नहीं हिलता।'

\- यहाँ सन्नाटे की अधिकता की व्यंजना हुई है।

3.5.3.2 अलंकार व्यंजना

जहाँ व्यंग्यार्थ किसी अलंकार का बोध कराये वहाँ 'अलंकार व्यंजना' होती है।

उदा : 'दक्षिण दिशा में सूर्य का भी ओज शेष न रह सके,

किन्तु रघु का तेज उसके पांड्य भूप न सह सके।'

-यहाँ व्यंजना है कि रघु सूर्य से भी अधिक प्रतापी है।

-इन पंक्तियों में 'व्यतिरेक' अलंकार भी है। (व्यतिरेक एक अर्थालंकार है। इसमें उपमान की अपेक्षा उपमेय में कुछ विशेषता बतायी जाती है। 'उपमान' वह है जिसके साथ समता की जाये। उक्त उदाहरण में 'रघु' उपमेय है और सूर्य उपमान है)

3.5.3.3 रस व्यंजना

व्यंग्यार्थ से रस व्यंजित होता है तो 'रस व्यंजना' है। (अर्थात् 'रस व्यंजना' में किसी मनोविकार या भाव की व्यंजना होती है। उदाः

'जब जब पनघट जाऊँ सखी री, वा जमुना के तीर।

भरि-भारि जमुना उमड़ि चलति है, इन नैनन के नीर।।'

(पनघट = पानी भरने का घटा, नैनन = नयन)

-यहाँ 'स्मरण' संचारी भाव रस का पोषक बना है।

-श्रीकृष्ण से बिछड़ने का दुःख गोपिका में है। अतः वियोग श्रृंगार व्यंजित है।

व्यंजना के भेद

(1) वाच्यार्थ के आधार पर

व्यंजना

- **शाब्दी** (वाच्यार्थ से एकबारगी व्यंग्यार्थ पर पहँचता है।)
- **आर्थी** (वाच्यार्थ में रुकने के बाद व्यंग्यार्थ पर पहुँचता है।)

(2) काव्य तत्वों के आधार पर

व्यंजना

- **वस्तु व्यंजना** (व्यंग्यार्थ के द्वारा किसी कथ्य की व्यंजना होती है।)
- **अलंकार व्यंजना** (व्यंग्यार्थ किसी अलंकार का बोध कराता है।)
- **रस व्यंजना** (व्यंग्यार्थ से रस व्यंजित होता है।)

Critical Overview/अवलोकन

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि काव्य जगत् में 'शब्द-शक्तियों' का विशेष महत्व है। शब्द शक्तियों से ही काव्य में अर्थ-चमत्कार होता है। शब्द-शक्तियों के आधार पर 'ध्वनि सिद्धांत' की प्रतिष्ठा हुई है। ध्वनि-सिद्धांत का मूलाधार 'शब्द शक्ति' है और ध्वनि सिद्धांत 'रस सिद्धांत' का ही पूरक है।

Recap / पुनरावृत्ति

- जिस शब्द शक्ति के द्वारा मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ से भिन्न तीसरे का अर्थ प्रकाशित हो उसे ' व्यंजना शब्द शक्ति' कहते हैं।
- व्यंजना शब्द शक्ति' से निकलनेवाले अर्थ को 'व्यंग्यार्थ' कहते हैं।
- काव्य शास्त्र के छः संप्रदायों में एक 'ध्वनि संप्रदाय', 'व्यंजना' पर आधारित है।
- 'अभिधा' और 'लक्षणा' की अपेक्षा 'व्यंजना' में अर्थ और भी सूक्ष्म होता है।
- 'आर्थी व्यंजना' में शब्द विशेष पर बल नहीं दिया जाता, भाव ही प्रमुख है। उसमें समानार्थी शब्द रख देने पर भी अर्थ की प्रतीति होती है।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'व्यंजना' के कितने भेद होते हैं?
2. व्यंजना'के भेदों के नाम लिखिए।
3. किस व्यंजना में शब्द विशेष पर बल नहीं दिया जाता, भाव ही प्रमुख है?
4. जहाँ व्यंग्यार्थ किसी अलंकार का बोध कराये वहाँ कौन -सी व्यंजना होती है?
5. किस व्यंजना में किसी मनोविकार या भाव की व्यंजना होती है।
6. कौन-सी व्यंजना में वाच्यार्थ से एकबारगी व्यंग्यार्थ पर पहुँचते हैं?
7. 'व्यंजना शब्द शक्ति' का संबन्ध किससे है?
8. ध्वनि संप्रदाय किस पर आधारित है?

Answers / उत्तर

1. दो
2. शाब्दी व्यंजना और आर्थी व्यंजना
3. आर्थी व्यंजना में
4. अलंकार व्यंजना
5. रस व्यंजना
6. अभिधामूला शाब्दी व्यंजना
7. ध्वन्यार्थ से
8. व्यंजना

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. व्यंजना शब्द शक्ति किसे कहते हैं? सोदाहरण व्यक्त कीजिए।
2. शाब्दी व्यंजना' के कितने भेद हैं? सोदाहरण व्यक्त कीजिए।
3. काव्य तत्वों के आधार पर व्यंजना के कितने भेद हैं?

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

इकाई 6 औचित्य संप्रदाय

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- औचित्य की परिभाषा जानता है
- औचित्य संप्रदाय सिद्धांत के प्रवर्तक के बारे में जानकारी प्राप्त करता है
- क्षेमेन्द्र का मत समझता है
- क्षेमेन्द्र के पूर्व आचार्यों के औचित्य पर मत समझता है
- औचित्य के भेद जानता है
- औचित्य संप्रदाय की मान्यताओं से परिचित होता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

औचित्य का विवेचन काव्य के संदर्भ में किया गया है। काव्य के संदर्भ में आचार्य क्षेमेंद्र द्वारा प्रवर्तित सिद्धांत औचित्य सम्प्रदाय के रूप में जाना जाता है। क्षेमेंद्र के अनुसार औचित्य काव्य का स्थिर और अनश्वर जीवित है जिसके बिना काव्य निर्जीव है। जो जिसके अनुरूप है, वही उचित है और इसी उचित का भाव औचित्य है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

औचित्यवाद,नाट्यशास्त्र,काव्यदोष,अलंकारवाद, विभिन्न काव्यांग

Discussion / चर्चा

3.6.1 औचित्य किसे कहते हैं?

प्रत्येक वस्तु का उचित मात्रा में उपयोग करने को 'औचित्य' कहते हैं। काव्य में रस, अलंकार, ध्वनि, रीति, भाव, छंद आदि का उचित मात्रा में प्रयोग करने से काव्य सौन्दर्य में वृद्धि होती है। अतः काव्य रचना के संदर्भ में औचित्य का मतलब है कवि-कर्म का औचित्य। औचित्यवादी आचार्य क्षेमेन्द्र के मत में जो जिस स्थान के अनुरूप हो वहीं उसका प्रयोग करना उचित है।

'उचितस्य च या भाव : तदौचित्यं प्रचक्षते।' (अर्थात् 'उचित का जो भाव है वह औचित्य कहा जाता है।' रस, अलंकार, ध्वनि, रीति आदि काव्य के अंग हैं, किन्तु औचित्य तो काव्यांग नहीं है, यह सभी काव्यांगों के अध्ययन-मनन का परिणाम है।

3.6.2 औचित्य सिद्धांत के प्रवर्तक

'औचित्य' को एक काव्य सिद्धांत (काव्य संप्रदाय) के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय आचार्य क्षेमेन्द्र को है, किन्तु 'औचित्य' की कल्पना क्षेमेन्द्र के पहले से

चली आ रही है।

भरतमुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ में 'औचित्य' शब्द का प्रयोग सिद्धांत रूप में नहीं किया है, किन्तु व्यवहार में इसका पर्याप्त प्रयोग किया है। उनके मत में लोक ही नाट्य का प्रमाण है। लोक में एक वस्तु जिस रूप, वेश तथा मुद्रा में उपलब्ध होती है, उसका उसी रूप, वेश तथा मुद्रा में अनुकरण करना नाट्य का चरम लक्ष्य है। वास्तव में रूप, वेशभूषा, मुद्रा आदि का रसानुकूल होना आवश्यक है। ज़रा भी अनौचित्य से रस में व्यवधान आ जायेगा। औचित्य पर ऐसे दृष्टिकोणवाले भरतमुनि को आचित्य तत्व का उद्भावक कहा जा सकता है।

भरतमुनि के बाद भामह के काव्यदोष संबन्धी कथन में 'औचित्य' का परोक्ष कथन हुआ है। दंड़ी के मत में कवि-कौशल से काव्य में काव्यांगों का उचित प्रयोग करने पर दोष भी गुण बन जाते हैं। भरतमुनि की ही भाँति नाटककार यशोवर्मन ने भी औचित्य को समस्त नाटकीय तत्वों की सफल योजना का एकमात्र आधार माना है। भट्ट लोल्लट ने महाकाव्य की रचना के समय विभिन्न तत्वों के निर्वाह में रसानुकूल औचित्य को आवश्यक माना है। अलंकारवादी आचार्य रुद्रट ने औचित्य का सैद्धांतिक उल्लेख किया, दोष-परिहार में औचित्य का महत्व माना तथा विभिन्न काव्यांगों (रस, अलंकार, ध्वनि आदि) के औचित्य पर भी विचार किया।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने रस भंग की व्याख्या करते हुए अनौचित्य को रस भंग का प्रधान कारण कहा। उनके मत में अनुचित वस्तु के सन्निवेश से काव्य में रस का परिपाक नहीं होता। काव्य में कल्पना और विधान का समावेश उचित मात्रा में होने से रसोन्मेष होता है।

आनंदवर्द्धन ने ही सर्वप्रथम औचित्य को विभिन्न काव्यांगों से निबद्ध स्थापित किया। उन्होंने रसौचित्य, अलंकारौचित्य जैसी विभिन्न स्थितियों का वर्गीकरण किया। उन्होंने औचित्य को रस-ध्वनि का उपकारक तत्व माना। उनसे पूर्व 'औचित्य' काव्य दोष-परिहार तक ही सीमित था, पर उन्होंने उसे व्यापक स्तर पर देखा।

3.6.3 क्षेमेन्द्र के मत

क्षेमेन्द्र ने आनंदवर्द्धन से प्रेरणा पाकर औचित्य को स्वतंत्र सिद्धांत के रूप में स्थापित किया। आनंदवर्द्धन ने औचित्य का रस के उपकरण के रूप में विवेचन किया, किन्तु क्षेमेन्द्र ने सभी तत्वों का औचित्य में भली-भाँति समावेश कर दिया। उन्होंने इसी औचित्य को काव्य में कमनीयता का रहस्य माना। उन्होंने काव्य के प्रत्येक अंग- पात्र, शब्द, पद, वर्ण, रीति, वृत्ति, गुण, लिंग, वचन, कारक, वाक्य, रस, भाव, अलंकर, प्रसंग, प्रबंध, व्यावहार, विचार, विषय आदि के औचित्य की स्थिति को महत्वपूर्ण माना। उन्होंने रस को काव्य का आत्म तत्व स्वीकार करके औचित्य को काव्य का जीवनकहा। जैसे-

औचित्यस्य चमत्कारकारिणश्चा'चर्वणे।

रसजीवतभूतस्य विचारकुसतेधुना।।

इस श्लोक में उन्होंने औचित्य को रसानुभूति में चमत्कार उत्पन्न करनेवाला रस का जीवन बताया है।

ध्वनि, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, रस आदि की तरह 'औचित्य' कोई सिद्धांत विशेष या संप्रदाय विशेष नहीं है। यह काव्य की आत्मा नहीं बन सकता। यह प्रत्येक काव्य सिद्धांत में व्याप्त है, अतः इसे सहायक भी नहीं कहा जा सकता। काव्य में इसकी स्थिति उस प्रकार है, जैसे अंधकार में दीपक की। जैसे दीपक किसी वस्तु में चमक भर देता है वैसे प्रत्येक वस्तु का उचित अनुपात में प्रयोग उसकी शोभा में निखार उत्पन्न करता है।

आचार्य क्षेमेन्द्र के मत में औचित्य के अभाव में गुण और अलंकार काव्य में चारुता उत्पन्न नहीं कर पाते। काव्य में गुण और अलंकार की सार्थकता तभी है जब वे औचित्य से युक्त होते हैं।

क्षेमेन्द्र ने औचित्य के सताईस भेद किये और उनके उदाहरणों की भी मीमांसा की औचित्य के वे भेद हैं- पद, वाक्य, प्रबंध, गुण, अलंकार, रस, क्रिया, कारक, लिंग, वचन, विशेषण, उपसर्ग, निपात, देश, काल, कुल, व्रत, तत्व, सत्व, अभिप्राय, स्वभाव, सारसंग्रह, प्रतिभा, अवस्था, विचार, नाम, आर्शीर्वचन आदि।

औचित्यवादी आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रंथ 'औचित्य विचार चर्चा' में 'औचित्य' को व्यापक काव्यतत्व के रूप में प्रतिष्ठित कर उसे काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया। उनके शब्द हैं- 'औचित्यं रस सिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्।' (रस सिद्धस्य = रस से सिद्ध, काव्यस्य = काव्य का, स्थिरं जीवितम् = स्थिर जीवित = स्थिर प्राणतत्व, औचित्यं = औचित्य है।) (अर्थात् 'रस से सिद्ध काव्य का स्थिर प्राणतत्व औचित्य है।' काव्य में औचित्य के बिना रस की सत्ता संभव नहीं है। काव्य में रस को स्थिर जीवनी शक्ति प्रदान करनेवाला तत्व है 'औचित्य।' अतः क्षेमेन्द्र के वह काव्य का 'प्राण तत्व' है।

क्षेमेन्द्र के पूर्ववर्ती आचार्यों ने भी औचित्य पर विचार किया था। किन्तु औचित्य को काव्य की आत्मा कहने का श्रेय आचार्य क्षेमेन्द्र को है।

3.6.4 क्षेमेन्द्र के पूर्ववर्तुती आचार्यों के औचित्य पर मत

भारतीय काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य भरतमुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ में नायक के स्वरूप, अभिनय तथा वेशभूषा केलिए औचित्य की आवश्यकता पर बल दिया। यथा-

'वयोऽनुरूप प्रथमस्तुवेषो वेषानुरूपश्च गतिः प्रचारः

गतिप्रचारानुगतं च पाठ्यं पाठ्यानुरूपोऽभिनयश्च कार्यः।।'

(वयोऽनुरूपउ आयु के अनुरूप, वेषोउ वेश, अनुगत = अनुरूप, पाठ्यं = पाठ्य)

(अर्थात् 'आयु के अनुरूप वेश, वेश के अनुरूप गति विचार (क्रिया), गति विचार के अनुरूप पाठ्य और पाठ्य के अनुरूप अभिनय होने चाहिए।'

क्षेमेन्द्र के मत में औचित्य का ध्यान न रखने से उपहास होता है। इस मत के समर्थन केलिए उन्होंने कहा है। जिस देश का वेश है, जिस अंग का आभूषण है उससे भिन्न देश या अंग में इसका (वेश या आभूषण का) विधान करने पर वह शोभा नहीं पाता। करधनी को गले में कोई पहन ले तो वह उपहास का ही पात्र होगा। 'औचित्य' का अर्थ है 'उचित सामंजस्य।'

भरतमुनि के अतिरिक्त ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्द्धन ने काव्य के प्राणभूत रस के साथ औचित्य का घनिष्ठ संबन्ध स्थापित किया। उनके मत में

'अनौचित्याद् ऋते नान्यद रसभंगस्य कारणम्।'

(अनौचित्याद् ऋते= औनैचित्य के अतिरिक्त, नान्यदउनहीं है।

रसभंगस्य = रसभंग का, कारणम् = कारण)

(अर्थात् 'अनौचित्य के अतिरिक्त रस भंग का कोई कारण नहीं है।'

वस्तुतः औचित्यवादी आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य विवेचन का मूलाधार रसवादी आचार्य भरतमुनि और ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्द्धन के औचित्य संबन्धी मतों को ही बनाया है। क्षेमेन्द्र ने औचित्य की परिभाषा यों दी है-

'उचितं प्राहुराचार्याः सादृशं किल यस्य यत्।

उचितस्य चयो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते।।'

(उचितस्य = उचित का, भावस्तदौयित्य = भावः तत् औचित्य)

(अर्थात् 'कोई वस्तु किसी के अनुरूप होती है तो उसे उचित कहा जाता है। उचित का भाव ही औचित्य है।'

3.6.5 औचित्य के भेद

काव्य में औचित्य के प्रमुख छः भेद हैं-

(1) अलंकार औचित्य, (2) गुण औचित्य, (3) संगठन औचित्य, (4) प्रबंध औचित्य, (5) रीति औचित्य और (6) रस औचित्य।

अलंकार औचित्यः अलंकार औचित्य का मतलब है कि काव्य में अलंकारों का प्रयोग मुख्य भाव की पुष्टि केलिए होना चाहिए।

गुण औचित्यः गुण औचित्य का मतलब है कि काव्य में रसानुकूल गुणों (माधुर्य गुण, प्रसाद गुण, ओज गुण) की योजना होनी चाहिए।

संगठन औचित्यः सम्यक सामासिक पद-रचना करनी चाहिए। इसमें रस, विषय, वक्ता तथा वाच्य के औचित्य पर भी विचार किये जाते हैं।

प्रबन्ध औचित्यः प्रबन्ध काव्य में विख्यात कथा एवं कल्पित कथा का उचित अनुपात होना चाहिए। कोई भी कथा रस के प्रतिकूल नहीं होनी चाहिए। संपूर्ण घटनाएँ देश-काल स्वभाव के अनुसार होनी चाहिए।

रीति औचित्यः रीति औचित्य का मतलब है कि विविध गुणों के अनुकूल रीतियों (वैदर्भी रीति, गौड़ी रीति, पांचाली रीति आदि) का प्रयोग होना चाहिए।

रस औचित्यः रस औचित्य का मतलब है कि रस निष्पाति केलिए विभाव, अनुभाव और संचारी भाव आदि का वर्णन करने में औचित्य का पूरा ध्यान रखना चाहिए। अंगी रस कौन-सा है? अंग रस अंगी रस को किस प्रकार विकसित करता है? पारस्परिक विरोधी रस कौन-कौन से हैं- इन सभी बातों पर ध्यान देना रसौचित्य केलिए ज़रूरी है।

काव्य-रचना में औचित्य के महत्व पर क्षेमेन्द्र ने कहा है कि काव्य में गुण और अलंकार यदि उचित रूप में विन्यस्त होते हैं तो काव्य के भूषण माने जाते हैं। 'अलंकारास्तवलंकारा गुणा ए गुणा : सदो। 'यदि काव्य में गुण, अलंकार आदि उचित रूप में विन्यस्त नहीं होते हैं तो ये ही काव्य के दूषण बन जाते हैं। स्पष्ट है कि अलंकार एवं गुण को काव्य के भूषण बनानेवाला तत्व औचित्य है। औचित्य को सर्वप्रमुख काव्य तत्व मानते हुए क्षेमेन्द्र ने उसे काव्य की आत्मा कहा है-'औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितं।'

Critical Overview /अवलोकन

काव्य में औचित्य के स्थान पर विचार करते हुए निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि काव्य में अलंकार योजना, रस योजना, पद-रचना, वाक्य-विन्यास, प्रबन्धत्व जैसे सभी कार्यों में औचित्य का भाव ज़रूरी है। औचित्य पर ध्यान देने से काव्य आकर्षक बनता है। काव्य का अंतरंग तत्व होने पर भी औचित्य को काव्य की आत्मा नहीं कहा जा सकता। औचित्य काव्य का मूल तत्व नहीं है। उसका महत्व रस पर टिका हुआ है। आचार्य क्षेमेन्द्र 'औचित्यं काव्यस्य जीवितं' कहकर भी रस से पृथक औचित्य का अस्तित्व नहीं मानते। क्षेमेन्द्र औचित्य को रससिद्ध काव्य का स्थिर जीवित (प्राणतत्व) मानते हैं, रसहीन काव्य का नहीं। 'औचित्य'काव्य का अतिसूक्ष्म तत्व है, किन्तु यह काव्य की आत्मा नहीं है।

Recap / पुनरावृत्ति

- काव्य के संदर्भ में आचार्य क्षेमेंद्र द्वारा प्रवर्तित सिद्धांत औचित्य सम्प्रदाय के रूप में जाना जाता है।
- आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रंथ 'औचित्य विचार चर्चा' में 'औचित्य' को व्यापक काव्यतत्व के रूप में प्रतिष्ठित कर उसे काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया।
- काव्य में औचित्य के प्रमुख छः भेद माने जाते हैं- अलंकार औचित्य, गुण औचित्य, संग'न औचित्य, (प्रबंध औचित्य, रीति औचित्य और रस औचित्य।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'औचित्य विचार चर्चा' के रचनाकार कौन हैं?
2. 'औचित्य' के कितने भेद होते हैं?
3. 'औचित्य' किसे कहते हैं?
4. 'औचित्य रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्' - किसका कथन है?
5. 'ध्वनि सिद्धांत' का मूलाधार क्या है?
6. 'ध्वनि' किसे कहते हैं?
7. औचित्य को काव्य सिद्धांत के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय किसको है?
8. महाकाव्य की रचना के समय विभिन्न तत्वों के निर्वाह में रसानुकूल औचित्य को किसने माना?

Answers / उत्तर

1. क्षेमेन्द्र
2. छः
3. कोई वस्तु किसी के अनुरूप होती है तो उस उचित का भाव औचित्य है।
4. क्षेमेन्द्र
5. शब्द शक्ति
6. ध्वनि वहा प्रतीयमान व्यंग्यार्थ है, जिसे वाक्य के शब्द अपने वाच्यार्थ को गौण बनाकर अभिव्यक्त करते हैं।
7. क्षेमेन्द्र
8. लोल्लट

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. आचार्य क्षेमेन्द्र के औचित्य संबन्धी मान्यताओं पर प्रकाश डालिए।
2. औचित्य किसे कहते हैं?औचित्य सिद्धांत के प्रवर्तक कौन- कौन हैं?

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र, लेखक-डॉ.कृष्णदेव शर्मा, प्रकाशक-विनोद पुस्तक मन्दिर, रांगेय राघव मार्ग, आगरा-2
2. काव्य प्रदीप, लेखक-राम बहोरी शुक्ल, प्रकाशक- हिन्दी भवन, 63-टैगोर, टाउन, इलाहाबाद-2
3. काव्यशास्त्र, लेखक -डॉ भगीरथ मिश्र प्रकाशक- विश्वावविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी-221001.
4. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धांत, लेखक-गणपतिचन्द्र गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1

BLOCK 04

पश्चिमी काव्यशास्त्र : एक सामान्य परिचय

SOU

इकाई 1 प्लेटो पूर्व काव्य चिन्तन

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- पाश्चात्य काव्यशास्त्र के उद्भव के बारे में जानता है
- काव्य समीक्षा की शुरुआत के बारे में जानता है
- प्लेटो पूर्व काव्य चिन्तन से परिचित होता है
- पाश्चात्य काव्यशास्त्र का आधार समझता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

पाश्चात्य काव्यशास्त्र (वेस्टर्न पोएटिक्स) के उद्भव के साथ ईसा के आठवीं शताब्दी पूर्व से मिलने लगते हैं। होमर और हेसिओड जैसे महाकवियों के काव्य में पाश्चात्य काव्यशास्त्रीय चिंतन के प्रारंभिक बिंदु मिलते हैं।

काव्य, समाज को उपयोगी प्रेरणा तथा मनोरंजन के कारण महत्वपूर्ण है या आनंद प्रदान करने तथा मनोरंजन के कारण? इस तरह से काव्य शास्त्रीय चिंतन सूत्र यूनानी समाज में बहुत पहले मौजूद रहे और विधिवत् काव्य समीक्षा की शुरुआत प्लेटो से हुई।

Keywords / मुख्य बिन्दु

वेस्टर्न पोएटिक्स,यूनान का प्राचीन इतिहास,यूनान के गौरवशाली चिन्तक,दैवी प्रेरणा प्राप्त कवि

Discussion / चर्चा

पाश्चात्य काव्यशास्त्र जैसे कि नाम से स्पष्ट है कि समग्र पाश्चात्य जगत के साहित्य चिन्तन का अध्ययन है। इसका विस्तार पुराने ग्रीस और रोम से लेकर यूरोप के इटली, फ्रांस, जर्मनी और इंग्लैंड के साथ रूस और अमेरिका जैसे देशों तक है। इसका इतिहास ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी से शुरू होकर आधुनिक काल तक व्याप्त है।

4.1.1 प्लेटो पूर्व काव्य चिन्तन

पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता का आदि स्रोत यूनान रहा है। यूनान के दार्शनिकों विचारकों एवं काव्य चिन्तकों ने जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन ईसा से चार पांच शताब्दियों पूर्व किया था, उन्हीं की अनुगूँज परवर्ती युग में यूरोप के विभिन्न विचारकों की शब्दावली में सुनाई देती है।

पश्चिम में सभ्यता का उदय यूनान से ही हुआ माना जाता है। इसका कारण यह है कि साहित्य, कला, संस्कृति, दर्शन, धर्म और राजनीति आदि से संबंधित चिन्तन पश्चिमी देशों में सर्वप्रथम यूनान में ही मिलता है। यूनान का प्राचीन इतिहास उस समय के जीवन के समसामयिक पक्षों से परिपूर्ण था। काव्य का समृद्ध भण्डार यूनान में ही मिलता है। होमर यूनान का आदि कवि था। उसके महाकाव्य 'इलियड तथा ओडेसी' प्राचीन यूनानी सभ्यता के प्रकाश स्तम्भ हैं। यही ग्रंथ पाश्चात्य काव्यशास्त्र का आधार भी है। ध्यान में रखना होगा कि सर्वप्रथम होमर ने 'इलियड' में साहित्य के उद्देश्य, लक्ष्य, प्रेरणा और रूप रचना संबन्धी मूलभूत प्रश्नों के उत्तर देने की चेष्टा की है। इनमें साहित्य सर्जना की प्रेरणा का मुख्य आधार दैवी कृपा दैवी संकेत बताया गया है। सारांशतः यह है कि पाश्चात्य काव्यशास्त्र की नींव क्लासिकी युग में रखी गई, जो कि काव्य चिन्तन के साथ ही कालान्तर में काव्यशास्त्र का विकास करने में सहायक सिद्ध हुई। निश्चय ही पाश्चात्य काव्यशास्त्र का प्रथम आचार्य प्लेटो को माना गया है। प्लेटो से पूर्व काव्यशास्त्रीय प्रश्नों पर व्यवस्थित चिन्तन नहीं मिलता। प्लेटो के यहाँ ये सब व्यवस्थित एवं विस्तृत है।

यूनान के गौरवशाली चिन्तकों एवं महान दार्शनिकों में सुकरात के शिष्य प्लेटो का नाम सर्वोपरि है। प्लेटो के पूर्व युग में काव्य रचना की प्रेरणा ईश्वरीय माना जाता था। कवि को सामान्य मनुष्यों से अलग कुछ विशिष्ट दैवी शक्ति संपन्न होता था। होमर जैसे महाकवि को यह दैवी प्रेरणा प्राप्त थी। प्लेटो पूर्व काल की यह मान्यता प्लेटो और अरस्तु दोनों के द्वारा स्वीकार की गयी थी।

प्लेटो के अनुसार महत्वपूर्ण घटनाओं के पीछे दैवी प्रेरणा काम करती है। कवि और कलाकार इसी दैवी प्रेरणा से वशीभूत होकर काव्य रचना और कला की सृष्टि करता है।

Critical Overview / अवलोकन

यूनान का प्राचीन इतिहास उस समय के जीवन के समसामयिक पक्षों से परिपूर्ण था। काव्य का समृद्ध भण्डार यूनान में ही मिलता है। यूनान के गौरवशाली चिन्तकों एवं महान दार्शनिकों में सुकरात के शिष्य प्लेटो का नाम सर्वोपरि है। प्लेटो के पूर्व युग में काव्य रचना की प्रेरणा ईश्वरीय माना जाता था। प्लेटो से पूर्व काव्यशास्त्रीय प्रश्नों पर व्यवस्थित चिन्तन नहीं मिलता।

Recap / पुनरावृत्ति

- काव्य शास्त्रीय चिंतन - सूत्र की शुरूआत बहुत पहले यूनानी समाज में प्लेटो से हुई।
- पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी से शुरू होकर आधुनिक काल तक व्याप्त है।
- काव्य का समृद्ध भण्डार यूनान में ही मिलता है।
- पाश्चात्य काव्यशास्त्र का प्रथम आचार्य प्लेटो को माना गया है।
- प्लेटो के पूर्व युग में काव्य रचना की प्रेरणा ईश्वरीय माना जाता था।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. पाश्चात्य काव्यशास्त्र को अंग्रेजी में क्या कहते हैं?
2. पाश्चात्य काव्यशास्त्रीय चिंतन के प्रारंभिक बिंदु किसके काव्य में मिलते हैं?
3. पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास कब से शुरू हुआ?
4. पाश्चात्य काव्यशास्त्र का प्रथम आचार्य किसको माना गया है?
5. यूनान के आदि कवि कौन थे?
6. प्राचीन यूनान सभ्यता का प्रकाश स्तम्भ कौन -सा है?
7. महाकाव्य 'इलियड तथा ओडेसी' के रचनाकार कौन हैं?
8. सुकरात के महान दार्शनिक शिष्य कौन थे?

Answers / उत्तर

1. western poetics
2. होमर और हेसिओड जैसे महाकवियों के
3. ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी से
4. प्लेटो को
5. होमर
6. महाकाव्य 'इलियड तथा ओडेसी'
7. होमर
8. प्लेटो

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. प्लेटो पूर्व काव्य चिन्तन पर टिप्पणी लिखिए।
2. पाश्चात्य काव्यशास्त्र (वेस्टर्न पोएटिक्स) के आरंभ में यूनान की भूमिका क्या है?

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

इकाई 2 प्लेटो का काव्य सिद्धांत

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- प्लेटो की कला सम्बन्धी मान्यताओं की पृष्ठभूमि जानता है।
- प्लेटो का 'अनुकरण सिद्धान्त' को समझता है।
- 'कला और नैतिकता' पर प्लेटो के विचार समझता है
- प्लेटो के काव्य एवं कलाकार सम्बन्धी विचारों पर जानकारी प्राप्त करता है।

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

पाश्चात्य काव्यशास्त्र की व्यवस्थित परंपरा की शुरूआत ही प्लेटो से होती है, इसलिए प्लेटो का काव्य सिद्धांत काफी महत्वपूर्ण है। प्लेटो का जन्म 428 ईसा पूर्व में हुआ था, परन्तु जन्म स्थान एथेन्स या एजीना को लेकर मतभेद है। इसका मूल नाम अरिस्तोक्लीस और अरबी- फारसी में अफलातून नाम प्रसिद्ध है। वे सुकरात के शिष्य थे। प्लेटो का दृष्टिकोण सर्वत्र स्वतंत्र एवं मौलिक दिखाई पडता है, जिसका प्रकटीकरण उनके द्वारा रचित विभिन्न दार्शनिक एवं राजनीतिक ग्रन्थों में हुआ। उनके द्वारा रचित ग्रन्थों में 'दि रिपब्लिक' (गणराज्य) दि स्टेट्समेन, (राजनेता), दि लाज (विधी) आदि उल्लेखनीय है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

अनुकरण सिद्धांत,मिथ्यानुकृति,उपयोगितावाद,आदर्शवादिता,सत्य का उद्घाटन, मानव कल्याण,राष्ट्रोत्थान

Discussion / चर्चा

4.2.1 प्लेटो का अनुकरण सिद्धांत

यूनान के गौरवशाली चिन्तकों एवं महान दार्शनिकों में सुकरात के शिष्य प्लेटो का नाम सर्वोपरि है। वे एक मौलिक चिन्तक भी थे। उनके साहित्यिक विचार, दार्शनिक एवं राजनीतिक सिद्धांतों से काफी प्रभावित है।

प्लेटो के पूर्व कवि को समाज में आदरणीय स्थान था। उन्हें उपदेशक, मार्गदर्शक, संस्कृति का संरक्षक माने जाते थे। लेकिन प्लेटो, साहित्य का महत्व उसी सीमा तक स्वीकार करता है, जहाँ हर एक नागरिकों में सत्य, न्याय और सदाचार की भावना को प्रतिष्ठित करने में सहायक हो। उनके लिए साहित्य की कसौटी आनन्द एवं सौन्दर्य न होकर 'उपयोगितावाद' है। प्लेटो की राय में 'एक गोबर से भरी हुई टोकरी भी सुन्दर कही जा सकती है, यदि वह अपना कोई उपयोग रखती हो, अन्यथा एक स्वर्णजटित चमचमाती हुई ढाल भी असुन्दर है, यदि वह उपयोग की दृष्टि से

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

महत्वहीन हो' । उनके समय के साहित्य में सामाजिक हित की दृष्टि से कोई उपयोगिता नहीं थी। इसलिए उन्होंने साहित्य के विरुद्ध आवाज़ उठायी। होमर, उनके समय के समकालीन कवि थे। उनके प्रति प्लेटो भी आदरभाव रखते थे, किन्तु वे उसके कवि कर्म को हेय दृष्टि से देखते थे।

4.2.2 साहित्य : मिथ्या अनुकृति

प्लेटो की राय में 'काव्य 'मिथ्या जगत की मिथ्या अनुकृति है। कवि या साहित्यकार जिन वस्तुओं या व्यक्तियों की अनुकृति करता है, वे पहले से ही भौतिक जगत में विद्यमान है। यह अनुकृति मिथ्या एवं भ्रामक है, क्योंकि अनुकरण कभी पूर्ण रूप से होना संभव नहीं हैं। जिन वस्तुओं की अनुकृति कवि प्रस्तुत करता है, उनका सत्य रूप तो केवल विचार (idea) रूप में अलौकिक जगत में ही है। ऐसी स्थिति में कवि या कलाकार तो नकल की नकल करता है। प्लेटो के विचार में कवि या कलाकार मिथ्या जगत की मिथ्या अनुकृति करता है, इस प्रकार वह सत्य से दो गुना दूर रहता है, इसलिए वह प्रशंसनीय नहीं अपितु दंडनीय है।

प्लेटो की मान्यता थी कि कवि को मनोरंजन प्रधान तथा अस्वस्थ मनोवेगों को उत्पन्न करनेवाली कविताएँ नहीं लिखनी चाहिए। बच्चे जिन कहानियों को सर्वप्रथम सुनें वे उदात्त विचारों वाली हो। वह सह नहीं सकता था कि कवि देवताओं को कुटिल, पापी, षडयंत्रकारी या क्रूर रूप में चित्रित करें। वह काव्य को नैतिकता और उपयोगिता के मानदंड से परखने का पक्षपाती था। काव्य, आदि ललित कलाओं को वह चिकित्सा,आदि उपयोगी कलाओं से हीन मानता था।

प्लेटो की धारणा थी कि भाव या विचार ही आधारभूत सत्य है, तथा यही मूलादर्श भी है। प्रकृति में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देनेवाली वस्तुएँ उस मूलादर्श की प्रतिकृति (अनुकरण) है। वह भाव या विचार सर्वशक्तिमान ईश्वर के मन में होंगे। इसलिए दृश्यमान जगत उस भाव या विचार का अनुकरण है। बाह्य जगत की वस्तुओं का अंकन ही काव्य में होता है, अतः काव्य अनुकरण का अनुकरण है और मूल सत्य से दोगुना दूर ही है।

प्लेटो का कथन है कि कवि या चित्रकार वस्तुतः कृति नहीं अपितु अनुकृति मात्र प्रस्तुत करता है,अतः वह अमौलिक एवं अज्ञानी है। वह कवि या चित्रकार का महत्व मोची या बढई से भी कम आंकता है, क्योंकि मोची या बढई अपने द्वारा निर्मित वस्तुओं से लोगों का उपकार करते हैं, पर कवि की रचना लोगों का कोई उपकार नहीं करती। वह कविता और कला को समाज के लिए सर्वथा अनुपयोगी मानते हैं। अपने समकालीन कवि होमर से वह पूछना चाहता है कि क्या उसकी कविता किसी को रोगमुक्त कर सकती है, क्या उसकी कविता से कोई युद्ध जीता जा सकता है, क्या उसकी कविता से श्रेष्ठ शासन व्यवस्था स्थापित हो सकती है? इससे स्पष्ट है कि कवि की तुलना में एक चिकित्सक, सैनिक या प्रशासक का महत्व वह अधिक मानता है।

प्लेटो के विचार से कवि अनुपयोगी एवं महत्वहीन तो है, साथ ही वह समाज में दुर्बलता एवं अनाचार के पोषण का भी अपराध करता है। कवि अपनी रचना से भावनाओं एवं वासनाओं को उद्देलित करता है, जिससे विवेक का अंकुश ढीला हो जाता है और व्यक्ति कुमार्ग की ओर अग्रसर हो जाता है। यह ठीक है कि कविता से हमें आनन्द मिलता है, पर ऐसे आनन्द से क्या लाभ है, जो हमें दुराचार एवं कुमार्ग की ओर प्रेरित करें। इसलिए यदि हम राज्य में सुव्यवस्था बनाये रखने चाहते हैं तो हमें कवियों को राज्य से निकाल देना चाहिए।

4.2.3 प्लेटो के मत की समीक्षा

प्लेटो ने अपनी आदर्शवादिता के कारण कविता का पूर्ण बहिष्कार किया। किन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि उसकी दृष्टि एकांगी थी। प्लेटो का चिन्तन दूषित एवं पूर्वाग्रह से युक्त था। केवल 'उपयोगितावाद' को महत्व देना पशुधर्म है। मानव उपयोगिता के अतिरिक्त सौन्दर्य बोध एवं आनन्द को अधिक महत्व देता है, क्योंकि इससे उन्हें मानसिक तृप्ति मिलती है। कवि

को मोची से तुच्छ मानना भी प्लेटो की विवेकहीनता है। प्लेटो का यह कथन भी हम मान नहीं सकते हैं कि कविता अनुपयोगी है। कविता मनोरंजन के साथ-साथ जो नैतिक संदेश देती है, वह किसी से छिपा नहीं है। काव्य सत्य,शिवम् और सुन्दरम् से समन्वित होता है। अतः कविता हर समाज से सदा से है, और सदा रहेगी। हाँ, जानवरों को इसकी ज़रूरत नहीं है।

Critical Overview / अवलोकन

कविता को अनुकरण मानता हुआ प्लेटो कहता है - 'कलाकार वास्तविक जीवन के पदार्थों को उत्पन्न नहीं करते, ये केवल उनकी छायाओं, बिम्बों का ही निर्माण करते हैं।'

प्रसिद्ध समीक्षक सिडनी ने प्लेटो को आदर्शवादी चिन्तक मानते हुए उसके अनुकरण सिद्धान्त को 'आदर्श ' के परिप्रेक्ष्य में देखा है। उसने प्लेटो के अनुकरण की व्याख्या करते हुए लिखा है- 'अनुकरण वह प्रक्रिया है, जो वस्तुओं को उनके यथार्थ रूप में नहीं अपितु आदर्श रूप में प्रस्तुत करती है।'

ऐसा प्रतीत होता है कि प्लेटो 'कविता' के प्रति असहिष्णु था। वास्तव में वह दार्शनिक एवं राजनीतिज्ञ अधिक था, अतः कविता के प्रति न्याय नहीं कर सका। यही कारण है कि उसकी मान्यताओं का खण्डन उसके ही विद्वान शिष्य अरस्तु ने किया और काव्य कला को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया।

Recap / पुनरावृत्ति

- कविता जगत की अनुकृति है। जगत स्वयं अनुकृति है,अतः कविता सत्य से दोगुनी दूर है।
- कविता भावों का उद्वेलन कर व्यक्ति को कुमार्गगामी बनाती है।
- कविता अनुपयोगी है। कवि का महत्व एक मोची से कम है।
- काव्य की कसौटी सदाचार और उपयोगिता है।
- प्लेटो के अनुसार काव्य के तीन प्रयोजन हैं - सत्य का उद्घाटन, मानव कल्याण और राष्ट्रोत्थान।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'दि रिपब्लिक' का रचनाकार कौन है?
2. प्लेटो के समय का समकालीन कवि कौन थे?
3. 'दि स्टेट्समेन' का रचनाकार कौन है?
4. 'काव्य' मिथ्या जगत की मिथ्या अनुकृति है। यह किसका कथन है?
5. प्लेटो के प्रमुख रचनाओं का उल्लेख कीजिए?
6. प्लेटो की राय में साहित्य की कसौटी क्या?
7. प्लेटो को आदर्शवादी चिन्तक मानने वाला समीक्षक कौन है?
8. प्लेटो के अनुसार काव्य के कितने प्रयोजन हैं?

Answers / उत्तर

1. प्लेटो
2. होमर
3. प्लेटो
4. 'प्लेटो
5. दि रिपब्लिक, दि स्टेट्समैन, दि लाज
6. उपयोगितावाद
7. सिडनी
8. तीन

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. प्लेटो के अनुकरण सिद्धान्त पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।
2. 'साहित्य : मिथ्या अनुकृति' पर लेख लिखिए।
3. प्लेटो के अनुसार काव्य प्रयोजन कितने हैं? टिप्पणी लिखिए।

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

इकाई 3 अरस्तु

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- पाश्चात्य ज्ञान- विज्ञान के क्षेत्र में अरस्तु का स्थान समझता है
- अरस्तु के बहुमुखी दर्शन से परिचित होता है
- अरस्तु के जीवन का परिचय प्राप्त होता है
- अरस्तु के द्वारा रचित आध्यात्मिक रचनाओं से परिचित होता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

पाश्चात्य ज्ञान- विज्ञान के क्षेत्र में यूनानी विद्वान अरस्तु (374 ई.पू. - 322 ई.पू.) का स्थान इतना अधिक महत्वपूर्ण है कि उन्हें यदि पाश्चात्य विधाओं का आदि आचार्य भी कह दिया जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। वे एक ओर प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो के शिष्य थे तो दूसरी ओर विश्व विजेता सिकन्दर महान के गुरु होने का गौरव भी उन्हें प्राप्त है। उन्होंने अपने जीवन में लगभग चार सौ ग्रन्थों की रचना की, जिनमें तर्क-शस्त्र, भौतिक शास्त्र, मनोविज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान, राजनीति शास्त्र, आधार - शास्त्र, काव्य- शास्त्र आदि अनेक विषयों की सार गर्भित विवेचना मिलती है। उनके साहित्य सम्बन्धी विचार 'काव्य शास्त्र' (Poetics) एवं 'भाषण शास्त्र'(Rhetorics) में उपलब्ध होते हैं। अरस्तु के द्वारा रचित उनकी आध्यात्मिक रचनाएँ आज भी पाश्चात्य सभ्यता को प्रभावित कर रही हैं। उन्होंने पश्चिमी दर्शन शास्त्र पर पहली व्यापक रचना की, जिसमें नीति, तर्क,विज्ञान,और आध्यात्म का मेलजोल था।

Keywords / मुख्य विन्दु

यथार्थवादी और यथास्थिति के समर्थक, 'लाइसियम' की स्थापना,मेसीडोनिया के समर्थक,महान ज्ञाता

Discussion / चर्चा

अरस्तू प्लेटो के सबसे प्रिय शिष्य थे और राजनीतिक दर्शन में अपने गुरु से प्रेरित थे। किंतु दोनों के राजनीतिक विचारों में विशेषकर अध्ययन पद्धति में मौलिक अन्तर मिलता है। जहाँ प्लेटो एक आदर्शवादी तथा क्रान्तिकारी विचारक थे, अरस्तु अपने चिन्तन में एक यथार्थवादी और यथास्थिति के समर्थक थे। प्लेटो के दर्शन में जहाँ आदर्श और कवित्व का पुट है, अरस्तु के दर्शन में यथार्थवादी और वैज्ञानिकता का समावेश है। प्लेटो की तरह अरस्तु का दर्शन भी बहुमुखी है। राजनीतिशास्त्र के अतिरिक्त नीतिशास्त्र,

दर्शनशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, प्रकृतिविज्ञान जैसे विषयों का भी उनको महान ज्ञाता माना जाता है।

4.3.1 जीवन परिचय

अरस्तु का जन्म 384 ईसा पूर्व में मेसीडोनिया के स्टेजिरा नामक नगर में हुआ था। अरस्तु के पिता निकोमाकस एक राजवैद्य थे और उनकी माता फैस्टिस एक गृहिणी थी। उसका बचपन मेसीडोनिया की राजधानी पेल्ला में बीता जहाँ उसके पिता राजवैघ थे। अपने जीवन के प्रथम काल में उसने अठारह वर्ष की आयु में प्लेटो का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। अरस्तु एक प्रतिभाशाली छात्र था और प्लेट ो का सबसे प्रिय शिष्य बन गया। अरस्तु को नई नई पुस्तकें एकत्र करने का शौक था। प्लेटो ने अरस्तु के घर को पाठक का घर कहा। वह प्लेटो का प्रिय शिष्य होने के बावजूद भी स्वतंत्र चिन्तन में विश्वास रखता था, इसलिए उसने अपने गुरु प्लेटो के कुछ आदर्शों का विरोध भी किया। अरस्तू ने स्वयं कहा कि प्लेटो के साथ ही ज्ञान का अन्त नहीं होगा। लेकिन उसने अपने गुरु की मृत्यु तक अकादमी नहीं छोड़ी और उसकी मृत्यु पर उसे एक महान चिन्तक बताया। अपने जीवन के दूसरे काल में प्लेटो की मृत्यु के बाद वह अकादमी के प्रधान पद प्राप्त करने में असफल रहने पर एथेन्स छोड़ कर अपने मित्र जेनोक्रेटिस के साथ एस्सास नामक नगर में चला गया। वहाँ पर उसने सम्राट हरमियास के दरबार में राजवैद्य का पद स्वीकार कर लिया। कालान्तर में उसने सम्राट की सहायता से एक अकादमी की स्थापना की।

4:3:2 प्रतिभावान दार्शनिक

अरस्तु प्लेटो के सबसे प्रिय शिष्य थे और राजनीतिक दर्शन में अपने गुरु से प्रेरित थे। किंतु दोनों के राजनीतिक विचारों में विशेषकर अध्ययन पद्धति में मौलिक अन्तर मिलता है। जहाँ प्लेटो एक आदर्शवादी तथा क्रान्तिकारी विचारक थे, अरस्तु अपने चिन्तन में एक यथार्थवादी और यथास्थिति के समर्थक थे। प्लेटो के दर्शन में जहाँ आदर्श और कवित्व का पुट है, अरस्तु के दर्शन में यथार्थवादी और वैज्ञानिकता का समावेश है। प्लेटो की तरह अरस्तु का दर्शन भी बहुमुखी है। राजनीतिशास्त्र के अतिरिक्त नीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, प्रकृतिविज्ञान जैसे विषयों का भी उनको महान ज्ञाता माना जाता है।

अपने जीवन के तीसरे काल में मेसीडोनिया के राजा फिलिप की मृत्यु के बाद एथेन्स में 12 वर्ष तक रहकर उसने 'लाइसियम' नामक अकादमी की स्थापना की। 323 ई. पू. सिकन्दर की मृत्यु होने पर एथेन्सवासियों ने मेसीडोनिया के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। अरस्तू मेसीडोनिया के समर्थक होने के कारण देशद्रोह का आरोप लगने पर अपने प्राण बचाने हेतु कैल्सिस नामक नगर में चला गया। यहीं पर इस महान दार्शनिक की (322 ई.पू में) जीवन ज्योति बुझ गई।

Critical Overview / अवलोकन

पाश्चात्य ज्ञान- विज्ञान के क्षेत्र में यूनानी विद्वान अरस्तु (374 ई.पू. - 322 ई.पू.) का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। उनके साहित्य सम्बन्धी विचार 'काव्य शास्त्र' (Poetics) एवं 'भाषण शास्त्र'(Rhetorics) में उपलब्ध होते हैं। अरस्तू ने कहा कि प्लेटो के साथ ही ज्ञान का अन्त नहीं होगा। प्लेटो की तरह अरस्तु का दर्शन भी बहुमुखी है। राजनीतिशास्त्र के अतिरिक्त नीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, प्रकृतिविज्ञान जैसे विषयों का भी उनको महान ज्ञाता माना जाता है।

Recap / पुनरावृत्ति

- प्लेटो के सबसे प्रिय शिष्य थे अरस्तू।
- अरस्तु के दर्शन में यथार्थवादी और वैज्ञानिकता का समावेश है।
- अरस्तु का दर्शन बहुमुखी है।
- उन्होंने पश्चिमी दर्शन शास्त्र पर पहली व्यापक रचना की।
- अरस्तु अपने चिन्तन में एक यथार्थवादी और यथास्थिति के समर्थक थे।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अरस्तु का जन्म कहाँ हुआ था?
2. प्लेटो के सबसे प्रिय शिष्य कौन थे?
3. अरस्तू ने किसके दरबार में राजवैद्य का पद स्वीकार कर लिया?
4. 'लाइसियम' नामक अकादमी की स्थापना किसने की?
5. अरस्तु का दर्शन कैसा है?
6. प्लेटो किस प्रकार के विचारक थे?
7. अरस्तु के दर्शन में क्या-क्या समावेश हैं?
8. राजनीतिशास्त्र के अतिरिक्त अन्य किन विषयों में अरस्तू को महान ज्ञाता माना जाता है?

Answers / उत्तर

1. मेसीडोनिया के स्टेजिरा नामक नगर में
2. अरस्तू
3. सम्राट हरमियास के
4. अरस्तु
5. बहुमुखी
6. आदर्शवादी तथा क्रान्तिकारी
7. यथार्थवादी और वैज्ञानिकता
8. नीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, प्रकृतिविज्ञान

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. अरस्तु का जीवन परिचय दीजिये?
2. अरस्तु का दार्शनिक विचार क्या है?
3. अरस्तु कौन है? उनकी बहुमुखी प्रतिभा पर टिप्पणी लिखिए?

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

SGOU

इकाई 4 अरस्तु का अनुकरण सिद्धांत

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- यूनानी शब्द 'मीमेसिस' से परिचित होता है
- काव्य की महत्ता को पुनर्स्थापित करने में अरस्तु का योगदान समझता है
- अनुकरण सिद्धान्त संबंधी जानकारी हासिल करता है
- अनुकरण की प्रक्रिया समझता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

अनुकरण शब्द यूनानी भाषा के 'मीमेसिस (mimesis) शब्द का हिन्दी पर्याय है। वस्तुतः हिन्दी में यह शब्द अंग्रेजी भाषा के (Imitation) से रूपांतरित होकर आया है। अरस्तु से पूर्व प्लेटो ने अनुकरण सिद्धान्त का विवेचन किया और यह स्थापित किया कि काव्य त्याज्य है, क्योंकि ईश्वर ही सत्य है, इसकी अनुकृति संसार है और संसार की अनुकृति काव्य है। इसप्रकार काव्य अनुकरण का अनुकरण है।

अरस्तु ने भी अनुकरण के सिद्धान्त को इसी रूप में किया है, किन्तु उसने अपनी कल्पना से इसमें नया रंग भर दिया तथा काव्य की महत्ता को पुनस्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

Keywords / मुख्य बिन्दु

मीमेसिस, पुनराख्यान,पुनर्सजना, अनुकृति,अनुकरण सिद्धान्त, सहजानुभूति सिद्धान्त

Discussion / चर्चा

4.4.1 अरस्तु द्वारा अनुकरण शब्द का प्रयोग

अरस्तु ने अनुकरण शब्द का प्रयोग जिस अर्थ में किया उसकी व्याख्या उनके टीकाकार अपने ढंग से करते हैं। प्रोफेसर बूचर के अनुसार अरस्तु के द्वारा प्रयुक्त 'अनुकरण का अर्थ है सादृश्य विधान के द्वारा मूल वस्तु का पुनराख्यान'। प्रोफेसर मरे ने बताया - 'अनुकरण का अर्थ सर्जना का अभाव नहीं अपितु पुनर्सजना ह'।

अरस्तु ने काव्य को सौन्दर्यवादी दृष्टि से देखा और इसे दार्शनिक, राजनीतिक एवं नीतिशास्त्र के बन्धन से मुक्त किया। उनके शब्दों में - 'Art is the imitation of nature' (अर्थात् 'कला प्रकृति की अनुकृति है ' । प्रकृति से उनका अभिप्राय जगत के बाह्य गोचर रूप के साथ- साथ उसके आन्तरिक रूप (काम, क्रोध आदि मनोविकार) से भी है। अरस्तु ने नकल को अनुकरण नहीं माना है। उनके अनुसार 'प्रकृति के अनेक दोष और अभाव भी अनुकृति की प्रक्रिया से कला द्वारा पूरे

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

किए जाते हैं' । उसके शब्दों में 'Generally Art partly complets what nature can not'.

4.4.2 अनुकरण की प्रक्रिया

अरस्तु के अनुसार कवि वस्तुओं को यथास्थित रूप में वर्णित नहीं करता, अपितु उनके युक्तियुक्त (तर्कपूर्ण) संभाव्य रूप में वर्णित करता है। इसप्रकार के मानव जीवन के स्थायी तत्व की अभिव्यक्ति केलिए वस्तु के सत्य का बलिदान भी कर सकता है और उसमें परिवर्तन भी कर सकता है। काव्य में जिस मानव का चित्रण होता है, वह सामान्य से अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी अथवा यथार्थ भी हो सकता है। वस्तुतः कवि सहृदय के आनन्द केलिए यह परिवर्तन करता है, क्योंकि ऐसा करने से कवि को आनन्द मिलता है।

4.4.3 अनुकरण विवेचन

अरस्तु के अनुसार अनुकरण का विषय जीवन का बाह्य पक्ष नहीं है, अपितु इसका प्रभाव क्षेत्र अन्तर्जगत तक व्याप्त है। अरस्तु काव्य केलिए 'वस्तु कैसी है' की अपेक्षा 'वस्तु कैसी होनी चाहिए'पर अधिक बल देता है।

अनुकरण सिद्धान्त का विरोध क्रोचे (croce) के सहजानुभूति सिद्धान्त से भी है, क्योंकि क्रोचे के अनुसार - कला मूल रूप में कलाकार के मन में धटित होती है और वह सहजानुभूति है, जबकि अरस्तू के अनुसार वह कल्पनातीत है। अरस्तू के अनुकरण सिद्धांत की परिधि बहुत संकुचित है। उसमें कवि की अन्तर्चेतना को उतना महत्व नहीं दिया गया जितना देना चाहिए था। कवि जीवन के विभिन्न अनुभवों से गुजरता है, उनसे गुजरकर चेतना का निर्माण करता है, परन्तु अरस्तु ने इस बात पर बल नहीं दिया।

Critical Overview / अवलोकन

अरस्तु ने अनुकरण सिद्धांत को प्लेटो की अपेक्षा नवीन अर्थ प्रदान किया। इसमें 'शिवम् ' की अपेक्षा 'सुन्दरम' पर बल दिया है, उसे दार्शनिकों और नीतियों के चंगुल से पृथक किया।

अरस्तू काव्य को प्रकृति का अनुकरण मानकर चला है। इसलिए डा. नगेन्द्र के अनुसार - 'अरस्तू का दृष्टिकोण अभावात्मक रहा है और त्रास और करुण का विवेचन उसकी चरम सिद्धि रही है।

अरस्तु ने अनुकरण को नया अर्थ प्रदान करते हुए कला का स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित किया, कला को संवेदन एवं बिम्ब विधायिनी शक्ति से सम्पन्न माना तथा कलागत सौन्दर्य को शिवत्व से अधिक महत्व प्रदान किया। अरस्तु के अनुकरण सिद्धान्त में अन्तर्चेतना को कम महत्व दिया गया। अरस्तू कला को वैयक्तिक अनुभूति की अभिव्यक्ति न मानकर संपूर्ण समाज को आनन्द प्रदान करनेवाली वस्तु मानता है। इसप्रकार गीतिकाव्य अरस्तु के अनुकरण सिद्धान्त से मेल नहीं खाता।यह सच है कि इस सिद्धान्त की भी अपनी मान्यताएँ एवं सीमाएँ हैं।

Recap / पुनरावृत्ति

- कविता जगत की अनुकृति है तथा अनुकरण मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है।
- अनुकरण से हमें शिक्षा मिलती है। बालक अपने से बडों की क्रियाएँ देखकर तथा उसका अनुकरण करके ही सोखता है।
- अनुकरण की प्रक्रिया आनंददायक है। हम अनुकृत वस्तु में मूल का सादृश्य देखकर आनंद प्राप्त करते हैं।

- अनुकरण के माध्यम से भयमूलक या त्रासमूलक वस्तु को भी इसप्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है, जिससे आनंद की प्राप्ति हो।
- काव्य कला सर्वोच्च अनुकरणात्मक कला है तथा अन्य सभी ललित कलाओं एवं उपयोगी कलाओं से अधिक महत्वपूर्ण है। नाटक काव्य कला का सर्वाधिक उत्कृष्ट रूप है।
- अरस्तू ने काव्य की समीक्षा स्वतन्त्र रूप से की है। प्लेटो की भाँति दर्शन और राजनीति के चश्मे से उसे नहीं देखा।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'कविता जगत की अनुकृति है तथा अनुकरण मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है।' यह किसका कथन है?
2. 'मीमेसिस' किस भाषा का शब्द है?
3. 'मीमेसिस (mimesis) शब्द का हिन्दी पर्याय क्या है?
4. 'कला प्रकृति की अनुकृति है' -यह किसका कथन है?
5. अरस्तु ने काव्य को किस दृष्टि से देखा?
6. किसने कला को वैयक्तिक अनुभूति की अभिव्यक्ति न मानकर संपूर्ण समाज को आनन्द प्रदान करनेवाली वस्तु मानता है?
7. 'अरस्तू का दृष्टिकोण अभावात्मक रहा है और त्रास और करुण का विवेचन उसकी चरम सिद्धि रही है'। यह किसका कथन है?
8. 'कला मूल रूप में कलाकार के मन में धटित होती है और वह सहजानुभूति है'-यह किसका विचार है?

Answers / उत्तर

1. अरस्तु
2. यूनानी भाषा के 'मीमेसिस
3. अनुकरण
4. अरस्तु
5. सौन्दर्यवादी
6. अरस्तू ने
7. डा. नगेंन्द्र
8. क्रोचे के

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. 'अरस्तु द्वारा अनुकरण शब्द का प्रयोग' के बारे में टिप्पणी लिखिए।
2. अनुकरण की प्रक्रिया स्पष्ट कीजिये?
3. 'काव्य अनुकरण का अनुकरण है' ।कैसे?
4. अरस्तु का काला संबंधी दृष्टिकोण क्या है?

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

SGOU

इकाई 5 अरस्तु का विरेचन सिद्धान्त

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- 'चिकित्साशास्त्र' से सम्बंधित 'विरेचन' शब्द का अर्थ समझता है
- अरस्तु के विरेचन सिद्धान्त के बारे में जानकारी प्राप्त करता है
- सुखांत एवं दुःखान्त नाटकों का अंतर समझता है।
- विरेचन शब्द के तीन व्याख्या संदर्भों से परिचित होता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

विरेचन शब्द मूलतः 'katharsis' (केथारसिस) का हिन्दी अनुवाद है जिसका अर्थ है- रेचक, परिशुद्धि या निष्कासन। यह शब्द 'चिकित्साशास्त्र' से सम्बंधित है। रेचक औषधियों द्वारा शारीरिक विकारों को शरीर से निकालकर शरीर को शुद्ध करने की क्रिया विरेचन कहलाती है। साहित्य पर विरेचन सिद्धान्त को लागु करने का श्रेय अरस्तू को ही है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

केथारसिस, दुःखान्त नाटक, सुखान्त नाटक, धर्मपरक अर्थ, नीतिपरक अर्थ, कलापरक अर्थ

Discussion / चर्चा

4.5.1 विरेचन सिद्धान्त

प्लेटो ने काव्य एवं कला पर यह आरोप लगाया था कि इससे हमारी दूषित वासनाएँ और मनोवृत्तियाँ उत्तेजित एवं पुष्ट होती है - संभवतः इसी का खण्डन करने हेतु अरस्तू ने विरेचन सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि साहित्य हमारी दूषित मनोवृत्तियों का विरेचन कर देता है।

अरस्तु ने विरेचन सिद्धान्त के द्वारा दुःखांत नाटकों की मीमांसा की। यूनान में सुखान्त नाटकों की अपेक्षा दुःखांत नाटकों की रचना अधिक हुई।

दुःखांत नाटकों में गंभीरता एवं उदात्तता अधिक होती है। यद्यपि इन नाटकों में करुणा और भय के मनोविकारों का प्रदर्शन किया जाता था, फिर भी दर्शक इन्हें देखना पसंद करते थे। अरस्तू ने अपने काव्यशास्त्र में इस प्रश्न का उत्तर दिया है कि लोग दुःखांत नाटक क्यों देखते हैं। उसने दुःखांत नाटकों की मीमांसा करते हुए विरेचन के सिद्धांत की कल्पना की।

अरस्तू का मत है कि यदि करुणा और भय हमारे मन में एकत्र होते रहते हैं तो वे हानिकारक होते हैं। दुःखान्त नाटकों में कृत्रिम रूप से हमारी करुणा और

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

भय की भावनाओं के निकास का अवसर मिल जाता है। ट्रेजिडी (Tragedy) एक क्रिया है, जो हममें करुणा और भय की भावना जाग्रत करके हमारी भावनाओं को बाहर निकालने का मार्ग प्रस्तुत कर देती है।

जर्मन काव्य शास्त्री लेसिंग (18वीं शताब्दी) ने बताया है कि सामान्य जनों के मन में भय और करुणा कभी कम और कभी अधिक मात्रा में होती है, परन्तु ट्रेजिडी के दर्शन से उसकी भावनाएँ संतुलित हो जाती हैं। कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार ट्रेजिडी के दर्शन से, भय और करुणा की भावना का उदात्तीकरण हो जाता है। मनोविकारों के शमन से दर्शन को एक विशेष प्रकार का निर्दोष आनन्द मिलता है,जो उसकी आत्मा को विशद बनाता है।

एफ. एल. लुक्स ने विरेचन के सिद्धान्त का विरोध किया है और माना है कि हम नाटक देखने इसलिए नहीं जाते कि मनोवेगों को निकाल दें, अपितु इसलिए जाता है कि उनको अधिक मात्रा में प्राप्त करें।

4.5.2 विरेचन शब्द की व्याख्या

अरस्तु के परवर्ती विद्वानों ने विरेचन शब्द की व्याख्या तीन संदर्भो में की है - धर्मपरक अर्थ, नीतिपरक अर्थ, कलापरक अर्थ।

धर्मपरक अर्थ के अनुसार विरेचन का अर्थ है- बाह्य विचारों की उत्तेजना और उनके शमन द्वारा आत्मा की शुद्धि और शान्ति।

नीतिपरक अर्थ में मनोविकारों की उत्तेजना द्वारा विभिन्न अन्तवृत्तियों का समन्वय करते हुए मन की शान्ति और परिष्कृति पर बल दिया गया है।

कलापरक अर्थ में विरेचन के दो पक्ष हैं- अभावात्मक एवं भावात्मक।। मनोवेगों के उत्तेजन के पश्चात् उनके शमन से उत्पन्न मनःशक्ति उसका अभावात्मक पक्ष है, जबकि इसके उपरान्त उत्पन्न कलात्मक परितोष उसका भावात्मक पक्ष है।

Critical Overview / अवलोकन

डा. एस एस गुप्त ने जर्मन विद्वान वानरेज का उल्लेख करते हुए अरस्तु के विरेचन सिद्धान्त की मानसिक व्याख्या की है। उनके अनुसार - 'मानव मन में अनेक मनोविकार वासना रूप में स्थित होते हैं। उन्हें संतुलित करना वांछनीय है, दमित करना नहीं। करुणा और त्रास के मनोभाव दुःखद होते हैं तत्पश्चात् उपशामित हो जाते हैं। प्रेक्षक त्रासदी देखकर मानसिक शान्ति का सुखद अनुभव करता है, क्योंकि दुखद भावों (करुणा, त्रास) का दंश समाप्त हो जाता है।

निश्चय ही विरेचन का सिद्धान्त अरस्तु द्वारा प्रतिपादित एक महत्वपूर्ण सिद्धात है, जिसने दुःखांत नाटक मीमांसा पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

Recap / पुनरावृत्ति

- साहित्य पर विरेचन सिद्धान्त को लागु करने का श्रेय अरस्तू को है।
- अरस्तू के मत में साहित्य हमारी दूषित मनोवृत्तियों का विरेचन कर देता है।
- करुणा और भय की भावना जाग्रत करके हमारी भावनाओं को बाहर निकालने का मार्ग प्रस्तुत कर देती है।
- एफ. एल. लुक्स ने विरेचन के सिद्धान्त का विरोध किया है।
- अरस्तु के परवर्ती विद्वानों ने विरेचन शब्द की व्याख्या तीन संदर्भो में की है - धर्मपरक अर्थ, नीतिपरक अर्थ, कलापरक अर्थ।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. विरेचन सिद्धान्त के प्रतिपादक कौन हैं?
2. अरस्तु ने किसके द्वारा दुःखांत नाटकों की मीमांसा की?
3. दुःखान्त नाटकों की विशेषताएं क्या-क्या हैं?
4. अरस्तु के परवर्ती विद्वानों ने विरेचन शब्द की व्याख्या कितने संदर्भों में की है?
5. धर्मपरक अर्थ के अनुसार विरेचन का अर्थ क्या है?
6. विरेचन के सिद्धान्त का विरोध किसने किया है?
7. हममें करुणा और भय की भावना जाग्रत करके हमारी भावनाओं को बाहर निकालने का मार्ग प्रस्तुत करनेवाली क्रिया कौन-सी है?
8. यदि करुणा और भय हमारे मन में एकत्र होते रहते है तो वे हानिकारक होते हैं। यह किसका कथन है?

Answers / उत्तर

1. अरस्तु
2. विरेचन सिद्धान्त के द्वारा
3. दुःखान्त नाटकों में गंभीरता एवं उदात्तता अधिक होती है।
4. तीन
5. बाह्य विचारों की उत्तेजना
6. एफ. एल. लुक्स
7. ट्रेजिडी (Tragedy)
8. अरस्तु

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. अरस्तु का 'विरेचन सिद्धान्त' की व्याख्या कीजिए।
2. अरस्तु के परवर्ती विद्वानों ने विरेचन शब्द की व्याख्या कितने संदर्भों में की है?टिप्पणी लिखिए
3. निश्चय ही विरेचन का सिद्धान्त अरस्तु द्वारा प्रतिपादित एक महत्वपूर्ण सिद्धात है,स्पष्ट कीजिए।

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

इकाई 6 लोंजाइनस का उदात्तवाद

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- यूनान के महान दार्शनिकों में लोंजाइनस (longinus) का स्थान समझता है
- औदात्य का स्वरूप जानता है
- औदात्य के स्रोत के बारे में जानकारी प्राप्त करता है
- औदात्य सिद्धान्त की उपलब्धियां समझता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

यूनान के साहित्य चिन्तकों की परंपरा में लोंजाइनस (longinus) का स्थान सर्वोपरि है। वे यूनान के तीसरी शती के महान दार्शनिक थे। उनकी एक रचना 'पैरिइप्सुस' उपलब्ध होती है, जिसका अंग्रेजी नाम है 'On the Sublime' (अर्थात् औदात्य पर विचार जो कि अनेक शताब्दियों तक अज्ञात एवं अप्रकाशित रही। आधुनिक काल के विद्वानों को इसके अस्तित्व का पता सर्वप्रथम 1554 ई. में चला तथा तदनन्तर 1652 में इसका अंग्रेजी अनुवाद हुआ, जिससे इसका प्रचलन यूरोप के विभिन्न भागों म हुआ। लोंजाइनस का उदात्त चरित्र उन्हें 'औदात्य' ग्रंथ का रचयिता सिद्ध करने केलिए पर्याप्त है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

औदात्य, भावोत्पादकता, औदात्य के स्रोत, अलंकार नियोजन, भावप्रवणता, गरिमामय रचना विधान

Discussion / चर्चा

4.6.1 औदात्य का स्वरूप

लोंजाइनस ने औदात्य के स्वरूप पर विचार करते हुए जिन मूल तथ्यों पर प्रकाश डाला, वे इस प्रकार हैं -

1. औदात्य अभिव्यक्ति की उच्चता और उत्कृष्टता का नाम है।
2. अभिव्यक्ति की उच्चता श्रोता के तर्क का समाधान नहीं करती, अपितु उसे अभिभूत कर लेती है।
3. रचना का औदात्य अपनी प्रबल शक्ति के द्वारा पाठक को अनायासः बहा ले जाता है।
4. किसी रचना का शिल्प उसके एक - दो अंशों से नहीं अपितु संपूर्ण रचना के शिल्प- विधान से धीरे-धीरे प्रकाश में आता है, किन्तु उदात्त विचारों यदि अवसर के अनुकूल हो तो एकाएक विद्युत की भांति चमककर समूची विषय-वस्तु को प्रकाशित कर देता है और वक्ता के समस्त वाग्वैभव को एक क्षण में अभिव्यक्त कर देता है।

उक्त कथनों का विश्लेषण करने पर औदात्य के

निम्न लक्षण प्रकाश में आते हैं -

1. औदात्य अभिव्यक्ति की उच्चता से सम्बन्धित होने के कारण शैली का गुण है
2. औदात्य श्रोता को अभिभूत कर लेता है, इसलिए वह तर्क का विषय न होकर भावोत्पादक गुण है।
3. औदात्य की शक्ति इतनी प्रबल होती है कि वह पाठक को बहा ले जाती है।
4. औदात्य किसी रचना में चमत्कार की भांति अचानक स्फुरित होता है।

औदात्य के विषय में व्यक्त उक्त विचारों में परस्पर विरोध दिखाई देता है, क्योंकि एक स्थान पर उसे शील का गुण माना गया है तो दूसरे स्थान पर उसे भावावेग बनाया गया है, जबकि तीसरे स्थान पर उसे चमत्कारिक विचार बताया गया है। वस्तुतः ये तीनों मत एक-दूसरे के पूरक हैं।

औदात्य एक 'भाव' भी है, एक 'विचार' भी है और 'शैली' का गुण भी है। उसकी सत्ता काव्य रचना के वस्तु पक्ष एवं शैली पक्ष दोनों तक व्याप्त है। यही नहीं अपितु वह कलाकार के व्यक्तित्व का भी गुण है। जब कलाकार का व्यक्तित्व औदात्य से युक्त होता है, तो वह उदात्त विषय, उदात्त भाव एवं उदात्त विचारों को अपनी रचना में अपनाता है, जिससे उसकी शैली में औदात्य का समावेश हो जाता है। अतः यही औदात्य अपने समन्वित रूप में प्रकट होकर श्रोता या पाठक की आत्मा को झंकृत कर उसे चमत्कृत करता हुआ आनंद प्रदान करता है।

औदात्य का मूल आधार क्या है, इस प्रश्न पर विचार करते हुए लोंजाइनस औदात्य की मूल प्रेरक शक्ति प्रतिभा को मानते हुए यह स्वीकार करता है कि नियमों के ज्ञान एवं अभ्यास के द्वारा प्रतिभा ज्ञान को उदात्त बनाया जाता है। वस्तुतः औदात्य का आधार कोई एक गुण न होकर कलाकार का सम्पूर्ण व्यक्तित्व है। कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति चारित्रिक दृष्टि से हल्का हो सकता है, उसकी वासनाएं अपरिष्कृत एवं क्षुद्र हो सकती है। ऐसी दशा में उससे 'औदात्य' की आशा नहीं की जा सकती। कोई विद्वान शास्त्रज्ञाता होते हुए भी अहंकारी एवं दम्भी हो सकता है, अतः वह भी उदात्त रचना प्रस्तुत नहीं कर सकता।

स्पष्ट ही लोंजाइनस यह मानता है कि महान प्रतिभाशाली उच्च विद्वान एवं चरित्रवान व्यक्ति ही 'उदात्त' रचनाएँ दे सकता है - ' औदात्य आत्मा की महानता का प्रतिबिम्ब है। सच्चा औदात्य केवल उन्हीं में प्राप्य है, जिनकी चेतना उदात्त एवं विकासोन्मुख है। जिनका जीवन तुच्छ एवं संकीर्ण विचारों के अनुसरण में व्यतीत होता है, वे कभी मानवता के लिए कोई स्थायी महत्व की रचना प्रस्तुत करने में सफल नहीं होते। '

लोंजाइनस का औदात्य सम्बन्धी वह विचार साहित्य चिन्तन में उन्हें विशिष्ट स्थान का अधिकारी बना देता है। उनसे पूर्व किसी भी आलोचक ने साहित्य का उसके रचयिता के व्यक्तित्व से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित नहीं किया था।

4.6.2 औदात्य के स्रोत (तत्व)

लोंजाइनस ने पांच ऐसे स्रोतों का उल्लेख किया है, जो किसी रचना में औदात्य का संचार करते हैं। ये इसप्रकार हैं -

1. उदात्त विचार
2. उदात्त भावों का चित्रण
3. अलंकार नियोजन
4. उत्कृष्ट भाषा
5. गरिमामय रचना विधान

1. उदात्त विचार : उदात्त विचार का सम्बन्ध उदात्त व्यक्तित्व से है। लोंजाइनस के अनुसार - 'Sublimity is the image of greatness of soul' (अर्थात् औदात्य आत्मा की महानता का प्रतिबिंब है। महान व्यक्तियों की वाणी से ही उदात्त विचार ध्वनित होते हैं। लेखक का व्यक्तित्व जितना अधिक उदात्त होगा, उसकी रचना में भी उसी अनुपात में औदात्य दिखाई देगा। कवि को उन महापुरुषों के साथ तादात्म्य स्थापित करना पड़ता है, जिनका चित्रण वह अपनी कविता में करता है। यह औदात्य कवि तभी कर पाता है, जब

उसका अपना व्यक्तित्व उदात्त गुणों से सम्पन्न हो। उदात्त विचार महान व्यक्तियों की वाणी से स्वतः ध्वनित होते हैं,अतः इसकेलिए किसी विशेष बाह्य प्रयास की अपेक्षा नहीं होती है। जिस लेखक या वक्ता का निजी व्यक्तित्व उदात्त होगा, वह स्वतः ही उदात्त विषयों, महान कार्यों एवं महापुरुषों के चित्रण में रुचि लेता हुआ उनका चित्रण उदात्त रूप में कर सकेगा। महापुरुषों एवं महान क्रिया-कलापों के साम्यक् चित्रण के लिए उनके साथ तादात्म्य स्थापित करना आवश्यक है तथा यह कहने की आवश्यकता नहीं कि वह तादात्म्य केवल उन्हीं व्यक्तियों के द्वारा सम्भव है, जो स्वयं उदात्त व्यक्तित्व के धनी हों। इसका उदाहरण 'इलियट' के रचयिता होमर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से दिया जा सकता है। होमर की महान धारणाएँ ही उनकी रचनाओं में उस महानता का संचार कर पायी हैं, जिसे दूसरे शब्द में 'औदात्य' कहा गया है। श्रेष्ठ रचना का विषय भी उदात्त, विस्तृत और व्यापक होना चाहिए। रचनाकार को अनिवार्यतः क्षुद्र, संकुचित हीन एवं स्वार्थबद्ध विचारों से मुक्त होना चाहिए। इस संबंध में डॉ नगेन्द्र का मत है कि 'विषय ऐसा होना चाहिए जो पाठक या श्रोता पर स्थायी प्रभाव डाले जिससे प्रभावित न होना कठिन ही नहीं लगभग असम्भव हो जाए और जिसकी विस्मृति इतनी प्रबल और गहरी हो कि मिटाए न मिटे।'

लोंजाइनस का भी मंतव्य यही है कि औदात्य के वही उदाहरण श्रेष्ठ और सच्चे होते हैं, जो सब व्यक्तियों को सर्वदा आनंद प्रदान कर सकें।

2. भावों का उदात्त चित्रणः लोंजाइनस से पूर्व कतिपय विचारकों ने भावावेग को औदात्य में बाधक माना था, पर लोंजाइनस ने इस धारणा का खण्डन करते हुए भावावेग को औदात्य का सहायक माना है।

लोंजाइनस का कथन है कि - 'मैं यह बात पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि जो आवेग, उन्माद, उत्साह के साथ फूट पडता है और एक प्रकार से वक्ता के शब्दों को विक्षेप से परिपूर्ण कर देता है, उसके यथास्थान व्यक्त होने से स्वर में जैसा औदात्य आता है,वह अन्यत्र दुर्लभ हो। '

भव्य आवेग के अन्तर्गत उन्होंने मन की ऊर्जा, उल्लास, आदर, विस्मय को आवश्यक गुणों के रूप में स्वीकार किया है। आवेग के दो रूप उनके अनुसार हैं -

(1) भव्य या सुखात्मक आवेग-रति, ओज, शौर्य, हास्य।

(2) दुखात्मक आवेग - भय, करुणा, निराशा।

3. अलंकार नियोजनः अलंकारों के साम्यक् प्रयोग से औदात्य की सिद्धि में सहायता मिलती है। लोंजाइनस के मतानुसार अलंकारों का प्रयोग भाषा में इस प्रकार होना चाहिए कि श्रोता या पाठक को उनके प्रयोग का पता न चले। दूसरे शब्दों में अलंकार भावावेग की प्रेरणा से सहज, स्वाभाविक एवं अनायास रूप में काव्य में आना चाहिए तभी वे औदात्य के विधायक होते हैं। लोंजाइनस के अनुसार, 'A figure, therefore is effective only when it appears is disguise.'

4. उत्कृष्ट भाषाः उपयुक्त शब्द चयन, प्रभावोत्पादक शब्दावली, श्रोता को भावाभिभूत कर लेती है। ऐसी शब्द योजना में भावप्रवणता,सौन्दर्य, गरिमा, ओज, शक्ति, आदि श्रेष्ठ गुणों का समावेश होना चाहिए। गरिमामयी भाषा ही काव्यभाषा है, जो सामान्य भाषा से पृथक् होती है। उपयुक्त भाषा में सुन्दर शब्दावली के साथ प्रवाहपूर्णता, रूपकों का सीमित प्रयोग, उपमाओं एवं अत्युक्तियों का उचित प्रयोग होना आवश्यक है। भाषा की सार्थकता औदात्य को उत्पन्न करने में है, जो भाषा इस लक्ष्य में सहायक है, वही आदर्श भाषा कही जा सकती है।

5. गरिमामय रचना विधानः औदात्य का पांचवां स्रोत है गरिमामय रचना विधान, जिसमें प्रथम स्थान सामंजस्य (Harmony) को दिया जा सकता है। शब्दों के व्यवस्थित क्रम से काव्य में सामंजस्य

आता है। बांसुरी की मधुर तान की भांति रचना का सामंजस्य हमारे मन में विभिन्न भावों को उद्वेलित करता है। भाषा में सामंजस्य के लिए ही काव्य में छन्द विधान का आविष्कार किया गया। लोंजाइनस के अनुसार - 'Harmony is an instrument which has a natural power, not only to win and delight, but also in a remarkable degree to exate the soul and sway the heart of man.'

स्पष्ट है कि किसी काव्य में औदात्य का विधान तभी संभव है जब उसमें उदात विचार, उदात्त भावावेग, साम्यक् अलंकार नियोजन, उत्कृष्ट भाषा एवं गरिमामय रचना विधान का प्रयोग किया गया हो। यह भी ध्यान रहे कि ये सभी 'साधन' ही है, कविता का साध्य तो 'औदात्य' ही है।

4.6.3 औदात्य के बाधक तत्व

औदात्य के बाधक तत्वों में भाषा की अव्यवस्था, प्रवाह शून्यता, विषय से अधिक लय को प्रमुखता, उक्ति में अस्पष्टता, आडम्बरपूर्ण शैली, अनुचित विचार, अभिव्यक्ति की क्षुद्रता, ग्राम्य पदों का प्रयोग, कर्ण कटु भाषा आदि को लिया जा सकता है। भारतीय काव्यशास्त्र में इन्हें ही 'काव्य दोष' कहा गया है, जो रस सृष्टि में बाधक होते हैं।

Critical Overview / अवलोकन

ग्रीक साहित्य में अरस्तू ने कला को अनुकृति मानते हुए कवि के निजी व्यक्तित्व की उपेक्षा कर दी थी, किन्तु लोंजाइनस ने कवि के व्यक्तित्व को कविता की भव्यता से सम्बद्ध कर काव्य चिन्तन की दिशा ही बदल दी। अनुकृति सिद्धान्त में कला का सौन्दर्य प्रकृति के सौन्दर्य का अनुकरण मात्र बताकर कलाकार के योगदान को कम करके आंका गया है, किन्तु लोजाइनस ने कवि के व्यक्तित्व को वरीयता (श्रेष्ठता) देते हुए उदात्त काव्य को उदात्त व्यक्तित्व से सम्बन्ध कर दिया।

लोजाइनस ने औदात्य का व्यापक विवेचन करते हुए उसमें विचार तत्व, भाव तत्व, शैली तत्व, अलंकरण, भाषा तत्व सबको समाविष्ट कर दिया। भावावेगों को महत्व देते हुए उसने अलंकारों, गुण-दोषों का भी व्यापक विवेचन किया। भावावेगों के उद्वेलन एवं उससे उत्पन्न आनन्द की बात को स्वीकार करते हुए लोंजाइनस ने भारतीय काव्यशास्त्र के रस सिद्धान की धारणाओं को ही पुष्ट किया है।

औदात्य निश्चित रूप से काव्य का सौन्दर्य विधायक तत्व है, किन्तु वह स्वयं 'सौन्दर्य' या 'रस' का वाचक नहीं है, यही उसकी सीमा है। काव्य का मूल लक्ष्य तो 'रस' और उसमें उत्पन्न आनन्द ही है, किन्तु यदि उसमें औदात्य का भी समावेश हो जाए तो निश्चित रूप से काव्य की महानता में चार चांद लग जाते है, इससे किसी का मतभेद नहीं हो सकता।

Recap / पुनरावृत्ति

- यूनान के महान दार्शनिकों में लोंजाइनस (longinus) का स्थान महत्वपूर्ण है।
- लोंजाइनस ने औदान्य के स्वरूप पर विचार किया।
- ओदात्य निश्चित रूप से काव्य का सौन्दर्य विधायक तत्व है
- उनके मत में औदात्य की शक्ति इतनी प्रबल होती है कि वह पाठक को बहा ले जाती है।
- किसी काव्य में औदात्य का विधान तभी संभव है जब उसमें उदात्त विचार, उदात्त भावावेग, साम्यक् अलंकार नियोजन, उत्कृष्ट भाषा एवं गरिमामय रचना विधान का प्रयोग किया गया हो।

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. On the Sublime (औदाय पर विचार) के लेखक कौन है?
2. सुकरात के शिष्य कौन थे?
3. काव्य में औदात्य सिद्धान्त का प्रतिपादक कौन है?
4. 'औदात्य आत्मा की महानता का प्रतिबिम्ब है' यह किसका कथन है?
5. किसने कवि के व्यक्तित्व को वरीयता (श्रेष्ठता) देते हुए उदात्त काव्य को उदात्त व्यक्तित्व से सम्बन्ध कर दिया?
6. लोंजाइनस के मत में औदात्य का मूल आधार क्या है?
7. 'औदात्य आत्मा की महानता का प्रतिबिंब है'-यह किसका कथन है?
8. लोंजाइनस ने औदात्य के कितने स्रोतों का उल्लेख किया है?

Answers / उत्तर

1. लोंजाइनस
2. प्लेटो
3. लोंजाइनस
4. लोंजाइनस
5. लोजाइनस ने
6. प्रतिभा
7. लोंजाइनस
8. पांच

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. लोंजाइनस की रचना का नामोल्लेख करते हुए उसके काव्य सिद्धान्त का नाम बताइए।
2. लोंजाइनस के औदान्य के स्वरूप पर विचार करते हुए मूल तथ्यों पर प्रकाश डालिए।
3. औदात्य के स्रोत (तत्व) पर टिप्पणी लिखिए

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

BLOCK 05

स्वच्छंदतावादी समीक्षा

SGOU

इकाई 1 नवजागरण, नव्यशास्त्रवाद, फ्रांस की राज्यक्रांति

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- स्वच्छंदतावादी समीक्षा के विभिन्न पहलुओं को समझते हैं
- नवजागरण, नव्यशास्त्रवाद एवं फ्रांस की राज्यक्रान्ति समझते हैं
- नवजागरण की प्रमुख प्रवृत्तियों को समझने का अवसर मिलता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

यूरोप की मध्यकालीन सभ्यता कृत्रिमता और कोरे आदर्श पर आधारित थी। सांसारिक जीवन को मिथ्या बतलाया जाता था। यूरोप के विश्वविद्यालयों में यूनानी दर्शन का अध्ययन-अध्यापन होता था। रोजर बेकन (Roger Bacon) ने अरस्तू की प्रधानता का विरोध किया और तर्कवाद के सिद्धांत (the principle of rationalism) का प्रतिपादन किया। इससे मानववाद का विकास हुआ। मानववादियों ने चर्च और पादरियों की कट्टरता की आलोचना की। लगभग दो सौ वर्षों तक पूरब और पश्चिम के बीच धर्मयुद्ध चला। धर्मयुद्ध के योद्धा पूर्वी सभ्यता से प्रभावित हुए। आगे चलकर इन्हीं योद्धाओं ने यूरोप में नवजागरण (Renaissance in Europe) की नींव मजबूत कर ली। 1453 ई. में उस्मानी तुर्कों ने कुस्तुनतुनिया पर अधिकार कर लिया। कुस्तुनतुनिया ज्ञान-विज्ञान का केंद्र था। तुर्कों की विजय के बाद कुस्तुनतुनिया के विद्वान् लोग भागकर यूरोप के देशों में शरण प्राप्त कर लिए। उन्होंने लोगों का ध्यान प्राचीन साहित्य और ज्ञान की ओर आकृष्ट किया। इससे लोगों में प्राचीन ज्ञान के प्रति श्रद्धा के साथ-साथ नवीन जिज्ञासा उत्पन्न हुई। यही जिज्ञासा पुनर्जागरण (Renaissance in Europe) की आत्मा थी। सामंती प्रथा के कारण किसानों, व्यापारियों, कलाकारों और साधारण जनता को स्वतंत्र चिंतन का अवसर नहीं मिलता था। सामंती युद्धों के कारण वातावरण हमेशा विषाक्त रहता था। किन्तु सामंती प्रथा के पतन से जन-जीवन संतुलित हो गया। शान्ति तथा व्यवस्था कायम हुई। शांतिपूर्ण वातावरण में लोग साहित्य, कला एवं व्यापार की प्रगति की ओर ध्यान देने लगे।

Keywords / मुख्य बिन्दु

नवजागरण, पेट्रार्क (Petrarch), दांते (Dante), बेकन, नव्यशास्त्रवाद, जॉन मिल्टन, अलेक्जेंडर पोप, वोल्टेयर, जॉन ड्राइडन, जोनाथन स्विफ्ट और डैनियल डेफे नियोक्लासिक

Discussion / चर्चा

5.1.1 नवजागरण

नवजागरण (Renaissance in Europe) का शाब्दिक अर्थ होता है, 'फिर से जागना' । 14वीं और 17वीं सदी के बीच यूरोप में जो धार्मिक, साहित्यिक, औधौगिक बदलाव हुआ जिससे मानव की बौद्धिक चेतना का विकास हुआ, मनुष्य बातों पर विश्वास न करके विज्ञान, अनुसंधानों और प्रयोगों की बात करने लगा। व्यापक स्तर पर हो रहे इन परिवर्तनों (सामंतवाद का पतन, विज्ञान का आरंभ, भौगोलिक खोजें, नगरों का उत्थान, वाणिज्यवाद और पूंजीवाद का आरंभ) के कारण मानव का बौद्धिक विकास हुआ इसी काल को नवजागरण कहा जाता है। इसके फलस्वरूप जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नवीन चेतना आई। यह आन्दोलन केवल पुराने ज्ञान के उद्धार तक ही सीमित नहीं था, बल्कि इस युग में कला, साहित्य और विज्ञान के क्षेत्र में नवीन प्रयोग हुए। नए अनुसंधान हुए और ज्ञान-प्राप्ति के नए-नए तरीके खोज निकाले गए। इसने परलोकवाद और धर्मवाद के स्थान पर मानववाद को प्रतिष्ठित किया।

पुनर्जागरण वह आन्दोलन था जिसके द्वारा पश्चिम के राष्ट्र मध्ययुग से निकलकर आधुनिक युग के विचार और जीवन-शैली अपनाने लगे. यूरोप के निवासियों ने भौगोलिक, व्यापारिक, सामजिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्रों में प्रगति की। इस युग में लोगों ने मध्यकालीन संकीर्णता छोड़कर स्वयं को नयी खोजों, नवीनतम विचारों तथा सामाजिक, सांस्कृतिक एवं बौद्धिक उन्नति से सुसज्जित किया। प्रत्येक क्षेत्र में सर्वथा नवीन दृष्टि कोण, आदर्श और आशा का संचार हुआ। साहित्य, कला, दर्शन, विज्ञान, वाणिज्य-व्यवसाय, समाज और राजनीति पर से धर्म का प्रभाव समाप्त हो गया। इस प्रकार पुनर्जागरण उस बौद्धिक आन्दोलन का नाम है जिसने रोम और यूनान की प्राचीन सभ्यता-संस्कृति का पुनरुद्धार कर नयी चेतना को जन्म दिया।

तेरहवीं तथा चौदहवीं शताब्दी में विद्वानों ने प्राचीन साहित्य को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। इनमें पेट्राक (Petrarch), दांते (Dante Alighieri), और बेकन के नाम उल्लेखनीय हैं। विद्वानों ने प्राचीन ग्रन्थों का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद किया और लोगों को गूढ़ विषयों से परिचित कराने का प्रयास किया, पेट्राक की लेखनी के चलते ही उन्हें मानववाद का पिता कहा गया।

नवजागरण का सबसे महत्वपूर्ण कारण वाणिज्य-व्यापार का विकास था। नए-नए देशों के साथ लोगों का व्यापारिक सम्बन्ध कायम हुआ और उन्हें वहाँ की सभ्यता-संस्कृति को जानने का अवसर मिला। व्यापार के विकास ने एक नए व्यापारी वर्ग को जन्म दिया। व्यापारी वर्ग का कटु आलोचक और कट्टर विरोधी था। व्यापारी वर्ग ने चिंतकों, विचारकों, साहित्यकारों और वैज्ञानिकों को प्रश्रय दिया। इस प्रकार व्यापारी वर्ग की छत्रछाया में ज्ञान-विज्ञान की प्रगति हुई। व्यापार के विकास से नए-नए शहर बसे। इन शेरोन में व्यापार के सिलसिले में अनेक देशों के व्यापारी आते थे। उनके बीच विचारों का आदान-प्रदान होता था। विचारों के आदान-प्रदान से जनसाधारण का बौद्धिक विकास हुआ।

जिस समय यूरोप के निवासी बौद्धिक दृष्टि से पिछड़े हुए थे, अरब वाले एक नयी सभ्यता-संस्कृति को जन्म दे चुके थे। अरबों का साम्राज्य स्पेन और उत्तरी अफ्रीका तक फैला हुआ था। वे अपने साम्राज्य-विस्तार के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान को भी फैला रखे थे। अरबों से सम्पर्क के कारण पश्चिम वालों को भी लाभ हुआ।

अरबों से प्राप्त ज्ञान को आधार मानकर यूरोप के विद्वानों ने अरस्तू के अध्ययन पर जोर दिया। उन्होंने पंडितपंथ परम्परा चलाई। इसमें प्राचीनता तथा प्रामाणिकतावाद की प्रधानता थी। प्राचीन साहित्य को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया गया। विभिन्न भाषाओं में प्राचीन साहित्य का अनुवाद किया गया।

इस विचार-पद्धति में अरस्तू के दर्शन की प्रधानता थी।

पुनर्जागरण (Renaissance in Europe) को आगे बढ़ाने में कागज़ और मुद्रणकला का योगदान महत्त्वपूर्ण था। कागज़ और मुद्रणकला के आविष्कार से पुस्तकों की छपाई बड़े पैमाने पर होने लगी। अब साधारण व्यक्ति भी सस्ती दर पर पुस्तकें खरीदकर पढ़ सकता था। पुस्तकें जनसाधारण की भाषा में लिखी जाती थी। जिससे ज्ञान-विज्ञान का लाभ साधारण लोगों तक पहुँचने लगा। लोग विभिन्न विचारकों और दार्शनिकों के कृतित्व से अवगत होने लगे। उनमें बौद्धिक जागरूकता आई।

जिस प्रकार यूरोप के विद्वानों ने 14वीं सदी से लेकर 17वीं सदी तक प्राचीन रोमन एवं यूनानी साहित्य के प्रति बड़ी अभिरुचि दिखायी, उसी प्रकार कलाकारों एवं शिल्पियों ने भी प्राचीन ललित कलाओं से प्रेरणा प्राप्त की एवं संतति के लिए नये आदर्श से इसका विकास किया। मध्ययुगीन यूरोप की कला मुख्यतया ईसाई धर्म से संबंधित थी, परन्तु साहित्य एवं प्राचीन सभ्यता के प्रभाव स्वरूप पंद्रहवीं एवं सोलहवीं सदियों में यूरोपीय कला का महान रूपांतर व परिवर्तन हुआ। अब कला पर साहित्य व प्राचीनता की छाप स्पष्टतया दिखायी देने लगी एवं कला के सभी क्षेत्रों में स्थापत्य-कला, मूर्तिकला, चित्रकला एवं संगीत में प्राचीनता के आदर्श अपनाये जाने लगे एवं इनकी अद्वितीय उन्नति हुई। मध्ययुग में जहाँ यूरोप में भाषाओं का प्रारंभिक विकास प्रारंभ हुआ, वहाँ साथ ही, इटली में कई महत्वपूर्ण साहित्य की रचना हो चुकी थी, परंतु पंद्रहवीं सदी में इटालियन विद्वानों द्वारा प्राचीन लैटिन एवं यूनानी साहित्य के प्रति अत्यधिक 'चिरप्रदर्शन के कारण इटालियन लोक भाषा का विकास अवरूद्ध हो गया। इस युग के प्रसिद्ध इटालियन साहित्यकार एवं विद्वान लैटिन एवं यूनानी साहित्य के महान उपासक थे, परंतु अपनी राष्ट्रीय भाषा व साहित्य के प्रति बड़े उदासीन थे। यद्यपि पेट्रार्क इटालियन भाषा में सुंदर कविताओं की रचना कर सकता था, परंतु वह ऐसी रचना करने में हीनता का बोध करता था। दूसरी ओर, लैटिन भाषा में लिखने में उसे गर्व था। इन विद्वानों ने होरेस, सिसेरो एवं वर्जिल की रचनाओं का अनुसरण किया एवं उन्होंने प्राचीन साहित्य के गौरव एवं वास्तविक सौंदर्य का द्वारा प्रशस्त कर दिया। प्राचीन यूनानी तथा लैटिन साहित्य एवं ग्रंथों की खोज एवं वैज्ञानिक अध्ययन के परिणाम स्वरूप विद्वानों में वैज्ञानिक अवचेतना की प्रवृत्ति जागतृ हुई। इस युग में राजाओं या सेनापतियों की प्रशस्ति की अपेक्षा विद्वानों एवं कलाकारों के जीवन चरित्र लिखे एवं पढ़े जाने लगे। प्राचीन कला के अध्येता प्रयोगों में 'चिरले रहे थे और नई पद्धतियों का निर्माण कर कुछ सुप्रसिद्ध कलाकार जैसे लिओनार्दो दा विंची और माइकल एंजेलो नवोदित युग का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। लिओनार्दो दा विंची मूर्तिकार, वैज्ञानिक आविष्कारक, वास्तुकार, इंजीनियर, बैले (Ballet) नृत्य का आविष्कारक और प्रख्यात बहुविज्ञ था। इतालवियों ने चित्रकला में विशेष उत्कर्ष प्रदर्शित किया। यद्यपि प्रयुक्त सामग्री बहुत सुंदर नहीं थी, तथापि उन चित्रकारों की कला यथार्थता, प्रकाश, छाया और दृश्य-भूमिका की दृष्टि से पूर्ण हैं। द विंसी और माइकेल एंजेलो के अतिरिक्त राफेल इटली के श्रेष्ठ चित्रकार हुए हैं। ड्यूयूरेस और हालवेन महान उत्कीर्णक हुए हैं।

सोलहवीं सदी के प्रारंभ में, यद्यपि सामान्यतः ईसाइयों पर कैथलिक धर्म का प्रभाव अक्षुण्ण बना रहा, परंतु सांस्कृतिक पुन'त्थान के परिणामस्वरूप सर्वसाधारण जनता में स्वतंत्र चिंतन एवं धार्मिक विषयों का वैज्ञानिक अध्ययन प्रारम्भ हो गया था। सांस्कृतिक पुनरूत्थान के परिणामस्वरूप यूरोप के विभिन्न राज्यों में लोक भाषाओं एवं राष्ट्रीय साहित्य का विकास आरंभ हुआ। सर्वसाधारण जनता ने क्लिश्ट एवं जटिल लैटि न भाषा का परित्याग कर अपनी मातृभाषाओं में रचित सरल एवं बोधगम्य रचनाओं एवं साहित्य का अध्ययन आरंभ कर दिया था। सांस्कृतिक पुनर्जागरण द्वारा जटिल साहित्य, विज्ञान, कला एवं बौद्धिक जागृति ने सर्वसाधारण जनता को एक नयी स्फूर्ति, स्पंदन और चिंतन से अनुप्राणित कर दिया। अतः

सदियों से प्रचलित कैथलिक धर्म के निर्देशों एवं अधिकारों का पालन करने के लिए अब लोग तैयार नहीं थे। अब वे कैथलिक चर्च के अधिकारों एवं निर्देशों का विरोध करने लगे, क्योंकि कैथलिक चर्च का नैतिक स्तर काफी नीचे गिर गया था, अब चर्च की कटु आलोचनाएँ होने लगीं एवं चर्च के विरूद्ध आक्षेप एवं आरोप होने लगे। मार्टिन लूथर द्वारा जर्मन भाषा में 'बाइबिल' धर्म- ग्रंथ का अनुवाद एवं प्रकाशन धर्म-सुधार एवं प्रोटेस्टेंट आन्दोलन के लिए सबसे महत्वपूर्ण एवं सहायक कारण सिद्ध हुआ।

विभिन्न क्षेत्रों में नवजागरण: Renaissance का अर्थ 'पुनर्जन्म' होता है। मुख्यतः यह यूनान और रोम के प्राचीन शास्त्रीय ज्ञान की पुनःप्रतिष्ठा का भाव प्रकट करता है। यूरोप में मध्ययुग की समाप्ति और आधुनिक युग का प्रारंभ इसी समय से माना जाता है। इटली में इसका आरंभ फ्रांसिस्को पेट्रार्क (1304-1367) जैसे लोगों के काल में हुआ, जब इन्हें यूनानी और लैटिन कृतियों में मनुष्य की शक्ति और गौरव संबंधी अपने विचारों और मान्यताओं का समर्थन दिखाई दिया। 1453 में जब कस्तुनतुनिया पर तुर्कों ने अधिकार कर लिया, तो वहाँ से भागनेवाले ईसाई अपने साथ प्राचीन यूनानी पांडुलिपियाँ पश्चिम लेते गए। इस प्रकार यूनानी और लैटिन साहित्य के अध्येताओं को अप्रत्याशित रूप से बाइजेंटाइन साम्राज्य की मूल्यवान् विचारसामग्री मिल गई। चार्ल्स पंचम द्वारा रोम की विजय (1527) के पश्चात् पुनर्जागरण की भावना आल्प्स के पार पूरे यूरोप में फैल गई।

इटालवी पुनर्जागरण में साहित्य की विषयवस्तु की अपेक्षा उसके रूप पर अधिक ध्यान दिया जाता था। जर्मनी में इसका अर्थ श्रम और आत्मसंयम था, इटालवियों के लिए आराम और आमोद-प्रमोद ही मानवीय आदर्श था। डच और जर्मन कलाकारों, ने जिनमें हाल्वेन और एल्बर्ट ड्यूरर उल्लेखनीय हैं, शास्त्रीय साहित्य की अपेक्षा अपने आसपास दैनिक जीवन में अधिक 'चिरप्रदर्शित की। वैज्ञानिक उपलब्धियों के क्षेत्र में जर्मनी इटली से भी आगे निकल गया। इटली के पंडितों और कलाकारों का फ्रांसीसियों पर सीधा और प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा; किंतु उन्होंने अपनी मौलिकता को प्राचीनता के प्रेम में विलुप्त नहीं होने दिया। अंग्रेजी पुनर्जागरण जॉन कोले (1467-1519) और सर टामस मोर (1478-1535) के विचारों से प्रभावित हुआ।

मौकियावेली की पुस्तक 'द प्रिंस'में राजनीतिक पुनर्जागरण की सच्ची भावना का दर्शन होता है। रॉजर बेकन ने अपनी कृति 'सालामन्ज हाउस' में पुनर्जागरण की आदर्शवादी भावना को अभिव्यक्ति प्रदान की है। ज्योतिष शास्त्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए और गणित, भौतिकी, रसायन शास्त्र, चिकित्सा, जीवविज्ञान और सामाजिक विज्ञानों में बहुमूल्य योगदान हुए। कार्पनिकस ने यह सिद्धांत प्रतिपादित किया कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घुमती है और अन्य ग्रहों के साथ, जो स्वयं अपनी धुरियों पर घूमते हैं, सूर्य की परिक्रमा करती है। केप्लर ने इस सिद्धांत को अधिक स्पष्ट करते हुए कहा कि पृथ्वी तथा अन्य ग्रह सूर्य के आसपास वृत्ताकार पथ के बजाय दीर्घवृत्ताकार पथ पर परिक्रमा करते हैं। पोप ग्रेगरी ने कैलेंडर में संशोधन किया, कोपरनिकस और कोलंबस ने क्रमशः ज्योतिष तथा भूगोल में योगदान किया। प्रत्येक अक्षर के लिए अलग-अलग टाइप के आविष्कार से मुद्रणकला में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ।

एक ओर साहित्य पुरातत्ववेदी प्राचीन ग्रीक और लैटिन लेखकों की नकल कर रहे थे, दूसरी ओर कलाकार, प्राचीन कला के अध्येता प्रयोगों में रुचि ले रहे थे और नई पद्धतियों का निर्माण कर कुछ सुप्रसिद्ध कलाकार जैसे लिओनार्दो दा विंची और माइकल एंजेलो नवोदित युग का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। लिओनार्दो दा विंची मूर्तिकार, वैज्ञानिक आविष्कारक, वास्तुकार, इंजीनियर, बैले (Ballet) नृत्य का आविष्कारक और प्रख्यात बहुविज्ञ था। इतालवियों ने चित्रकला में विशेष उत्कर्ष प्रदर्शित किया। यद्यपि प्रयुक्त सामग्री बहुत सुंदर नहीं थी, तथापि उन चित्रकारों की कला यथार्थता, प्रकाश, छाया और दृश्य-भूमिका की दृष्टि

से पूर्ण हैं। द विंसी और माइकेल एंजेलो के अतिरिक्त राफेल इटली के श्रेष्ठ चित्रकार हुए हैं। ड्यूयूरेस और हालवेन महान उत्कीर्णक हुए हैं। मूर्तिकला, यूनानी और रोमनी का अनुसरण कर रही थी। लारेंजों गिवर्टी चित्रशिल्पी पुनर्जागरणकालीन शिल्पकला का प्रथम महान अग्रदूत था। रोबिया अपनी चमकीली मीनाकारी के लिए विख्यात था तो एंजेलो अपने को शिल्पकला में महानतम व्यक्ति मानता था, यद्यपि वह अन्य कलाओं में भी महान था। इतालवी पुनर्जागरण कालीन ललित कलाओं में वास्तुकला के उत्थान का अंश न्यूनतम था। फिर भी मध्ययुगीन और प्राचीन रूपों के एक विशेष पुनर्जागरण शैली का आविर्भाव हुआ।

पुनर्जागरण सचमुच वर्तमान युग के आरंभ का प्रधान विषय है। साइमोंड्स (Symonds) के अनुसार यह मनुष्यों के मस्तिष्क में परिवर्तन से उत्पन्न हुआ। अब यह व्यापक रूप से मान्य है कि सामाजिक और आर्थिक मूल्यों ने व्यक्ति की जीवनधारा को मोड़ते हुए इटली और जर्मनी में एक नए और शक्तिशाली मध्यवृत्तवर्ग को जन्म दिया और इस प्रकार बौद्धिक जीवन में एक क्रांति पैदा की। पुनर्जागरण और सुधार आंदोलन के विषय में चर्चा करते हुए साइमोंड्स ने इन दोनों के बीच घनिष्ठ संबंध सिद्ध किया; किंतु लार्ड ऐक्टन ने साइमोंड्स की आलोचना करते हुए दोनों की मूल भावना के बीच अंतर की ओर संकेत किया। दोनों आंदोलन प्राचीन परंपराओं से प्रेरणा करते थे और नए सांस्कृतिक मूल्यों का निर्माण करते थे।

भारत में नवजागरण : उन्नीसवीं शताब्दी में एक ऐसी नवीन चेतना का उदय हुआ जिसने देश के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया। इसी नवचेतना को हम 'नवजागरण' अथवा 'रेनेसाँ' (Renaissance) के नाम से पुकारते हैं। 'पुनर्जागरण का अर्थ विद्या, कला, विज्ञान, साहित्य और भाषाओं के विकास से लगाया जाता है।' परन्तु भारत का नवजागरण यूरोपीय जागरण से कई बातों में भिन्न था। यूरोप में नवजागरण का कार्य कला, साहित्य और ज्ञान को पुनः जाग्रत करना था, जबकि भारत के नवजागरण ने प्राचीन भारत को फिर से जाग्रत करने का कार्य नहीं किया, अपितु यहाँ नवजागरण ने भारतीय आत्मा को उसकी गहराई तक पहुँचकर प्रभावित किया। इसी के प्रभाव से देश में धर्म व समाज-सुधार आन्दोलनों की लहरें उठने लगीं। धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने लगे तथा शिक्षा, साहित्य, कला और विज्ञान के क्षेत्र में उन्नति का स्रोत खुल गया।

भारत में नवजागरण के आरम्भ का मूल कारण ब्रिटिश उपनिवेशवाद के फलस्वरूप देश में पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का प्रचार और प्रसार था। ब्रिटिश शासन के प्रभाव ने भारतीयों में एक नयी जागृति उत्पन्न की, जिसके फलस्वरूप भारत में नवजागरण का अध्याय आरम्भ हुआ। नवजागरण में धर्म व सुधार आन्दोलनों ने भारतीयों में राष्ट्रीयता तथा स्वतन्त्रता की भावना का संचार किया, जिसके फलस्वरूप लगभग 200 वर्षों (1757-1947 ई.) के बाद देशवासी अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त हुए और स्वतन्त्र भारत का निर्माण हुआ।

5.1.2 नव्यशास्त्रवाद

नव्यशास्त्रवाद में प्राचीन अभिजात साहित्य की तरह वैशिष्ट्य तथा चिरंतनता के मूल्यों को ही साहित्य का शाश्वत मूल्य माना गया। नव्यशास्त्रवाद में कला तथा साहित्य में संतुलन, संयम, अनुशासन व्यवस्था तक तर्कसंगति के मूल्यों पर बल दिया गया। वस्तुनिष्ठता पर अधिक बल देने के कारण नव्यशास्त्रवादी चिंतन में रूप पर बल बढ़ता गया। कृति की श्रेष्ठता का आधार उसके बाह्य-गठन का सौष्ठव हो गया। भाषा, अलंकार, तथा छंद-योजना का महत्व बढ़ता गया और मौलिक सृजन की संभावना कम होती गयी।

नव्यशास्त्रवाद : प्रमुख विचारक तथा उनके मत

5.1.2.1 जॉन ड्राइडेन 1631-1700

ड्राइडेन आधुनिक अंग्रेजी आलोचना के जनक माने

जाते हैं। वे अरस्तु के समान काव्य को अनुकरणात्मक कला मानते हैं, किन्तु उनकी दृष्टि में काव्यगत अनुकरण सृजन प्रधान होता है, कोरी नक़ल नहीं। ड्राइडेन के अनुसार कविता का मुख्य उद्देश्य भावक को आनंद प्रदान करता है। ड्राइडेन ने अपनी स्वच्छ एवं प्रखर दृष्टि से इस रहस्य का निर्भ्रान्त रूप से उद्‌घाटित किया कि 'कवि' के लिए विवेक अत्यावश्यक है, किन्तु कल्पना की भी तो आवश्यकता पड़ती है। कल्पना ही वह वस्तु है, जो उसकी कविता या काव्य को, जीवन से स्पर्श कराती है तथा उसे अव्यक्त छवियाँ भी प्रदान करती है।

5.1.2.2 अलेक्जेंडर पोप 1688-1744

'ऐसे ऑन क्रिटिसिज्म' जैसी महत्वपूर्ण आलोचना कृति के लेखक एलेग्जेंडर पॉप के संपूर्ण आलोचनात्मक दृष्टिकोण में क्लासिकल लेखकों का प्रत्येक क्षेत्र में अनुकरण है। उन्होंने वाग्वैदग्ध्य, काव्यभाषा आदि पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। उनके अनुसार, वाग्विदग्धता वह सामान्य विचार है, जिसे कलात्मकता से व्यक्त किया जाता है, (अर्थात् कलात्मक सौन्दर्य से अलंकृत प्राकृतिक बिंब ही वाग्वैदग्ध्य है। यहाँ प्रकृति के सौन्दर्य से तात्पर्य जल-थल और आकाश के (अर्थात् ब्र्माण्ड के सौन्दर्य से नहीं है, वरन मानव स्वभाव के सौन्दर्य से है, क्योंकि नव्यशास्त्रवादियों केलिए प्रकृति का तात्पर्य हमेशा ही मानव स्वभाव रहा है।

सौन्दर्य संबंधी उनकी धारणा भारतीय चिंतन के पर्याप्त निकट है, जिसके अनुसार,प्रकृति की भाँती काव्य में भी अंगों का समुचित अनुक्रम एवं अनुपात हमारे मन का अनुरंजन नहीं करता। नारी के शरीर में अधर अथवा नेत्र को हम सौन्दर्य नहीं कहते, परन्तु सभी अंगों के संयुक्त और सम्पूर्ण प्रभाव का नाम ही सौन्दर्य है। पॉप के अनुसार, आलोचक का कार्य काव्य के मर्म को और अधिक आकर्षक और प्रभावी बनाकर पाठकों तक पहुँचाना है। आलोचना शक्ति तीन प्रकार के बोध पर आधारित होती है -

1. प्रकृति बोध (Idea of nature)
2. पुरातनता बोध (Idea of Antiquity)
3. विवेक बोध (Idea of reason)

5.1.2.3 बेन जॉनसन

बेन जॉनसन नव्य शास्त्रवाद के अगले प्रमुख विचारक हैं। नियमों की सार्वभौम और शाश्वत मानने के बावजूद उसके पुनर्विचार पर जोर दिया है। उन्होंने लिखा है कि, 'प्राचीनों के विशाल खजानों के साथ हमारा वर्तमान और उसका अनुभव भी है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह सत्य है कि उन्होंने हमारे लिए मार्ग प्रस्तुत किया है और उन्हें हमारा मार्गदर्शन भी करना है किन्तु मार्गदर्शन की तरह, सेनानायक की तरह नहीं। सत्य का मार्ग सबके लिए खुला है, वह किसी की व्यक्तिगत संपत्ति नहीं है। किसी माननीय लेखक को तानाशाह बना देना सर्वाधिक हास्यास्पद है जैसा कि अरस्तु केलिए लोगों ने किया है। इससे ज्ञान की क्षति ही नहीं बल्कि उसका अपमान भी होता है। यदि कोई व्यक्ति आभिजात्यों या प्राचीनों की गहन छाया में अपने अनुभवों के अस्तित्व को मिटा दे तो उसकी स्वतन्त्र सत्ता समाप्त हो जायेगी और वह हमेशा केलिए गुलाम हो जाएगा' । बेन जॉनसन ने अपने कथन के समर्थन में जेम्स स्कॉट के इस वाक्य को उद्धृत किया है कि, 'The same fire which moved the greatest Elizabeth and burned also in him'. (अर्थात्) जो आग एलिज़ाबेथ कालीन महान मनीषियों में प्रज्वलित थी वही आग उसके हृदय में भी जल रही थी। इस तरह हर एक युग की प्रतिभाएं मौलिकता और संभाव्यता से भरपूर होती है। आवश्यकता सिर्फ इस बात की है कि उनका विवेकपूर्ण तरीके से समुचित रूप में दोहन किया जाय।

5.1.2.4 बुअलो

नव्य शास्त्रवाद के प्रतिष्ठाता बुअलो इस तथ्य को स्वीकार कर चले कि साहित्य में उत्कर्ष के कुछ शाश्वत और अपरिवर्तनीय मानदंड होते हैं और प्राचीनों से नियम ग्रहण करके प्रत्येक जाति की कविता में इस प्रकार के मानदंडों की सिद्धि हो सकती है। चूंकि प्राचीन अभिजात रचनाकारों ने प्रकृति और विवेक

के आदेशों का पालन किया है इसलिए उन्हें पथ-प्रदर्शक के रूप में स्वीकार करना ही समीचीन होगा। उसने समसामयिक कवियों के समक्ष होमर को एक अनुकरणीय आदर्श के रूप में प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि, 'होमर ने, हृदय को आकर्षित करने के लिए सुन्दरता की देवी वीनस की करधनी चुराई। वस्तुतः उसकी काव्यकृतियों में सौन्दर्य का अतुल भण्डार है। वह जिस वस्तु का भी स्पर्श करता है उसे स्वर्ण बना देता है। उसके हाथ में पहूंचकर प्रत्येक वस्तु नया सौन्दर्य ग्रहण कर लेती है। वह सौन्दर्य आनंद प्राप्त करता है और क्लांत कभी नहीं करता। उसमें सर्वत्र एक आह्लादकारी ऊष्मा मिलती है। उसकी कृतियों में कहीं भी लम्बे लम्बे विषयांतर नहीं। उसके सभी छंद किसी नियम का अनुसरण किये बिना एक विशिष्ट रीति से नियोजित होते हैं। सभी परिस्थितियाँ उसके उद्देश्य की पूर्ति में सहायक प्रतीत होती हैं। प्रत्येक अक्षर घटना के सौन्दर्य को निखारता है। इस तरह बुअलो ने यूरोप के सबसे बड़े एवं आदि कवि के सर्वोत्कृष्ट काव्यात्मक गुणों की चर्चा करके उसके प्रति अपनी पीढ़ी के रचनाकारों को आस्थावान होने की प्रेरणा दी है।

5.1.2.5 जोसेफ एडीसन

जोसेफ एडीसन मूलतः निबंधकार थे। अपने निबंधों में उन्होंने पाठकों की अभिरुचि को विशेष महत्व दिया। उनके अनुसार, रचना और रचनाकार की श्रेष्ठता का निर्णायक-तत्व पाठकों की अभिरुचि है। आलोचना के क्षेत्र में यह एक नयी बात थी। अभी तक शास्त्रीय आधार पर ही रचना की श्रेष्ठता का आकलन किया जाता था। एडिसन ने रचना के प्रभाव पर ध्यान दिया। उन्होंने अपने पत्र स्पेक्टेटर के माध्यम से मध्यवर्गीय पाठकों की साहित्यिक अभिरुचि को परिष्कृत करने का प्रयत्न किया। अभिरुचि को पारिभाषिक करते हुए उसने कहा - अभिरुचि आत्मा की वह शक्ति है जो रचना के सौन्दर्य को आनंदपूर्वक ग्रहण करती है और उसकी अपूर्ताओं को नापसंद करती है। इस प्रकार एडीसन ने रचना की श्रेष्ठता के निर्णय में उसकी आस्वाद-क्षमता को महत्त्व दिया। उसकी दृष्टि में श्रेष्ठ रचना आनंददायिनी होती है। उससे अपडेश भी मिलता है लेकिन वह आनंद के साथ ल्मिलता है। यह आनंद कल्पना का आनंद है। महान असामान्य और सुन्दर वस्तुएं हमारी कल्पना को जागृत करती है। यह कल्पना दो प्रकार की होती है। पहली वह जो भव्य, महान और सुन्दर वस्तुओं के प्रत्यक्ष दर्शन से जाग्रत होती हैं और दूसरी वह जो इन वस्तुओं के मानसिक बिंबों के मूर्त रूप को देखकर जाग्रत होती हैं। वह मानसिक बिंब भिन्न-भिन्न कलाओं में भिन्न-भिन्न माध्यमों से मूर्त होते हैं। काव्य कला में शब्द ही मूर्ती विधान का माध्यम है। सटीक शब्दों के माध्यम से कवि जब भव्य, सुन्दर, महान और असामान्य को और अधिक पूर्ण बनाकर मूर्त कर देता है, तब उसका आनंद कुछ और हो जाता है। यह कल्पना पर आधृत कला का आनंद है। इस प्रकार एडीसन ने 'कल्पना के आनंद' का सिद्धांत प्रस्तुत करके अपनी मौलिक विवेचन-क्षमता का परिचय दिया है। उन्हें भले ही लॉक के दार्शनिक चिंतन से प्रेरणा भले मिली हो, किन्तु यह स्वीकार करना होगा कि कला के आनंद को कल्पना-प्रक्रिया से जोड़ने में उन्होंने अपनी मौलिक विचार-शक्ति का परिचय दिया है।

5.1.3 फ्रांस की राज्य क्रान्ति

1789 की फ्रांसीसी क्रांति यूरोप के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मील पत्थर है। यह शासक की निरंकुशता के खिलाफ लोगों का पहला महान विद्रोह था। इसने स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के विचारों को उत्पन्न किया जिसने फ्रांस की सीमाओं को पार किया और पूरे यूरोप को प्रभावित किया।

फ्रांस के इतिहास की राजनैतिक और सामाजिक उथल-पुथल एवं आमूल परिवर्तन की लहर जो 1789 से 1799 तक चली। बाद में, नेपोलियन बोनापार्ट ने फ्रांसीसी साम्राज्य के विस्तार द्वारा कुछ अंश तक इस क्रान्ति को आगे बढ़ाया। क्रान्ति के फलस्वरूप राजा को गद्दी से हटा दिया गया, एक गणतंत्र की स्थापना हुई, खूनी संघर्षों का दौर चला,

और अन्ततः नेपोलियन की तानाशाही स्थापित हुई जिससे इस क्रान्ति के अनेकों मूल्यों का पश्चिमी यूरोप में तथा उसके बाहर प्रसार हुआ। इस क्रान्ति ने आधुनिक इतिहास की दिशा बदल दी। इससे विश्व भर में पूर्ण राजतन्त्र का ह्रास होना शुरू हुआ, नये गणतन्त्र एवं उदार प्रजातन्त्र बने।

परिवर्तनों ने पाश्चात्य सभ्यता को हिला दिया उसमें फ्रांस की राज्यक्रान्ति नाटकीय और जटिल साबित हुई। इस क्रांति ने केवल फ्रांस को ही नहीं अपितु समस्त यूरोप के जन-जीवन को अस्त-व्यस्त कर दिया। फ्रांसीसी क्रांति को पूरे विश्व के इतिहास में मील का पत्थर कहा जाता है। इस क्रान्ति ने अन्य यूरोपीय देशों में भी स्वतन्त्रता की ललक कायम की और अन्य देश भी राजशाही से मुक्ति के लिए संघर्ष करने लगे। इसने यूरोपीय राष्ट्रों सहित एशियाई देशों में राजशाही और निरंकुशता के खिलाफ़ वातावरण तैयार किया। जिसके कारण ही क्रांति में परिवर्तन हुआ। क्रांति ने न केवल लोगों के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन को बदल दिया, बल्कि विश्व इतिहास के पूरे पाठ्यक्रम को भी प्रभावित किया।

5.1.4 फ्रांसीसी क्रांति के कारण

5.1.4.1 राजनीतिक

18 वीं शताब्दी में, फ्रांस एक पूर्ण राजशाही के अधिकार के तहत एक सामंती समाज था। वर्साइल के शाही महल में बोरबॉन सम्राट शानदार तरीके से रहते थे। फ्रांस की वित्त व्यवस्था विकट स्थिति में थी। फ्रांस में शामिल कई युद्धों के बाद खजाना व्यावहारिक रूप से खाली था। राजा लुई सोलहवें राजनीतिक और वित्तीय संकटों के माध्यम से फ्रांस का मार्गदर्शन करने में असमर्थ थे। रानी मैरी एंटोनेट, एक ऑस्ट्रियाई राजकुमारी, को जनता के पैसे से दूर करने के लिए दोषी ठहराया गया था। प्रशासन भ्रष्ट और निरंकुश था।

5.1.4.2 सामाजिक-आर्थिक

फ्रांस की सामाजिक परिस्थितियाँ उसके राजनीतिक संगठन की तरह ही संकटपूर्ण थीं। फ्रांसीसी समाज तीन वर्गों या सम्पदाओं में विभाजित था। पादरी और अभिजात वर्ग के विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग ने क्रमशः पहली संपत्ति और दूसरी संपत्ति बनाई। इन दो सम्पदाओं ने सरकार के अधीन कई विशेषाधिकार प्राप्त किए और उन्हें कराधान का बोझ नहीं उठाना पड़ा। बड़प्पन ने फ्रांसीसी प्रशासन में सभी महत्वपूर्ण पदों पर एकाधिकार कर लिया और विलासिता का जीवन व्यतीत किया। तीसरी संपत्ति में आम लोग शामिल थे। इसमें मध्यम वर्ग के लोग, किसान, कारीगर, श्रमिक और खेतिहर मजदूर शामिल थे। यहां तक कि अमीर मध्यम वर्ग, व्यापारियों, कारखाने के मालिकों आदि से मिलकर भी इस श्रेणी में आते हैं। कराधान का पूरा बोझ तीसरी संपत्ति पर पड़ा। लेकिन इन करदाताओं के पास कोई राजनीतिक अधिकार नहीं था।

5.1.4.3 दार्शनिकों का प्रभाव

वोल्टेयर, रूसो और मोंटेस्क्यू जैसे फ्रांसीसी दार्शनिकों ने स्वतंत्रता और समानता के क्रांतिकारी विचारों वाले लोगों को प्रेरित किया। मोंटेस्क्यू ने राजाओं के दैवीय अधिकार के सिद्धांत को खारिज कर दिया और शक्तियों को अलग करने का आग्रह किया। रूसो ने अपनी पुस्तक 'सोशल कॉन्ट्रैक्ट' में घोषणा की कि संप्रभु सत्ता लोकप्रिय इच्छाशक्ति में है।

Critical Overview / अवलोकन

स्वच्छंदतावादी समीक्षा के विभिन्न पहलुओं के अंतर्गत स्वच्छंदतावादी समीक्षा संबंधी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की जानकारी हासिल करते हैं। प्राचीन ज्ञान के प्रति श्रद्धा के साथ-साथ नवीन जिज्ञासा उत्पन्न हुई। यही जिज्ञासा पुनर्जागरण (Renaissance in Europe) की आत्मा थी।

- 14वीं और 17वीं सदी के बीच यूरोप में जो धार्मिक, साहित्यिक, औद्योगिक बदलाव हुआ जिससे मानव की बौद्धिक चेतना का विकास हुआ, मनुष्य बातों पर विश्वास न करके विज्ञान, अनुसंधानों और प्रयोगों की

बात करने लगा। व्यापक स्तर पर हो रहे इन परिवर्तनों को (अर्थात् सामंतवाद का पतन, विज्ञान का आरंभ, भोगोलिक खोजें, नगरों का उत्थान, वाणिज्यवाद और पूंजीवाद का आरंभ के कारण मानव का बौद्धिक विकास हुआ इसी काल को नवजागरण कहा जाता है।

- तेरहवीं तथा चौदहवीं शताब्दी में विद्वानों ने प्राचीन साहित्य को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। इनमें पेट्रार्क (Petrarch), दांते (Dante Alighieri), और बेकन के नाम उल्लेखनीय हैं।
- नव्यशास्त्रवाद में प्राचीन अभिजात साहित्य की तरह वैशिष्ट्य तथा चिरंतनता के मूल्यों को ही साहित्य का शाश्वत मूल्य माना गया।।
- नव्यशास्त्रवाद के प्रमुख विचारक जॉन ड्राइडेन, बेन जॉनसन, एलेग्जेंडर पॉप, बुअलो, जोसेफ एडीसन आदि का मत व्यक्त हो जाता है।
- फ्रांस की राज्यक्रांति की शुरुआत और प्रभाव के साथ साथ फ्रांस की क्रान्ति के कारण - राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, दार्शनिक परिस्थितियों की जानकारी से क्रान्ति के तत्कालीन कारण व्यक्त हो जाते हैं।

Recap / पुनरावृत्ति

- नवजागरण का प्रभाव तत्कालीन समाज में
- नवजागरण का उदय भारत में
- विभिन्न क्षेत्रों में नवजागरण
- आलोचना के क्षेत्र में नव्यशास्त्रवाद
- नव्यशास्त्रवाद
- नव्यशास्त्रवाद के प्रमुख विचारक और उनके मत
- फ्रांस की क्रान्ति का प्रभाव
- इटालवी पुनर्जागरण
- अमरीकी क्रान्ति का प्रभाव
- क्रान्ति का तत्काल कारण
- क्रान्ति का पाठ्यक्रम
- स्वच्छंदतावादी समीक्षा संबंधी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. नवजागरण का मतलब क्या है?
2. तेरहवीं तथा चौदहवीं शताब्दी में किन किन विद्वानों ने प्राचीन साहित्य को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया है?
3. नवजागरण का उदय भारत में कब हुआ?
4. 'द प्रिंस' किसकी पुस्तक है?
5. नव्यशास्त्रवाद संबंधी जॉन ड्राइडेन का मत क्या है?
6. 'The same fire which moved the greatest Elizabeth and burned also in him'- यह किसका मत है?
7. फ्रांसीसी क्रांति किस वर्ष में हुई

Answers / उत्तर

1. 'फिर से जागना' ।
2. पेट्रार्क (Petrarch), दांते (Dante Alighieri), और बेकन ।
3. उन्नीसवीं शताब्दी में ।
4. मौकियावेली ।
5. ड्राइडेन के अनुसार कविता का मुख्य उद्देश्य भावक को आनंद प्रदान करता है ।
6. जेम्स स्कॉट का मत है ।
7. 18 वीं शताब्दी में ।

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. यूरोपीय नवजागरण ।
2. नव्यशास्त्रवाद और उसके प्रचारक ।
3. स्वच्छंदतावादी समीक्षा संबंधी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विचार कीजिए ।
4. समाज और साहित्य में नवजागरण का प्रभाव कैसे हुआ? समझायिए ।
5. नव्यशास्त्रवाद और उसके प्रमुख प्रचारकों के मत का विश्लेषण कीजिए ।
6. फ्रांस की राजनीतिक क्रान्ति के बारे में आलोचना कीजिए ।

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

इकाई 2 वर्ड्सवर्थ के काव्य सिद्धांत

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- वर्ड्सवर्थ और उनके काव्य सिद्धांत के बारे में समझता है
- वर्ड्सवर्थ के कल्पना संबंधी विचारों को समझता है
- वर्ड्सवर्थ की काव्य भाषा सम्बन्धी विचार से परिचय प्राप्त कर सकता है
- काव्य में प्रकृति की अभिव्यक्ति एवं दर्शन से परिचय प्राप्त कर सकता है

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

रूमानी चेतना की पृष्ठभूमिः ड्राइडन, जिसने नव्यशास्त्रवादी सिद्धांतों को स्वीकार करते हुए भी कवि-कौशल के महत्व को स्वीकार किया था। ऐसा एक रचनाकार था वर्ड्सवर्थ। इससे यह संकेत मिलता है कि रचनाकार जब आलोचना के क्षेत्र में प्रवेश करता है और यदि उसका परिवेश-बोध तीखा और सार्थक है तो वह सर्जाना एवं आलोचना दोनों क्षेत्रों में मौलिक धाराओं या प्रवृत्तियों का सूत्रपात करता है। इस में संदेह नहीं है कि वर्ड्सवर्थ का परिवेश-बोध मौलिक रूप से नवीन एवं मूल्यवाना था और इसलिए उसकी कविता तथा आलोचना ऐसी भूमिका बनाते हैं जो प्राचीन से पूर्ण विच्छेद की सूचक होने के साथ साथ सर्वथा नवीन तथा मौलिक की स्थापना करते हैं। यह नवीन संचरण युग का अनुरोध था जिसे वर्ड्सवर्थ ने पहचाना, इसलिए स्वच्छंदतावाद की यह लहर शीघ्र ही सारे इंग्लैंड में फ़ैल गयी।

Keywords / मुख्य बिन्दु

वर्ड्सवर्थ के काव्य गुण संबंधी विचार - भावना की सहजता, कवि का व्यक्तित्व, प्रकृति संबंधी विचार, कल्पाना संबंधी विचार, भाषा संबंधी विचार, काव्य प्रयोजन, वर्ड्सवर्थ के देन।

Discussion / चर्चा

वर्ड्सवर्थ और कॉलेरिड्ज के संयुक्त प्रयास से 1798 में Lyrical Ballads का प्रकाशन हुआ। इसमें साहित्यशास्त्र संबंधी गंभीर विवेचन मिलता है। सन्1770 के बाद से अंग्रेजी साहित्य में स्वच्छंदतावादी विचारों का जो बीजांकुर हुआ था उसे समृद्ध करने में उनकी देन अत्यधिक महत्वपूर्ण मानी जाती है। नव्यशास्त्रवाद का विरोध करते हुए काव्य और साहित्य विवेचन के क्षेत्र में उनका प्रवेश हुआ। प्रसिद्ध नव्यशास्त्रवादी दांते की मान्यताओं के खंडन के रूप में वर्ड्सवर्थ की साहित्यिक मान्यताओं का विशेष महत्व रहता है।

5.2.1 विलियम वर्ड्सवर्थ (1770- 1850)

विलियम वर्ड्सवर्थ 19वीं शताब्दी के प्रारंभ के आचार्य हैं। काव्यालोचना संबंधी उनके विचार उन्हीं के काव्य संग्रह Lyrical Ballads में व्यक्त हुए हैं। पूर्व पाश्चात्य काव्यशास्त्र में नव्यशास्त्रवाद Neo-classicism का बोलबाला था। दांते उसके प्रमुख आचार्य थे। Neo-classicism में आगे चलकर कृत्रिम आडंबरपूर्ण और रूढ़िगत भाषा शैली का साम्राज्य हो गया। इससे मुक्ति पाने केलिए कृत्रिम कलात्मकता को समाप्त करने केलिए वर्ड्सवर्थ ने अपनी काव्य विषयक मान्यता प्रस्तुत की जो स्वच्छंदतावाद के नाम से जानी जाती है। वर्ड्सवर्थ का विवेचन स्वच्छंदतावाद का घोषणापत्र समझा जाता है।

शब्द का अर्थ तथा कवि और सामान्य व्यक्ति में दिखाई पड़नेवाले अंतर का प्रतिपादन भी उन्होंने किया है। उनके अनुसार कवि एक ऐसा व्यक्ति है जो अपनी अधिक संवेदना-शक्ति और कल्पना शीलता से बाह्य उत्तेजना के अभाव में भी विचार कर सकता है और अनुभव कर सकता है। उसके अनुभव और विचार सामान्य व्यक्ति के विचार और अनुभव से अधिक वास्तविक होते हैं। कवि अपनी अनुभूतियों को कला और कल्पना के माध्यम से जनसाधारण की भाषा में व्यक्त कर देता है।

उनके काव्य विवेचन की सर्वाधिक विशेषता यह है कि उन्होंने सर्वप्रथम काव्य और काव्य-सृजन की प्रक्रिया को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया। काव्य वृद्धि का नहीं, मानव-मन का विषय है - यही उनका विचार रहा था। कविता मन का उन्मुक्त व्यापार है। उनका मत रहा था कि कवि कवियों केलिए नहीं लिखते, जनसाधारण केलिए लिखते हैं इसलिए कविताओं में जनसाधारण की भाषा का रहना भी अनिवार्य है।

5.2.1.1 काव्य गुण : भावना की सहजता

सत्यं, शिवं, सुन्दरम के आधार पर ही वर्ड्सवर्थ ने अपनी काव्य विषयक मान्यताएँ प्रस्तुत की हैं। उन्होंने काव्य और कविता का विस्तार से विवेचन किया है। उसकी दृष्टि में काव्य विस्तार अवधारणा है। कविता काव्य के अन्दर आनेवाली एक छोटी सी विधा है। कविता और काव्य दोनों एक नहीं, अलग है। उन्होंने काव्य-रचना में सौंदर्यवादी दृष्टिकोण को अपनाया। उनकी दृष्टि में काव्य और दर्शन दोनों अविच्छिन्न है। उन्होंने काव्य को भावों का सहज उच्छलन कहा है। काव्य को परिभाषित करते हुए उन्होंने कहा - 'All good poetry is the spontaneous overflow of powerful feeling, it takes its origin from emotion recollected in tranquility"। (अर्थात 'कविता मानव मन की बलवती भावनाओं का सहज उच्छलन है तथा उसका उद्भव शांत अवस्था में भाव के चिंतन से होता है'। इस परिभाषा में उन्होंने दो बातों पर बल दिया है - भावना और सहजता। जब भावनाएं सहज रूप से अभिव्यक्त होती हैं तभी कविता निसृत होती है।

5.2.2 कवि का व्यक्तित्व

कवि में ऐसी क्या विशेषता होती है जिसके आधार पर वह रचना करने में समर्थ होता है। वर्ड्सवर्थ ने कवि के मानसिक गुणों का उल्लेख किया है जो कि सामान्य व्यक्ति के गुणों के सामान ही होते हैं। कवि में उत्साह आदि गुण सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा अधिक पाए जाते हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कवि सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा अधिक संवेदनशील व्यक्ति होता है। साथ ही साथ वर्ड्सवर्थ ने कवि की एक मनोवृत्ति का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार वह परोक्ष वस्तुओं से सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा अधिक प्रभावित होता है, तथा वह उन प्रभावों को व्यक्त करने की शक्ति को अर्जित करता है। सामान्य व्यक्ति भी परोक्ष वस्तुओं से प्रभावित तो होता है, मगर कवि पर यह प्रभाव अधिक गंभीर होता है। और ख़ास बात यह है कि कवि ने अभिव्यक्ति की क्षमता 'अर्जित' कर ली है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कवि सामान्य व्यक्ति से अधिक संवेदनशील होता है, मगर सामान्य व्यक्ति और कवि में अंतर का आधार है कवि की अभिव्यक्ति की शक्ति, जिसे वर्ड्सवर्थ ने अर्जित माना है और जिसमें अभ्यास का महत्वपूर्ण स्थान है।

यहाँ स्पष्ट है कि कवि के बारे में जो प्राचीन धारणा थी कि कवि दैवी आवेश से प्रभावित होकर लिखता है या उसमें कुछ लोकोत्तर शक्ति होती है, वर्ड्सवर्थ ने उसे स्वीकार किया है तथा कवि को जनसामान्य के निकट का ही एक व्यक्ति माना है तथा अभिव्यक्ति की शक्ति भी एक अर्जित शक्ति ही है। वर्ड्सवर्थ के मतानुसार कवि अपनी बात सामान्य व्यक्ति से कहता है। परन्तु कवि कवियों केलिए तो लिखते नहीं, जनसाधारण केलिए लिखते हैं। यह भी अभिजात्यवादी दृष्टि से भिन्न दृष्टि है। आम जनता में शिक्षा के प्रचार-प्रसार से यह आवश्यक हो गया था कि काव्य को केवल उच्च वर्ग तक सीमित नहीं किया जा सकता और जनसाधारण केलिए लिखने केलिए कुछ अन्य शर्तें भी है जिन्हें पूरा करना आवश्यक हैं।

5.2.3 प्रकृति

काव्य रचना में प्रकृति के महत्व को वर्ड्सवर्थ ने व्यक्त किया है। जब प्रकृति का वातावरण सुन्दर होता तो भावनाओं में विशदता आएगी। अनुभूति में तीव्रता होगी और ऐसे क्षणों में प्रकृति में आध्यात्मिक तत्व के दर्शन होते हैं। ऐसे क्षणों को उसने जीवन के चरम क्षण कहा जाता है। ऐसे समय में जो कविता लिखी जाती है वह पाठकों को अभिभूत कर देती हैं। उच्च काव्य केलिए प्रकृति वातावरण तैयार करती है। वह सौन्दर्य को खोज खोजकर एक स्थान पर एकत्रित करने का विरोधी था।

5.2.4 कल्पना -संबंधी विचार

वर्ड्सवर्थ के अनुसार कवि के हृदय में उन्होंने जो कुछ देखा है, अनुभव किया है उसका एक झलक सहज रूप से विद्यमान रहता है। अनुकूल परिस्थिति आने पर कवि हृदय में सुप्त रहनेवाली ये घटनाएं सृजन का विषय बन जाती है। इस अवस्था में कवि की अनुभूति की प्रधानता है। अनुभूति के माध्यम से ही वह काव्य- रचना कर सकती है। लेकिन कवि की अनुभूति में पूर्णता रहती है। उस अपूर्णता को पूर्ण बनाने केलिए कवि को कल्पना-शक्ति की आवश्यकता होती है। कल्पना के माध्यम से वह अपूर्णता को पूर्ण बनाने की कोशिश करता है। कवि अपनी ओर से भी कुछ जोड़ता है और अंतर्दृष्टि से भी काम लेता है। इस प्रकार वर्ड्सवर्थ ने अनुभूति और कल्पना को महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

5.2.5 काव्यभाषा

वर्ड्सवर्थ के मतानुसार साहित्य का लक्ष्य समाज नहीं, व्यक्ति है। इसलिए समाज के जनसाधारण को भी समझनेवाली भाषा में साहित्य-सृजन करना उनका लक्ष्य था। नव्यशास्त्रवादियों ने आडंबरपूर्ण शैली एवं कृत्रिमता काव्य में भर दी थी। उसका विरोध उन्होंने खुले तौर से किया। जन सामान्य की अभिव्यक्ति यदि भरकम भारी शब्दों से होगी तो वह साधारण लोगों के विचारों को स्पष्ट रूप से व्यंजित नहीं कर सकेंगे और सहजता का तत्व लुप्त हो जाएगा। इसलिए सबकी समझ में आनेवाली लोकभाषा का उन्होंने प्रयोग किया। वे गद्य और पद्य की भाषा में विशेष अंतर नहीं मानते थे।

कवि जन साधारण केलिए लिख रहा है तो संप्रेषण कविता का अनिवार्य मूल्य है। वर्ड्सवर्थ जनभाषा का समर्थन करते हुए परंपरा से चली आती काव्य भाषा की कृत्रिमता और दुरूहता का विरोध करता है। नव्यशास्त्रवाद के प्रभाव के कारण पुराने रूढ़ और दुरूह प्रयोगों का महत्त्व उस युग में निर्विवाद रूप से प्रतिष्ठित था। जब काव्य की नयी चेतना का उदय हुआ, आलोचना की नयी दृष्टि का उदय हुआ तो यह स्वाभाविक था कि काव्य के सभी पक्षों के बारे में नए सिरे से विचार हो। दरअसल ये तीनों बातें बदलती हुई चेतना के अभिन्न पक्ष है। इसलिए वर्ड्सवर्थ के मत का महत्त्व स्पष्ट होता है।

5.2.6 प्रयोजन

वर्ड्सवर्थ के अनुसार काव्य की उपयोगिता यही है कि वह पाठकों के हृदय पर सद्भाव डाले। उनका ज्ञानवर्धन करे और उन्हें आनंद प्रदान करे। सच्चा कवि अपने काव्य द्वारा पाठकों की भावना का परिष्कार करता है। उनकी भावनाओं को संतुलित,

शुद्ध और प्रकृति के अनुरूप बनाता है। उनके अनुसार काव्य का प्रयोजन है नैतिकता, ज्ञानवर्धन और आनंद प्रदान करना।

5.2.7 देन

1. वर्ड्सवर्थ ने अपने समय में प्रचलित सभी सिद्धांतों का खंडन किया, विशेषकर नव्यशास्त्रियों की मान्यताओं का अपने सिद्धांत स्वच्छंदतावाद पर बल दिया ; किन्तु काव्य में उन्होंने इस सिद्धांत का प्रयोग कभी भी नहीं किया है। सृजन के क्षेत्र में वे बड़े क्रांतिकारी साहित्यकार है।
2. उसका प्रमुख उद्देश्य था कृत्रिम और आडंबरपूर्ण भाषा तथा शैली को त्यागना और जनसाधारण की भाषा का स्वीकार करना।
3. काव्य में भाव-तत्व की प्रतिष्ठा की।
4. कल्पना को शक्ति और एकता के रूप में देखा।
5. काव्य में सत्यं, शिवं, सुन्दरम पर बल दिया।
6. काव्य को शांतिपूर्ण चिंतन क्षणों का फल कहकर काव्य निर्माण प्रक्रिया के आधार पर काव्य का विवेचन किया।

Critical Overview / अवलोकन

वर्ड्सवर्थ अग्रेज़ी साहित्य के एक महान रोमांटिक कवि थे, जिन्होंने काव्य की परंपरागत धाराओं के विरुद्ध एक नई दिशा दी। उन्होंने काव्य को समाज के बजाय व्यक्ति की भावनाओं और अनुभवों से जोडने का कार्य किया। उनका मानना था कि कविता की भाषा सरल और जनसाधारण के समझ में आनेवाली होनी चाहिए ताकि काव्य का संप्रेषण प्रभावी हो सके। वर्ड्सवर्थ ने नव्यशास्त्रवादियों की कृत्रिम और आडम्बरपूर्ण काव्य - शैली का विरोध करते हुए सहजता, सादगी और स्वाभाविकता को मान्यता थी। उनके अनुसार, सच्चा काव्य वही है जो पाठको के ह्रद्य में सद्भाव पैदा करे, ज्ञानवर्धन करे और आनंद प्रदान करे। वे कल्पना को काव्य की शक्ति और एकता का स्रोत मानते थे, जो मानविय भावनाओं को प्रकृति से जोडती है। इस प्रकार वर्ड्सवर्थ ने काव्य क्षेत्र में गहन विचार और क्रांतिकारी परिवर्तन प्रस्तूत कर काव्य की नई चेतना का आरंभ किया।

Recap / पुनरावृत्ति

- वर्ड्सवर्थ का काव्य सिद्धांत और उसका महत्व
- वर्ड्सवर्थ कल्पना संबंधी विचार
- रूमानी चेतना की पृष्ठभूमि
- काव्य गुण : भावना की सहजता
- कवि का व्यक्तित्व
- प्रकृति संबंधी विचार
- कल्पना संबंधी विचार
- काव्यभाषा संबंधी विचार

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. Lyrical Ballads किसकी रचना है?
2. नव्यशास्त्रवाद के प्रमुख आचार्य कौन हैं?
3. All good poetry is the spontaneous overflow of powerful feeling; it takes its origin from emotion recollected in tranquility - यह किसकी उक्ति है?
4. वर्ड्सवर्थ ने अपनी काव्य विषयक मान्यताएँ कैसे प्रस्तुत की हैं।
5. वर्ड्सवर्थ के मतानुसार साहित्य का लक्ष्य क्या है?

Answers / उत्तर

1. विलियम वर्ड्सवर्थ
2. विलियम वर्ड्सवर्थ
3. विलियम वर्ड्सवर्थ
4. सत्यं, शिवं, सुन्दरम के आधार पर।
5. समाज नहीं, व्यक्ति है।

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. विलियम वर्ड्सवर्थ के काव्य सिद्धांत।
2. विलियम वर्ड्सवर्थ के काव्यभाषा संबंधी विचार।
3. वर्ड्सवर्थ के काव्य संबंधी विचार स्पष्ट कीजिए।
4. वर्ड्सवर्थ के कल्पना संबंधी विचार व्यक्त कीजिए।
5. विलियम वर्ड्सवर्थ का परिचय दीजिए।

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

इकाई 3 कॉलेरिज

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- कॉलेरिज के काव्य संबंधी विचार समझता हैं।
- कल्पना संबंधी विचार समझता हैं।
- कल्पना और रम्यकल्पना के बारे जानकारी प्राप्त करता है।
- कॉलरिज की प्रमुख रचनाओं के बारे में अवगत होता है।

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

कॉलेरिज वर्ड्सवर्थ के सामान एक महत्वपूर्ण कवि होने के साथ साथ एक महत्वपूर्ण रूमानी आलोचक भी है। वर्ड्सवर्थ और कॉलेरिड्ज के संयुक्त प्रयास से 1798 में Lyrical Ballads का प्रकाशन हुआ। इसमें साहित्यशास्त्र संबंधी गंभीर विवेचन मिलता है। सन 1770 के बाद से अंग्रेजी साहित्य में स्वच्छंदतावादी विचारों का जो बीजांकुर हुआ था उसे समृद्ध करने में उनकी देन अत्यधिक महत्वपूर्ण मानी जाती है। नव्यशास्त्रवाद का विरोध करते हुए काव्य और साहित्य विवेचन के क्षेत्र में उनका प्रवेश हुआ। प्रसिद्ध नव्यशास्त्रवादी दांते की मान्यताओं के खंडन के रूप में उनकी साहित्यिक मान्यताओं का विशेष महत्व रहता है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

कॉलेरिज के काव्य संबंधी विचार - उत्कृष्ट काव्य के गुण, काव्य में तटस्थता, कविता में दर्शन, कल्पना सिद्धांत

Discussion / चर्चा

एक अंग्रेज़ कवि, दार्शनिक व रोमांस लेखक थे जिन्होंने अपने मित्र विलियम वर्ड्सवर्थ के साथ मिलकर इंग्लैण्ड में रोमांस आन्दोलन की शुरूआत की और 'लेक पोएट्स' की स्थापना की थी। वे अपनी कविताओं द राइम ऑफ़ द एन्शियंट मेरिनर और कुबला खान के लिए जाने जाते है।

5.3.1 सैम्युअल टेलर कॉलरिज

कॉलेरिज अंग्रेजी कविता की स्वच्छंत्तावादी धारा के प्रमुख कवियों में से थे। आलोचना के क्षेत्र में कॉलेरिज का एक योगदान उनका कल्पना सिधांत है। कल्पना को दर्शन तथा काव्य के साथ पहले से जोड़ा जाता रहा है, परन्तु कॉलरिज ने इसका विस्तार से

विवेचन किया। इनका 'कल्पना सिद्धान्त' प्रसिद्ध है। कॉलरिज के अनुसार, 'कविता रचना का वह प्रकार है जो वैज्ञानिक कृतियों से इस अर्थ में भिन्न है कि उसका तात्कालिक प्रयोजन आनन्द है, सत्य नहीं।'

कॉलरिज की प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं-

- बायोग्राफिआ लिटरेरिया (Biographia Literaria) - इसी में कल्पना सिद्धान्त का विवेचन है।
- एड्स टू रिफ्लेक्शन (Aids to Reflection)
- द फ्रेंड (The Friend (1969))
- लिरिकल बैलेड्स (Lyrical Ballads)
- चर्च एंड स्टेट (Church and State)
- कन्फेशन्स ऑफ एन इन्क्वायरिंग स्पिरिट (Confessions of an Inquiring Spirit)
- द राइम ऑफ़ द एन्शियंट मेरिनर (The Rime of Ancient Mariner)
- कुबला खान (Kubla Khan)

5.3.2 उत्कृष्ट काव्य के गुण

कॉलेरिज के मत में उत्कृष्ट काव्य का पहला गुण है, छंद या आदर्श लयात्मकता। कॉलेरिज की मान्यता है कि बिना छंद या, संगीतात्मक अभिव्यक्ति के, महान काव्य की रचना नहीं हो सकती। साथ ही वह यह भी मानता है कि छंद काव्य का अन्तरंग गुण है जो काव्य के सभी तत्वों को संयोजित करता हुआ अन्विति की प्रतिष्ठा करता है।

5.3.3 कविता और दर्शन

कविता सचमुच एक दिव्य शक्ति है। वह ज्ञान का केंद्र बिंदु भी है, परिधि भी, उसमें समस्त विज्ञान का अंतर्भाव है, वे सभी उसी के अधीन होने चाहिए। कवित्व शक्ति के कार्य दो प्रकार के हैं - एक में वह ज्ञान, शक्ति और आनंद के नए उपादानों की सर्जना करती है, दूसरे में वह इन सबको एक विशेष लय के अनुकूल अभिव्यक्त और विन्यस्त करने की इच्छा तथा शिव एवं सुंदर की प्रेरणा मन में जगाती है। इस प्रकार संपूर्ण रूमानी आलोचना जो भाव, आवेग या प्रयोजन आदि को महत्व देती है तथा आनंद को काव्य की प्रधान उपलब्धि मानती है, ज्ञान एवं पांडित्य को भी स्वीकार करती है। कॉलेरिज की इस मान्यता का आधार भी उसका कल्पना संबंधी मत है, जिसके अनुसार कल्पना एक ऐसी शक्ति है, जो अनिवार्य रूप से भाव और विचार में - जो प्रायः विरोधी माने जाते हैं - सामंजस्य स्थापित करती है, क्योंकि आध्यात्मिक शक्ति होने के नाते कल्पना आत्मा की मूलभूत एकता को सहसा ग्रहण कर लेती है, उसे अभिव्यक्त करने में समर्थ होती है।

5.3.4 कल्पना सिद्धांत

इन्द्रियों के सहारे हम जो भी अनुभव करते हैं, वह सबका सब अनुभव इसी ज्ञान का मूल हेतु है। प्राप्त ज्ञान को व्यवस्था देने का कार्य भी यही कल्पना करती है। यह प्राथमिक कल्पना उन सभी बिम्बों को एक-एक करके हमारे अस्तित्व-बोध को ज्ञान में बदल देती है। इस प्रकार प्राथमिक कल्पना एक महान सिद्धांत है जो व्यवस्थापिका वृत्ति का परिचायक है। सरल शब्दों में, यह प्राथमिक कल्पना हमारे अव्यवस्थित इन्द्रिय बोधों में एक संश्लिष्टता या व्यवस्था लाती है। अव्यवस्था में व्यवस्था का कार्य इसी कल्पना का प्रमुख कार्य है।

कोलरिज की स्थापनाओं में कल्पना का विशेष महत्व है। कोलरिज से पूर्व कल्पना के विषय में अनेक तरह की असंगत धारणाएँ प्रचलित थीं। इनमें एक प्रमुख धारणा यह कि कल्पना प्रकृति का वरदान या दिव्य रहस्यमयी शक्ति है, इसलिए इसकी व्याख्या तर्क के आधार पर नहीं की जा सकती। लेकिन कोलरिज ने कल्पना पर तर्कसंगत ढंग से विचार किया और कहा यह बेशक दिव्य शक्ति हो सकती है, किंतु रहस्यमय नहीं उनका काव्य-सर्जन का मूलाधार ही कल्पना है। 'फैंसी' शब्द ग्रीक शब्द के 'फांतासिया और 'इमैजिनेशन' शब्द लैटिन के इमाजिनातियो से बना है। फैंसी शब्द हिन्दी में रम्यकल्पना (ललित कल्पना) तथा इमैजिनेशन के लिए कल्पना शब्द आया है। कोलरिज ने कल्पना के दो भेद माने हैं-

1) मुख्य (primary) 2) गौण (Secondary)। मुख्य कल्पना वह शक्ति है, जिसके द्वारा इन्द्रियगोचर पदार्थो का बोध होता है। हमारी आंखों के सामने न जाने कितनी वस्तुएं लगातार आती रहती हैं- मकान, सड़क, पेड़, नदी, पक्षी आदि। इन सब अव्यवस्थित बिखरे बिम्बों को व्यवस्थित कर ज्ञान कराती है। यह एक जीवित एवं महत्वपूर्ण शक्ति है, जिससे हमें मानवीय पदार्थो का बोध होता है। यदि वह वैसा न करे तो लौकिक कार्यकलाप रूप्प पड़ जाये। यह वास्तव में एक सहज एवं स्वाभाविक मानवीय गुण है। गौण कल्पना विशिष्ट लोगों में पायी जाती है। यह एक आत्मिक उर्जा है जिसमें मनःशक्ति, ज्ञान शक्ति, विचार शक्ति, मनोवेग आदि समाहित रहते है। सजीवता एवं क्रियाशीलता में गौण कल्पना मुख्य कल्पना के समान ही होती है; वह भी ऐंद्रिय संवेदना को दूर कर व्यवस्था लाती है, किन्तु दोनों में अन्तर है, जहाँ मुख्य कल्पना का काम सहज भाव से, अनजाने ढंग से चलता रहता है, वहां गौण कल्पना का काम ज्ञानपूर्वक, इच्छापूर्वक होता है। जैसे कोई चित्रकार चित्र तैयार करता है तो उसे कल्पना का सहारा लेना पड़ता है।तब गौण कल्पना बाह्य जगत से प्राप्त ऐंद्रिय संवेदनों को नये रूप में ढालकर उन्हें नयी आकृति प्रदान करती है और रमणीयता का आवरण चढाकर उसे मोहक बना देती है। अतः मुख्य कल्पना और गौण कल्पना कुछ अन्तर इस प्रकार है- 1) मुख्य कल्पना के अस्तित्व पर ही गौण कल्पना आश्रित है। कोलरिज ने गौण कल्पना को मुख्य कल्पना का प्रतिध्वनि कहा है। 2) मुख्य कल्पना अचेतन (अनैच्छिक) रूप में जबकि गौण कल्पना चेतन (ऐच्छिक) रूप में होती है। तात्पर्य मुख्य कल्पना हमारे चाहे और बिना जाने काम करती रहती है जबकि गौण कल्पना हमारे चाहने पर ही काम करती है। 3) मुख्य कल्पना केवल निर्माण (संघट न) का काम करती है। जबकि गौण कल्पना विनाश (विघटन) का कार्य करती है।

5.3.5 विशिष्ट कल्पना

यह प्राथमिक कल्पना का सजग मानवीय प्रयोग है। भाव यह है कि जब हम अपनी इच्छा से प्राथमिक कल्पना-शक्ति का प्रयोग करते हैं तो उस अवसर पर उसका जो रूप हो जाता है, उसे विशिष्ट कल्पना कहते हैं। प्राथमिक कल्पना जिस प्रकार इन्द्रिय-बोधों को एक संतुलन और व्यवस्था देती है, किन्तु महत्व की बात यह है कि यह व्यवस्था-कार्य प्राथमिक कल्पना के बिना किसी दबाव के-सहज रूप से करती है। इसके विपरीत जब इस व्यवस्थापिका कल्पना का प्रयोग जानबूझकर या प्रयत्नपूर्वक किया जाता है, तब इसका मूल तो सुरक्षित रहता है, किन्तु कार्य-पद्धति में अन्तर हो जाता है। फलतः इसका श्रेणी-भेद भी बदल जाता है। कार्य-पद्धति में भेद का कारण हमारी स्वयं की इच्छा है। यह विशिष्ट कल्पना कलाकारों या चित्रकारों में पायी जाती है। जनसाधारण में इसका प्रसार और प्रभाव नहीं देखा जाता है।

5.3.6 ललित कल्पना(रम्य कल्पना)

रम्य कल्पना को कोलरिज स्मृति का ही प्रतिरूप मानता है। लेकिन सामान्य स्मृति और रम्यकल्पना में कुछ भेद है, जहाँ स्मृति देश-काल के बंधन में रहती है,वही रम्यकल्पना देश-काल से मुक्त तथा इच्छाशक्ति के द्वारा संचालित एवं रूपांतरित होती है। और उसकी उपयोज्य सामग्री स्थिर तथा सुनिश्चित होती है।

कल्पना और रम्यकल्पना में कुछ अन्तर इस प्रकार है- 1) मुख्य कल्पना और गौण कल्पना का अंतर केवल मात्रात्मक होती है जबकि कल्पना और रम्यकल्पना का अंतर मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों होती है। अतः रम्यकल्पना बिंबों को केवल पास-पास रख देती है, उनमें कोई परिवर्तन नहीं करती, किन्तु कल्पना उन्हें विघटित, विगलित कर बिलकुल नये रूप में ढाल देती है। 2) कल्पना बिंबों में आंतरिक सामंजस्य और एकरूपता लाती है। जबकि रम्यकल्पना केवल निश्चित वस्तुओं में एकत्र का कार्य करती है। 3) कल्पना प्रत्यक्ष रूप में ग्रहण करती है जबकि रम्यकल्पना स्मृति रूप में ग्रहण करती है। अतः कल्पना का सम्बन्ध आत्मा और मन से है। और ललित कल्पना का मस्तिष्क से। 4) कल्पना का कार्यपद्धति जैव हैं किंतु रम्यकल्पना का यांत्रिक है।

5) कल्पना प्रतिभा (genius) की उपज है; रम्यकल्पना प्रज्ञा (talent) की।

Critical Overview / अवलोकन

आलोचना के क्षेत्र में कॉलेरिज का एक महत्वपूर्ण योगदान उनके द्वारा कल्पना शक्ति का विवेचन है। कल्पना को दर्शन तथा काव्य के साथ पहले से जोड़ा जाता रहा है, परन्तु कॉलरिज ने इसका विस्तार से विवेचन किया। इनका 'कल्पना सिद्धान्त' प्रसिद्ध है। छंद काव्य का अन्तरंग गुण है जो काव्य के सभी तत्वों को संयोजित करता हुआ अन्विति की प्रतिष्ठा करता है। कोलरिज ने कल्पना के दो भेद माने हैं- 1) मुख्य (primary) 2) गौण (Secondary)। मुख्य कल्पना वह शक्ति है। जिसके द्वारा इन्द्रियगोचर पदार्थों का बोध होता है। गौण कल्पना विशिष्ट लोगों में पायी जाती है। यह एक आत्मिक उर्जा है जिसमें मन:शक्ति, ज्ञान शक्ति, विचार शक्ति, मनोवेग आदि समाहित रहते है।

Recap / पुनरावृत्ति

- कॉलेरिज के काव्य संबंधी विचार
- कल्पना के सिद्धांत
- कल्पना और ललित कल्पना में अंतर
- कॉलेरिज सामान्य परिचय
- उत्कृष्ट काव्य के गुण
- कथ्य में तटस्थता
- विशिष्ट कल्पना
- ललित कल्पना

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. Biographia Literaria किसकी रचना है?
2. जिसके द्वारा इन्द्रियगोचर पदार्थों का बोध होता है, उसे क्या कहते हैं?
3. आलोचना के क्षेत्र में कॉलेरिज का एक महत्वपूर्ण योगदान क्या है?
4. (रम्य कल्पना) ललित कल्पना क्या है?
5. विशिष्ट कल्पना क्या है?
6. कल्पना के कितने भेद है?
7. चर्च एंड स्टेट (Church and State) किसकी रचना है?

Answers / उत्तर

1. सैम्युअल टेलर कॉलरिज
2. मुख्य कल्पना
3. कल्पना शक्ति का विवेचन
4. स्मृति का ही प्रतिरूप
5. प्राथमिक कल्पना का सजग मानवीय प्रयोग
6. दो भेद माने हैं- मुख्य (primary) गौण (Secondary)।
7. सैम्युअल टेलर कॉलरिज

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. आलोचना के क्षेत्र में कॉलेरिज का योगदान।
2. कॉलेरिज के कल्पना-सिद्धांत।
3. कॉलेरिज की रचनाएँ लिखिए।
4. ललित कल्पना पर विचार कीजिए।
5. विशिष्ट कल्पना पर विचार कीजिए।
6. उत्कृष्ट काव्य के गुण पर प्रकाश डालिए।

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

इकाई 4 मैथ्यू अर्नाल्ड

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- मैथ्यू अर्नोल्ड के बारे में समझते हैं
- मैथ्यू अर्नोल्ड के काव्य संबंधी विचार समझ सकते हैं
- आलोचना के क्षेत्र में अर्नोल्ड के महत्व समझते हैं

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

अरस्तू एवं आभिजात्यवादियों की दृष्टि का मूल स्वर यह था कि कला और जीवन के संबंध को अनुकरण के स्तर पर व्यक्त करते हुए कला के अनुरूप नियमों का उद्घाटन किया जाए और फिर यह देखा जाए कि कलाएं उन नियमों का पालन कहाँ तक करती हैं। स्वच्छंदतावादी चेतना में इन नियमों को कृत्रिम मानकर उनका निषेध किया गया और आलोचना के एक नए केंद्र की -कवि के व्यक्तित्व और रचना व्यापार की प्रतिष्ठा की गयी ।इस दृष्टि से काव्य में तीन तत्वों का महत्व सबसे अधिक माना गया है। रूप की दृष्टि से त्रासदी के स्थानपर युगीन मुक्तक की प्रतिष्टा हुई, कथ्य के रूप में कार्य-व्यापार एवं कथावस्तु के स्थान पर भाव, आवेग, अनुभूति आदि की श्रेष्टता प्रतिपादित की गई और शिल्प के संदर्भ में बिंब सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना गया। मैथ्यू अर्नोल्ड ने जब साहित्य क्षेत्र में पदार्पण किया तो उसे ऐसे वातावरण का सामना करना पड़ा जो रूमानी चेतना के उपर्युक्त तीन तत्वों से -प्रगीत मुक्तक, भाव और बिंब से प्रधान रूप से निर्मित था। पहले तो अर्नोल्ड पर भी इन तत्वों का प्रभाव रहा, लेकिन फिर उसने कविता एवं आलोचना की सभी प्राचीन दृष्टियों के विरोध में एक नई दृष्टि का उद्घाटन किया।

Keywords / मुख्य बिन्दु

अर्नोल्ड के काव्य सिद्धांत, काव्य का कथ्य एवं आनन्द, काव्य का यथार्थ मूल्यांकन, आलोचना का स्वरूप और उद्देश्य।

Discussion / चर्चा

मैथ्यू अर्नोल्ड से पूर्व काव्य चेतना एवं आलोचना रूमानी भावधारा के प्रभाव से एक विशिष्ट दिशा में प्रवाहित हो रही थी। उस दिशा का मूल स्वर सत्ता से विद्रोह का था।

5.4.1 मैथ्यू अर्नोल्ड

मैथ्यू अर्नोल्ड को उन्नीसवीं शताब्दी का मूर्धन्य आलोचक, यथार्थवादी काव्य चिंतक तथा प्रथम कोटि

का कवि माना गया है। वस्तुतः उनका समय सन्1822 से 1888 ई है। उन्होंने शिक्षा संबंधी विवरण प्रस्तुत करते हुए आंगल शिक्षा पद्धति की सीमाओं का स्पष्ट रूप से संकेत किया। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इग्लैंड के शासन ने अर्नोल्ड के विचारों को मान्यता भी प्रदान की। यद्यपि अर्नोल्ड ने चालीस पुस्तकें लिखी हैं पर आलोचना की दृष्टि से 'एसेज इन क्रिटिसिज्म','ऑन द स्टडी ऑफ़ सेल्टिक कल्चर', 'लिटरेचर एंड ड्रामा', और 'कल्चर एंड अनार्की'विशेष उल्लेखनीय है।

5.4.2 अर्नोल्ड के काव्य सिद्धांत

अर्नोल्ड कवि ही था मगर उसकी विशेष ख्याति उसकी आलोचना के कारण ही हुई। वह आनंद को काव्य का महत्वपूर्ण तत्व मानता है, मगर साथ ही वह आनंद को एक विशेष संदर्भ से- उत्कृष्ट कार्य से तथा श्रेष्ठ प्रतिपादन रीति से जोड़ देता है। इस प्रकार अर्नोल्ड की आनंद संबंधी अवधारणा विशेष महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि वह आनंद को काव्य से उत्पन्न एक गंभीर एवं मूल्यवाना मनःस्थिति मानता है। कविता का उद्देश्य मात्र मनोरंजन करना नहीं है। मनोरंजन तो एक हल्की स्थिति है जबकि काव्य का कार्य एवं लक्ष्य अत्यंत भव्य है। इसीलिए वह उत्कृष्ट कार्य व्यापार को काव्य का सबसे अधिक महत्वपूर्ण तत्व मानते हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं कि वह प्रतिपादन रीति की अवहेलना करता है या शैली पक्ष को समुचित महत्व नहीं देता। यदि काव्य का विषय उत्कृष्ट है उसमें सत्य एवं गंभीर्य है तो उसमें शैली और उसकी गति का उत्कर्ष अपने आप ही आ जाता है क्योंकि काव्य में ये दोनों तत्व परस्पर अभिन्न रूप से संबद्ध है। मगर साथ ही यह भी एक सत्य है कि ऐसी रचनाएँ भी देखने में आती है जहां कार्य व्यापार गौण या सामान्य होता है, मगर कौशल एवं चमत्कार की दृष्टि से उसका शिल्प समृद्ध होता है इस बात की ओर संकेत करते हुए अर्नोल्ड ने कहा है- 'समस्त राष्ट्रों में सदा सर्वदा काव्य के शाश्वत विषय क्या रहे हैं? कार्य व्यापार मानव के कार्य व्यापार। उनमें एक निहित रोचकता होती है, कवि की कला द्वारा रोचक नीति से ही उसका संप्रेषण होना चाहिए। यदि कवि समझता है कि सब कुछ उसी की शक्ति में है, कि वह अपनी प्रतिपादन-कला से किसी मूलतः निकृष्ट कार्य-व्यापार को उत्कृष्ट कार्य- व्यापार के समान आनंददायक बना सकता है तो उसका यह विचार मिथ्या है। वे काव्य कृति से यह मांग नहीं कर सकती कि वह उनकी परितृप्ति करें। उनके दावे दूसरी दिशा में उन्मुक्त हो सकते हैं। काव्य कृतियों का संबंध हमारी शाश्वत वासनाओं के साम्राज्य से होता है यदि वे इन्हें आकर्षित करते हैं तो और सब छोटे-मोटे दावों का स्वर स्वयं ही मौन हो जाता है' ।

इस उद्धरण में आर्नोल्ड मानव स्वभाव के शाश्वत भावों या वृत्तियों का उल्लेख करता है जिनमें कभी परिवर्तन नहीं आता तथा कविता को उत्कृष्ट कार्य-व्यापार के माध्यम से उन मूल शाश्वत भावों के साथ संबद्ध करने का प्रयास करते हैं। अर्नाल्ड मानव स्वभाव के रागात्मक अंश को शाश्वत मानते हैं। सभ्यता का रूप चाहे कितना ही क्यों ना बदल जाए मानव की भावनाएं और अनुभूतियां स्थायी रहती है।

5.4.3 काव्य का यथार्थ मूल्यांकन

अर्नोल्ड ने कविता के मूल्यांकन की समस्या पर विचार करते हुए भी इसी सांस्कृतिक आदर्श को ध्यान में रखा है। लेकिन इससे पहले कि हम अर्नाल्ड की कविता के मूल्यांकन संबंधी विचारों का विवेचन करें यह जरूरी है कि आर्नोल्ड ने कविता के उत्कर्ष को समझने के लिए व्यावहारिक कसौटी का वर्णन किया है उस पर विचार करना है।

अर्नोल्ड का कहना है कि प्राचीन महान रचनाओं के कुछ अंश -चाहे वह छंद हो या एक पंक्ति की हो -ऐसे हैं जो निर्विवाद रूप से उत्कृष्ट काव्य के उदाहरण माने जाते हैं। अर्नोल्ड ने कविता के श्रेष्ठ अंशों और पंक्तियों का संकलन तैयार किया, जिससे आम पाठक काव्य का मूल्यांकन कर सकें।

कविता का कोई अंश, चाहे वह एक छंद हो या एक पंक्ति, पूरी रचना से संपृक्त है और इसलिए उसका महत्त्व उस रचना के सन्दर्भ से ही जाना जा

सकता है। रचना से उस अंश को अलग कर देने पर उसका वह महत्व नहीं रह पाता। यह बात अर्नोल्ड की अपनी मान्यता के भी विरोध में पड़ती है। दूसरी बात यह है कि प्राचीन काव्य का जन्म एक विशेष परिवेश से होता है और आज का परिवेश बदला हुआ है। इसलिए प्राचीन चेतना से निर्मित रचना आज की चेतना से उत्पन्न रचना केलिए कसौटी नहीं बन सकती। अर्नोल्ड के बारे में यह कहा जा सकता है कि वह जीवन के शाश्वत मूल्यों को व्यक्त करने वाले काव्य को श्रेष्ठ मानता है, इसलिए प्राचीन काव्य के वे अंश ही श्रेष्ठ माने जायेंगे जिनमें सनातन मूल्यों की स्थिति हो। मगर मूल्यों की यह सनातनता अपने आप में संदिग्ध है। तीसरी बात यह है कि सभी कुछ काव्यांशों को उत्कृष्ट मानते हैं, तो यह आसानी से समझा जा सकता है कि उस 'उत्कृष्ट' का स्वरूप क्या है। आलोचक उन अंशों के आधार पर उत्कृष्ट काव्य के सर्वमान्य लक्षण का निर्धारण भी कर सकता है। यदि यह संभव है तो अधिक वैज्ञानिक पद्धति यह होगी कि उन उत्कृष्ट अंशों के आधार पर उत्कृष्ट काव्य के सामान्य लक्षणों का निर्देश कर दिया जाए जो आगे की रचना के मूल्यांकन में सहायक हो सके। इस प्रकार आंशिक व्यवहारिक उपयोगिता के बावजूद भी अर्नाल्ड की मान्यता दोषपूर्ण है।

काव्य के मूल्यांकन के सामान्य प्रश्न पर विचार करते हुए अर्नोल्ड ने व्यक्तिपरक मूल्यांकन और ऐतिहासिक मूल्यांकन के विरोध में यथार्थ मूल्यांकन की चर्चा की है। यथार्थ मूल्यांकन का विवेचन करते हुए अर्नोल्ड ने आलोचक की निष्पक्षता की बात भी की है। निष्पक्ष आलोचना ही जीवन को तात्कालिक व्यावहारिक उपयोगिता के संकीर्ण घेरे से बाहर निकालकर उसे पूर्णता और संतुलन की ओर अग्रसर करती है। इस प्रकार अर्नोल्ड ने आलोचना के व्यापक उत्तरदायित्व को सबसे अधिक प्रधानता दी है।

5.4.4 आलोचना का स्वरूप और उद्देश्य

यथार्थ मूल्यांकन की बात करते हुए अर्नोल्ड ने समकालीन पत्र-पत्रिकाओं के पूर्वाग्रहपूर्ण रवैये की निंदा की है। 'वर्तमान काल में आलोचना के प्रयोजन' नामक निबंध में उन्होंने कहा है कि 'एडनिबरा रिव्यू' ओल्ड विगस के विचारों को प्रस्तुत करता है। अर्नोल्ड का आलोचना मात्र काव्यशास्त्री ही नहीं है, वह तो एक सांस्कृतिक चिंतक है, जो अपने युग को सही आदर्श प्रदान करता है। इस उद्देश्य को पूरा करने केलिए आलोचना को तीन कार्य करने होंगे। प्रथम, आलोचना को जीवन और काव्य की महान उपलब्धियों को समझना होगा, उन्हें आत्मसात करना होगा। द्वितीय, इन उपलब्धियों के विचारों को शक्तिशाली अभिव्यक्ति देनी होगी। और तृतीय, इस प्रकार जीवन में उत्कृष्ट विचारों का संचार करके एक ऐसे वातावरण का निर्माण करना होगा जो महान साहित्य के निर्माण की प्रेरणा दे सके। स्पष्टतः यहाँ अर्नोल्ड ने आलोचना को महान काव्य के प्रेरक के रूप में प्रतिष्ठित करके एक बुनियादी समस्या को उठा दिया है। यह बुनियादी समस्या है आलोचना और रचना के सापेक्षिक महत्व की। प्रायः रचना आलोचना से अधिक महत्वपूर्ण मानी जाती है, लेकिन अर्नोल्ड व्यापक परिप्रेक्ष्य में आलोचना को अधिक महत्वपूर्ण मानता है क्योंकि आलोचना ही महान विचारों के संप्रेषण द्वारा उत्कृष्ट साहित्य के निर्माण की प्रेरणा देती है।

Critical Overview / अवलोकन

मैथ्यू अर्नोल्ड से पूर्व काव्य चेतना एवं आलोचना रूमानी भावधारा के प्रभाव से एक विशिष्ट दिशा में प्रवाहित हो रही थी। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इग्लैंड के शासन ने अर्नोल्ड के विचारों को मान्यता भी प्रदान की। अर्नोल्ड कवि ही था मगर उसकी विशेष ख्याति उसकी आलोचना के कारण ही हुई। वह आनंद को काव्य का महत्वपूर्ण तत्व मानता है, मगर साथ ही वह आनंद को एक विशेष संदर्भ से- उत्कृष्ट कार्य से तथा श्रेष्ठ प्रतिपादन रीति से जोड़ देता है। इस प्रकार अर्नोल्ड की आनंद संबंधी अवधारणा विशेष महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि वह आनंद को काव्य से उत्पन्न एक गंभीर एवं मूल्यवान मनःस्थिति मानता है। वह जीवन के शाश्वत मूल्यों को व्यक्त करने वाले काव्य को श्रेष्ठ मानता है, इसलिए प्राचीन काव्य के वे अंश ही श्रेष्ठ माने जायेंगे जिनमें सनातन मूल्यों की स्थिति

हो। अर्नोल्ड की आलोचना मात्र काव्यशास्त्री ही नहीं है, वह तो एक सांस्कृतिक चिंतक है, जो अपने युग को सही आदर्श प्रदान करता है। इस उद्देश्य को पूरा करने केलिए आलोचना को तीन कार्य करने होंगे।

Recap / पुनरावृत्ति

- अर्नोल्ड के काव्य सिद्धांत
- अर्नोल्ड के काव्य संबंधी विचार
- अर्नोल्ड की आलोचना
- काव्य का यथार्थ मूल्यांकन
- आलोचना का स्वरूप और उद्देश्य

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अर्नोल्ड का समय कब है?
2. 'लिटरेचर एंड ड्रामा' किसकी रचना है?
3. अर्नोल्ड की दृष्टि में काव्य का महत्वपूर्ण तत्व क्या है?
4. अर्नोल्ड की मूल्यांकन पद्धति का नाम क्या है?
5. मैथ्यू अर्नोल्ड की आलोचनात्मक कृतियाँ लिखिए।

Answers / उत्तर

1. अर्नोल्ड का समय सन 1822 से 1888 ई है।
2. मैथ्यू अर्नोल्ड
3. कार्य व्यापार
4. आलोचना
5. 'एसेज इन क्रिटिसिज्म','ऑन द स्टडी ऑफ़ सेल्टिक कल्चर', 'लिटरेचर एंड ड्रामा', और 'कल्चर एंड अनार्की' विशेष उल्लेखनीय है।

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. अर्नोल्ड के काव्य सिद्धांत की आलोचना कीजिए।
2. आलोचना और उसके उद्देश्य के बारे में अर्नोल्ड का विचार स्पष्ट कीजिए।
3. मैथ्यू अर्नोल्ड के काव्य संबंधी विचारों को व्यक्त कीजिए।
4. काव्य के मूल्यांकन के संबंध में अर्नोल्ड के चिंतन पर प्रकाश डालिए।
5. आलोचना के स्वरूप को निर्धारित कीजिए।
6. आलोचना के उद्देश्य को व्यक्त कीजिए।

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

SGOU

इकाई 5 क्रोंचे का अभिव्यंजनावाद

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- क्रोंचे के अभिव्यंजनावाद समझता है
- अभिव्यंजना का अर्थ समझते हैं
- बाह्य अभिव्यंजना के बारे में समझते हैं
- काव्य का रूप और कथ्य के बारे में समझते हैं
- अभिव्यंजना और वक्रोक्ति के अंतर समझते हैं

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

क्रोंचे एक आत्मवादी विचारक था और उसने कलाओं का विवेचन भी उसी स्तर पर किया है। 'ऐस्थेटिक' नाम के ग्रंथ में उनका सौन्दर्यशास्त्रीय विवेचन मिलता है। आत्मवादी होने के नाते उसने कलाओं के स्वरूप आदि का जो विवेचन किया है, वह गोचर या बौद्धिक जगत के आधार पर न होकर अतीन्द्रिय चेतना के स्तर पर है। इस प्रकार के विवेचन की सीमा एवं शक्ति स्पष्ट उभरकर सामने आ जाती है। एक ओर तो गोचर जगत से कटे रहने के कारण ऐसा विवेचन कुछ ऐसे तर्कों तथा प्रमाणों पर आधारित होता है जिन्हें शाश्वत माना जाता है तथा जिन पर विवाद नहीं किया जाता और दूसरी ओर व्यावहारिक आलोचना से दूर पड़ जाने के कारण इस विवेचन में साहित्य के कुछ पक्ष उपेक्षित रह सकते हैं। साथ ही यह आशंका भी बनी रहती है कि सिद्धांत के व्यावहारिक प्रभाव के शुभ या अशुभ परिणामों की भी कहीं उपेक्षा न हो जाए। क्रोंचे के सिद्धांत पर, जिसे अभिव्यंजनावाद के नाम से जाना जाता है, इन सभी दृष्टियों से विचार किया गया है तथा उसकी शक्ति एवं सीमा का निर्देश किया गया है। मगर साथ ही एक बात स्पष्ट है। एक पूर्वनिश्चित व्यापक आत्मवादी आस्था पर आधारित होने के कारण क्रोचे ने कुछ ऐसी मौलिक उद्भावनाएं की हैं जिन्होंने व्यापक एवं गंभीर रूप से परवर्ती साहित्यिक विकास को प्रभावित किया है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

ज्ञान के प्रकार, अभिव्यंजना, अभिव्यंजना का अर्थ, बाह्य अभिवंजना, काव्य का रूप और कथ्य, अभिव्यंजना और वक्रोक्ति, क्रोंचे का सामान्य परिचय

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Discussion / चर्चा

5.5.1 ज्ञान के प्रकार और अभिव्यंजना

सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि आज तक के सांस्कृतिक विकास में ज्ञान के तीन प्रकार माने जा सकते हैं जो ज्ञान के साधनों पर आधारित हैं। ज्ञान का पहला प्रकार है इन्द्रियज्ञान जो इन्द्रियों द्वारा प्राप्त होता है। दूसरे प्रकार का ज्ञान बौद्धिक ज्ञान है जिसमें प्रत्ययों एवं अवधारणाओं की सत्ता रहती है। इनसे भिन्न ज्ञान का एक तीसरा प्रकार भी है जिस केलिए अंग्रेजी में 'इन्ट्यूशन' शब्द प्रचलित है। यह ज्ञान आत्मा के भीतर से उत्पन्न होता है तथा ऐन्द्रिय ज्ञान एवं बौद्धिक ज्ञान से प्रकृति में भिन्न होता है।

क्रोंचे ने कला का संबंध अंतर्जान से माना है और उसे बौद्धिक ज्ञान तथा उससे उत्पन्न प्रत्ययों एवं अवधारणाओं से प्रकृत्या भिन्न माना है। 'ज्ञान के दो रूप हैं : सहजानुभूत ज्ञान अथवा तर्कमूलक ज्ञान, अल्पना अथवा बुद्धि के द्वारा उपलब्ध ज्ञान, वैयक्तिक ज्ञान अथवा सार्वत्रिक ज्ञान, वह ज्ञान जो वस्तुओं की इकाई से संयुक्त है अथवा वह जो वस्तुओं के परस्पर संबंधों से संपृक्त है : ज्ञान या तो बिंबों को या अवधारणाओं को उत्पन्न करता है'।

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि अंतर्जान कल्पना के द्वारा उपलब्ध होता है, यह ज्ञान व्यक्ति का होता है, वस्तुओं की इकाई से संपृक्त है तथा यह बिंबों को उत्पन्न करता है जब कि तर्कमूलक ज्ञान का साधन बुद्धि है, वह सार्वत्रिक होता है और उसका विषय वस्तुओं से परस्पर संबंध है तथा वह अवधारणाओं को उत्पन्न करता है। काव्य का आधार यह अंतर्जान ही है जो काव्य-ज्ञान का एक प्रकार है। उसे अनुभूति मान लेना क्रोचे के मूल उद्देश्य को ही खंडित कर देता है। दरअसल रस-सिद्धांत में आस्था रखने वाले व्यक्ति पूर्वाग्रह के कारण ही 'सहजानुभूति' का प्रयोग करते हैं क्योंकि रस में अनुभूति का तत्व ही प्रधान है।

5.5.2 अभिव्यंजना का अर्थ

अभिव्यंजना शब्द क्रोंचे के सन्दर्भ में एक विशिष्ट पारिभाषिक शब्द है। अभिव्यंजना का प्रयोग सामान्य अर्थ में - शाब्दिक अभिव्यंजना के अर्थ में नहीं है। इस अंतर को न समझ सकने के कारण ही वक्रोक्ति और अभिव्यंजना में अभेद है, दोनों भिन्न नहीं एक हैं। अंतर्जान, (अर्थात् कवि की चेतना में बिंबों का उदय यही अभिव्यंजना है :

प्रत्येक वास्तविक सहजानुभूति अथवा प्रतिनिधान अभिव्यंजना भी है। अभिव्यंजना में जो तत्व व्यक्ति-निरपेक्ष नहीं रहता, वह सहजानुभूति अथवा प्रतिनिधान नहीं है वह तो संवेदन और सिर्फ प्राकृतिक तथ्य है। आत्मसृजन में, रूप-निर्माण में, अभिव्यक्ति में वह स्वयं प्रकाशित होती है। जो सहजानुभूति को अभिव्यंजना से पृथक करता है वह उनके पुनः संश्लेषण में कभी सफल नहीं होता।

सहजानुभूति की क्रिया उस अंश तक सहजानुभूति होती है जिस अंश तक वह उसे अभिव्यक्त करती है। यदि उस उक्ति में विरोधाभास प्रतीत हो तो उसका कारण यह है कि साधारणतः 'अभिव्यंजना का एक अत्यंत सीमित अर्थ में प्रयोग किया गया है। इसे प्रायः उस तक सीमित रखा जाता है, जिसे शाब्दिक अभिव्यंजना कहते हैं। किन्तु अशाब्दिक अभिव्यंजना भी होती हैं, जैसे रेखा, रंग और ध्वनि की अभिव्यंजनाएं। वह व्यक्ति वक्ता भी है, संगीतज्ञ भी है, चित्रकार भी है और उसके अन्य रूप भी है। व्यक्ति का प्रकाशन चित्र, शब्द, संगीत या अन्य किसी रूप में क्यों न हो, सहजानुभूति अभिव्यंजना का कोई न कोई रूप ढूंढ ही लेती है; वस्तुतः अभिव्यंजना सहजानुभूति का अभिन्न अंग है। अभिज्ञान की इस प्रक्रिया में सहजानुभूति की अभिव्यंजना से विभेद करना असंभव है। जब एक उत्पन्न होती है तो उसी क्षण उसके साथ दूसरी भी उत्पन्न होती है, कारण वे दो नहीं, एक हैं'।

उपर्युक्त उद्धरण में क्रोचे के अनुसार अभिव्यंजना का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। कलाकार के मन में बिंबों का उदय चाहे वे शब्दमय बिंब हैं चाहे रंग-रेखामय या

किसी अन्य प्रकार के हो वही अभिव्यंजना है। अंतर्जान से अभिन्न होने के कारण अभिव्यंजना एक आंतरिक व्यापार है जो ज्ञानमय है। उसका उत्स भी आत्मा है और संचरण का क्षेत्र भी। बाह्य अभिव्यक्ति क्रोंचे की अभिव्यंजना का अंग नहीं। कलात्मक व्यापार का जन्म कवि के अंतर्जगत से होता है और वहीं वह पूर्ण भी हो जाता है। स्पष्टतः यह मान्यता विवादास्पद है। मगर इस विवाद में जाने से पहले एक अन्य बात पर विचार कर लेना चाहिए।

अभिव्यंजना के दो गुणों का उल्लेख किया गया है। प्रथम, अभिव्यंजना का उत्स आत्मा है, एवं द्वितीय अभिव्यंजना-व्यापार मन में ही पूरा हो जाता है। क्रोंचे की यह मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति में अभिव्यंजना होती है मगर कलाकारों की शक्ति व्यापक होती है, इसलिए सामान्य व्यक्ति की तुलना में कलाकारों की अभिव्यंजानायें अनेक होती हैं।

5.5.3 बाह्य अभिव्यंजना

क्रोचे के अनुसार अभिव्यंजना मानसिक व्यापार है। सहज ज्ञान अभिव्यंजनात्मक ज्ञान ही है : सहजानुभूति ज्ञान अभिव्यंजनात्मक ज्ञान है। वह बौद्धिक क्रिया से स्वतन्त्र और स्वायत्त है। सहजानुभूति अथवा प्रतिनिधान रूप है और इसलिए इससे भिन्न तो अनुभव है, वह संवेदन के प्रवाह अथवा तरंग से भिन्न है, वह मानसिक वस्तु द्रव्य से भिन्न है- यह रूप, यह अधिकृति, अभिव्यंजना है। सहानुभूति का होना अभिव्यक्ति होना है, सिर्फ अभिव्यंजना होना।

अभिव्यंजना हो जाने पर या अंतरज्ञान हो जाने पर बाह्य अभिव्यक्ति की कोई अनिवार्यता नहीं रह जाती। लेकिन अगर कलाकार बाह्य अभिव्यक्ति करना चाहे तो उसे कोई कठिनाई नहीं होती। कलात्मक व्यापार का अनिवार्य अंग न होते हुए भी बाह्य अभिव्यंजना के दो लाभ हैं ही - प्रथम,अभिव्यंजना कृति के रूप में सुरक्षित रहती है,विस्मृति के गर्भ में विलीन होने से बच जाती है। द्वितीय,समाज उसका अध्ययन आदि कर सकता है। यद्यपि ये दोनों लाभ महत्वपूर्ण हैं और कुछ सिद्धान्तों के लिए तो दूसरा लाभ ही कलात्मक व्यापार को सार्थक करता है, मगर क्रोचे ने इन्हें सर्जना व्यापार के भीतर शामिल नहीं किया और इसलिए सहृदय द्वारा कला के आस्वाद की समस्या का भी कोई संतोषजनक समाधान क्रोचे में नही मिलता। यदि एक कलाकृति सहृदय को अभिव्यंजन जगाने में समर्थ हो जाती है तो क्रोचे की यह बुनियादी मान्यता खण्डित हो जाती है कि अभिव्यंजना का जन्म आत्मा से ही होता है,बाह्य प्रभावों से नहीं।

5.5.4 काव्य का रूप और कथ्य

अभिव्यंजना के दो पक्ष लक्षित होते हैं-वस्तु और रूप। वस्तुत : ये दोनोँ परस्पर सम्बन्ध होकर ही व्यक्त होते हैं। दर्शन के क्षेत्र में रूप एवं वस्तु के सम्बन्ध की समस्या एक जटिल एवं शाश्वत समस्या रही है, लेकिन क्रोचे वस्तु को बहिर्गत मानते हैं और रूप को आत्मा की क्रिया तथा दोनों संपृक्त रूप से व्यक्त होते हैं। रूप स्थिर होता है किन्तु सामग्री बदलती रहती है और इसी कारण अभिव्यंजनाओं में परस्पर अंतर होता है :

'ऐसे ही क्षणों में हम वस्तु और रूप के गहन अंतर को अच्छी तरह समझ पाते हैं। ये दोनों एक -दूसरे के विरोधी तत्व नहीं हैं, किन्तु एक बहिर्गत तत्व है -वह हम पर प्रहार करता है और हमारे पाँव उखाड़ देता है। दूसरा हमारे अंतर वर्तमान है, वह उस बहिर्गत वस्तु को अंतर्लीन करना चाहता है, उसके साथ तादात्म्य स्थापित करना चाहता है। वस्तु जब रूप-वेष्टित,रूप -विजित होती है,तब वह मूर्त रूप को उत्पन्न करती है। सहजानुभूति और दूसरी सहजानुभूति में क्या अंतर है - सहजानुभूति, आंतरिक अभिव्यक्ति है, जबकि अन्य मानसिक व्यापार बाह्य दुनिया से प्राप्त जानकारी पर आधारित होते हैं। सहजानुभूति में कलात्मक रूप-रचना होती है, जो सौंदर्य को जन्म देती है, जबकि अन्य मानसिक व्यापार में यह नहीं होता है। वस्तु के बिना आत्मिक क्रिया अपनी अमूर्तता त्याग कर मूर्त और वास्तविक क्रिया नहीं हो सकती,वस्तु ही उसके विशिष्ट आधेय, उसकी विशिष्ट सहजानुभूति को प्रकट करती है।'

क्रोचे की अपनी तर्क - परम्परा सम्बन्ध और अविकल है,इसलिए उसकी एक मान्यता के क्रम में ही अन्य मान्यताएं आती चली जाती हैं जो अत्यंत विवादास्पद होने के साथ -साथ व्यवहारिकता के अनुकूल भी नहीं पड़तीं। उदाहरण के लिए क्रोचे सभी अभिव्यंजनाओं को समान रूप से श्रेष्ठ मानता है। अभिव्यंजना या तो होती है या नहीं होती। अगर अभिव्यंजना होती है तो वह किसी भी दूसरी अभिव्यंजना से हीन या श्रेष्ठ नहीं मानी जा सकती क्योंकि यदि अभिव्यंजनाओं में परस्पर उत्कर्ष के आधार पर अंतर किया जाएगा तो फिर यह सवाल पैदा होगा कि इस अंतर का आधार क्या है? यदि सभी अभिव्यंजनाएँ आत्मिक क्रियाएं हैं तो फिर एक अच्छी क्यों मानी जाये और दूसरी बुरी क्यों मानी जाये? स्पष्ट है कि उनमें इस प्रकार का अंतर या तो सामग्री के आधार पर हो सकता है या संरचना के आधार पर या फिर प्रभाव के आधार पर। क्रोचे इनमें से किसी आधार को स्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि उसकी बुनियादी दृष्टि तथा विवेचन इस बात की इज़ाजत नहीं देता। क्रोचे की यह मान्यता व्यवहारिक आलोचना के प्रतिकूल पड़ती है ; क्योंकि व्यवहार में हम रचनाओं में उत्कर्ष, अपकर्ष को स्पष्टतः लक्षित करते हैं और इसकी व्याख्या का भी प्रयास करते हैं। गीति कार्य के अंतर्गत गीतों में परस्पर उत्कर्ष आदि का अंतर होता है तथा उत्कृष्ट गीत, उत्कृष्ट प्रबन्ध काव्य में भी अंतर होता है।

5.5.5 अभिव्यंजनावाद और वक्रोक्ति

हिन्दी की आलोचना में अभिव्यंजनावाद और वक्रोक्ति - सिद्धांत की तुलना का प्रयास किया गया है, मगर यह प्रयास कितना असंगत और कितना भ्रामक है, यह विचारणीय है। अभिव्यंजनावाद का सम्बन्ध सभी कलाओं के साथ है जबकि कुंतक का सिद्धांत काव्य पर आधारित है। व्यावहारिक दृष्टि से देखते हुए अभिव्यंजनावाद के प्रभाव से विलक्षण अभिव्यंजनाओं से युक्त काव्य-रचना की प्रवृत्ति का विकास तो हुआ, मगर केवल इसी आधार पर दोनों सिद्धांतों की तुलना भ्रामक मानी जाएगी। जहां तक सिद्धांत का सवाल है, अभिव्यंजनावाद और वक्रोक्तिवाद दोनों विरोधी सिद्धांत है। क्रोचे के विवेचन का केंद्र है सर्जना -व्यापार जिसे वह आत्मा के स्तर पर समझाने का प्रयास करता है जबकि कुंतक के विवेचन का केंद्र है काव्यकृति। क्रोचे की दृष्टि आत्मकेंद्रित है, जबकि कुंतक की दृष्टि काव्य में केन्द्रित है। कुंतक वस्तुवादी रीति से विवेचन करते हुए कविता में लक्षित होने वाले गुणों का विवेचन करता है तथा इस विवेचन में कविता के वस्तुपक्ष का, वर्ण से लेकर प्रबन्ध तक की वक्रता का विवेचन कर डालता है जबकि कविता का यह रूप क्रोचे की दृष्टि से आनुषंगिक है इसलिए सर्वथा उपेक्षित है। कुंतक वर्ण, शब्द, कथ्य, प्रभाव(रस)आदि को समीक्षा का आधार बनाता है, मगर क्रोचे में इन तत्वों का कोई जिक्र नहीं है। क्रोचे के लिए अभिव्यंजना एक बुनियावादी तत्व है, लेकिन कुंतक ने उसका स्पर्श तक नहीं किया, इस प्रकार क्रोचे और कुंतक दो सर्वथा विरोधी बिन्दुओं पर खड़े हैं और दोनों की तुलना असंगत एवं भ्रामक है। आचार्य शुक्ल ने अभिव्यंजनावाद को वक्रोक्ति का विलायती उत्थान माना है जो सर्वथा असंगत और अमान्य है।

Critical Overview / अवलोकन

क्रोंचे ने कला का संबंध अंतर्जान से माना है और उसे बौद्धिक ज्ञान तथा उससे उत्पन्न प्रत्ययों एवं अवधारणाओं से प्रकृत्या भिन्न माना है। अभिव्यंजना शब्द क्रोंचे के सन्दर्भ में एक विशिष्ट पारिभाषिक शब्द है। अभिव्यंजना का प्रयोग सामान्य अर्थ में - शाब्दिक अभिव्यंजना के अर्थ में नहीं है। क्रोचे के अनुसार अभिव्यंजना मानसिक व्यापार है। सहज ज्ञान अभिव्यंजनात्मक ज्ञान ही है। अभिव्यंजना के दो पक्ष लक्षित होते हैं-वस्तु और रूप। वस्तुत : ये दोनों परस्पर सम्बन्ध होकर ही व्यक्त होते हैं। व्यावहारिक दृष्टि से देखते हुए अभिव्यंजनावाद के प्रभाव से विलक्षण अभिव्यंजनाओं से युक्त काव्य-रचना की प्रवृत्ति का विकास तो हुआ, मगर केवल इसी आधार पर दोनों सिद्धांतों की तुलना भ्रामक मानी जाएगी।

Recap / पुनरावृत्ति

- ज्ञान के प्रकार और अभिव्यंजना
- अभिव्यंजना का अर्थ
- बाह्य अभिव्यंजना
- अभिव्यंजनावाद और वक्रोक्ति

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अभिव्यंजना का अर्थ क्या है?
2. अभिव्यंजनावाद के प्रणेता कौन है?
3. अभिव्यंजना के कितने पक्ष होते हैं?
4. वक्रोक्ति सिद्धांत के प्रणेता कौन है?

Answers / उत्तर

1. मानसिक व्यापार है
2. क्रोंचे
3. दो पक्ष, वस्तु और रूप।
4. कुंतक

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. आलोचना के क्षेत्र में अभिव्यंजनावाद।
2. क्रोंचे के अभिव्यंजनावाद पर विचार कीजिए।
3. अभिव्यंजना के अर्थ को सविस्तार व्यक्त कीजिए।
4. अभिव्यंजना और वक्रोक्ति का अंतर समझाइए।

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

BLOCK
06

आधुनिक ब्रिटिश - अमरीकी
काव्य चिंतन

इकाई 1 आई.ए. रिचर्ड्स का मूल्य सिद्धांत

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- आई.ए. रिचर्ड्स के बारे में समझते हैं
- पूर्व परंपरा के बारे में समझते हैं
- रिचर्ड्स के मूल्य सिद्धांत समझते हैं
- आई.ए. रिचर्ड्स के काव्य चिंतन से परिचय प्राप्त कर सकते हैं
- साहित्य में मूल्य शब्द का प्रयोग एवं उसके प्रयोग से परिचय प्राप्त कर सकते हैं

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

आई.ए. रिचर्ड्स आधुनिक युग का एक महत्वपूर्ण आलोचक माना जाता है। प्रेषणीयता सिद्धांत एवं उसकी विवेचना उस समय 'कला कला केलिए', 'कविता कविता केलिए', तथा सौन्दर्यशास्त्रीय अवधारणाओं के प्रचार-प्रयास से ऐसे वातावरण का निर्माण हो रहा था जिसमें कला को जीवन से काटकर देखने की प्रवृत्ति बलवती होती जा रही थी। ऐसी परिस्थिति में रिचर्ड्स ने मनोविज्ञान के सहारे काव्य के भावपक्ष की व्याख्या की तथा काव्य के मनोवैज्ञानिक मूल्य का सिद्धांत प्रस्तुत किया।

रिचार्ड्स मनोविज्ञान के क्षेत्र से आलोचना के क्षेत्र में आया था इसलिए मनोविज्ञान भी उसके अध्ययन का विशेष क्षेत्र रहा था। उनके काव्य-मूल्य के सिद्धांत पर इन सभी क्षेत्रों के विचारों का स्पष्ट प्रभाव है।

रूमानी चिंतन पद्धति से रिचर्ड्स ने काव्य में भाव के महत्व को ग्रहण किया तथा भाव तत्व के आधार पर अपने प्रमुख सिद्धांत की स्थापना की। उसने भाव की व्याख्या को समकालीन मनोविज्ञान से ग्रहण करते हुए अपनी भाव संबंधी दृष्टि को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने का प्रयास किया।

Keywords / मुख्य बिन्दु

रिचर्ड्स का मूल्य सिद्धांत, काव्य भाषा और विचार,कल्पना शक्ति, संप्रेषण सिद्धांत

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Discussion / चर्चा

6.1.1 आई.ए. रिचर्ड्स

आधुनिक आलोचकों में रिचर्ड्स का अत्यन्त उल्लेखनीय स्थान है। उसका जन्म 26 फरवरी सन् 1893 में हुआ था। उसकी शिक्षा पहले मेग्डलिन कॉलेज और फिर कैम्ब्रिज में हुई तथा प्रौढ़ावस्था में उसे हार्वर्ड विश्व- विद्यालय ने सम्मानपूर्वक डीलिट की उपाधि प्रदान की। रिचर्ड्स ने अर्थ विज्ञान एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र से साहित्य में प्रवेश किया। वह कई वर्षों तक हार्वर्ड विश्वविद्यालय में अंग्रेजी का प्राध्यापक भी रहा। सामान्यत रिचर्ड्स के उल्लेखनीय आलोचनात्मक ग्रन्थ निम्नलिखित हैं-'द फाउंडेशन ऑफ एस्थेटिक्स', 'द मीनिंग ऑफ मीनिंग', 'द स्टडी ऑफ द इन्फ्लुएंस ऑफ लैंग्वेज ऑन थॉट एंड आर्नें द साइंस आफ सिम्बोलिज्म', 'साइंस एवं पोएट्री', 'प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म', 'बेसिक रूल्ज ऑफ रीजन', 'हाउ टू रोड ए पेज' और 'प्रेक्टीकल क्रिटिसिज्म'। इनमें 'प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटि सिज्म' स्थायी महत्त्व की अधिकारिणी है और बहुत अधिक प्रसिद्ध है।

6.1.2 आई.ए. रिचर्ड्स के मूल्य-सिद्धांत

'मूल्य' की सामान्य परिभाषा यह है कि- मूल्य किसी वस्तु का वह धर्म (गुण) है, जिसमें उसका परिशंसन (Appreciation) अथवा रुचि(Interest) निहित हो। (अर्थात् कोई भी वस्तु यदि हमें रुचिकर प्रतीत होती है, या पसंद आती है तो वह हमारे लिए मूल्यवान है।

रिचर्ड्स ने अपनी विश्वविख्यात कृति 'प्रिंसिपल्स' (Principles) में मूल्य की 3 परिभाषाएँ दी हैं-

1. कोई भी वस्तु, जो इच्छा को संतुष्ट करती है, मूल्यवाना है।
2. विभिन्न जटिल रूपों में भावना और इच्छा की संतुष्टि की क्षमता मूल्य है।
3. मूल्य वह है जो दूसरों की इच्छा को असंतुष्ट किए बिना किसी की इच्छा को संतुष्ट करता है।

रिचर्ड्स की उक्त परिभाषाओं का सार यही है कि जिस वस्तु से हमारी अधिक से अधिक इच्छाओं की संतुष्टि हो सकती है, वह सर्वाधिक मूल्यवान है।

रिचर्ड्स के मूल्य-सिद्धांत की यह स्थापना है कि मूल्य और मूल्य की अनुभूति में कोई अंतर नहीं, दोनों पर्याय हैं। यही मूल्य की मनोवैज्ञानिक धारणा है। इसी आधार पर मूल्य-सिद्धांत प्रतिष्ठित है। रिचर्ड्स कहते हैं कि मूल्य अनेक प्रकार के हो सकते हैं- आर्थिक, नैतिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक इत्यादि

मूल्य-सिद्धांत के अंतर्गत रिचर्ड्स मानव-मन की क्रियाओं, प्रक्रियाओं की मीमांसा करते हुए मानव-मन को आवेगों का तंत्र बताते हैं और कहते हैं कि आवेगों की उत्पत्ति कभी अवरुद्ध नहीं होती है। चेतनावस्था में आवेगों की उत्पत्ति सदैव चलते रहती है। रिचर्ड्स ने आवेगों को 2 वर्गों में रखा है (i) प्रवृत्तिमूलक इच्छा आवेग (Appetency) और (ii) निवृत्तिमूलक द्वेष आवेग (Aversion)। करुणा, प्रेम जैसे आवेग प्रवृत्तिमूलक होते हैं जबकि भय, द्वेष जैसे आवेग निवृत्तिमूलक। रिचर्ड्स की दृष्टि में कुछ आवेग ऐसे होते हैं, जो एक दूसरे से भिन्न होने पर भी परस्पर अनुकूल होते हैं, (जैसे-हर्ष और विस्मय) जबकि कुछ आवेग एक-दूसरे से भिन्न भी होते हैं और परस्पर विरोधी भी (जैसे-करुणा और भय)। रिचर्ड्स आवेगों में सामंजस्य को महत्वपूर्ण एवं मूल्यवाना बताते हैं क्योंकि सामंजस्य में ही सौन्दर्यानुभूति की जा सकती है। रिचर्ड्स के अनुसार जो हमारे प्रवृत्तिमूलक आवेगों को संतुष्ट करता है, वही हमारे लिए मूल्यवान है।

रिचर्ड्स का मूल्य-सिद्धांत इच्छाओं की संतुष्टि पर आधारित है। साहित्य का मूल्य हमारे आवेगों में संगति और संतुलन स्थापित करने में निहित होती है। रिचर्ड्स कहते हैं कि परस्पर विरोधी आवेग (Impulses) संघर्षरत होकर एक दूसरे की संतुष्टि में बाधक बनकर एक दूसरे की निराशा (Frustration) का कारण बन जाते हैं, जो व्यक्ति और समाज के लिए हानिकारक हैं। अतः, परस्पर विरोधी आवेगों

में सामंजस्य (Equilibrium), संतुलन आवश्यक है। रिचर्ड्स इसप्रकार का संतुलन और समन्वय कला का गुण मानते हैं। रिचर्ड्स की दृष्टि में वह काव्य और भी महत्वपूर्ण और मूल्यवान है, जो ऐसी आकांक्षाओं को संतुष्ट करती है, जिससे कम-से-कम वृत्तियाँ क्षुब्ध होती हैं।

रिचर्ड्स की दृष्टि में वह संतुलन और सामंजस्य श्रेष्ठ है, जिसमें मानवीय संभावनाएँ कम-से-कम नष्ट होती हैं। रिचर्ड्स के अनुसार यह संतुलन और सामंजस्य दो रूपों में घटित होता है-पहला, अलगाव या अपवर्जन (Exclusion) के द्वारा और दूसरा समाहार या समावेशन (Inclusion) के द्वारा। 'अलगाव' के अनुसार अधिकाधिक विरोधी तथा अनुकूल आवेगों को अलग कर सीमित आवेगों में ही सामंजस्य स्थापित किया जाता है। इस आधार पर कविता के भी दो रूप हो जाते हैं-अपवर्जी या बहिर्वेशी कविता और समावेशी या अंतर्वेशी कविता। रिचर्ड्स के अनुसार दूसरे प्रकार का सामंजस्य और दूसरे प्रकार की कविता अधिक मूल्यवान होती है।

रिचर्ड्स आवेगों की विश्रांति में काव्य की मूल्यवत्ता स्वीकार करते हैं। रिचर्ड्स के अनुसार कवि की सुघटित, सुव्यवस्थित, समन्वित, संतुलित मनःस्थिति से उद्भूत कला भावक की मनःस्थिति को उसी रंग में रंग देती है और आवेगों के संघर्ष की विरति से भावक को परम शांति और विश्रांति (Poise) की अनुभूति होती है। रिचर्ड्स ने संतुलन के कार्य को सिनेस्थीसिस (Synaesthesis) कहा है। उनका विचार है कि सिनेस्थीसिस' ताजगी देती है, थकान नहीं।' डॉ. भगीरथ मिश्र ने लिखा है कि इस दृष्टि से रिचर्ड्स के मूल्य-सिद्धांत को सिनेस्थीसिस का सामंजस्य या संतुलन का सिद्धांत भी कहा जा सकता है।

मूल्य-सिद्धांत के अंतर्गत रिचर्ड्स यह मान्यता प्रतिपादित करते हैं कि कोई भी सामंजस्य हो, फिर वह क्षणिक भी क्यों न हो, उसमें हम सौंदर्यानुभूति पाते हैं। रिचर्डस एक उदाहरण देते हुए इस तथ्य की पुष्टि करते हैं-'मूर्ख के संग रात, छैल संग एक घड़ी। (अर्थात् अरसिक के साथ रातभर में जो आनंद नहीं मिलता, वह रसिक (छैल) के साथ एक घड़ी में मिल जाता है। रिचर्ड्स कला को एकान्तिक अथवा एकांगी नहीं मानते हैं। काव्य और कलाएँ मानव के अन्य व्यापारों से सम्बद्ध हैं, उनसे भिन्न नहीं। किसी भी मानव-क्रिया का मूल्य इस तथ्य से निर्धारित होता है कि वह किस हद तक मानव मनोवेगों में संतुलन, सामंजस्य या व्यवस्था उत्पन्न करने में समर्थ है। निःसंदेह, इस दृष्टि से काव्य और कला-सर्जना मूल्यवान मानव-क्रियाएँ हैं।

रिचर्ड्स के मतानुसार कलाएँ संप्रेषणात्मक क्रियाओं का सर्वोत्तम रूप होती हैं (The arts are the supreme form of communicative activity)। कवि के मनोवैज्ञानिक अनुभूति-मूल्य की स्थापना काव्य में सामाजिक दृष्टि से हितकर एवं कल्याणकारी होनी चाहिए। रिचर्ड्स का यह भी मत है कि काव्य में कवि के मनोवैज्ञानिक काव्य-मूल्य की स्थापना या प्रतिष्ठा हेतु भावोत्तेजक भाषा वांछनीय है। भावोत्तेजक भाषा के विशिष्ट प्रयोग से ही उसके भीतर का परस्पर विरोधी आवेगों का सामंजस्य ज्यों-का-त्यों (अर्थात् यथावत् बना रहता है और उसमें मूल्यवान सौंदर्यानुभूति संभव हो पाती है। रिचर्ड्स की दृष्टि में यही मनोवैज्ञानिक काव्य-मूल्य है।

6.1.3 काव्य भाषा और विचार

रिचार्ड्स की धारणा है कि भाषा, जीवन और साहित्य, दोनों में जो कार्य करती है, वह है अर्थ-वहन का। अर्थ-निर्देश करते समय उसने अपने वाक्य के अर्थ का विश्लेषण किया है और फिर उसके भी अर्थ का विश्लेषणात्मक निदान प्रस्तुत किया है। उसने यह भी बताया है कि किसी शब्द का अर्थ इस तथ्य से निर्धारण पाएगा कि उसका प्रयोग किस सन्दर्भ में किया गया है। उन्होंने शब्दों के विविध स्थलों पर प्रयोग के फलस्वरूप उत्पन्न हुई अर्थ-विविधता पर भी विचार किया है। उसने बताया है कि शब्द विशेष का प्रयोग अनेक भिन्न विचारों तथा भावनाओं को जन्म दे सकता है और सुननेवालों पर विविध प्रतिक्रियाएँ देखी

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

जा सकती हैं। कहने का आशय यह है कि एक शब्द का क्षेत्र विविधता की दृष्टि से बहुत विस्तृत होता है। परन्तु यह विस्तार तभी तक रहता है जब वह शब्द अकेला हो और उसका क्षेत्र-वैविध्य तभी संकुचित हो जाता है जब उसे एक वाक्य में या कहीं ओर रख दिया जाता है। इस प्रकार से उसने शब्द, अर्थ तथा उनसे व्यंजित प्रवृत्ति का महत्व स्वीकार किया है। भाषा के संबंध में उसने कहा कि सुसंबद्ध शब्दों द्वारा निर्मित छंदबद्ध काव्य-भाषा गद्य से अधिक प्रभावपूर्ण होती है।

6.1.4 कल्पना शक्ति

काव्य रचना में, भाषा के विशिष्ट प्रयोग आदि में कवि की कल्पना-शक्ति सहायक होती है। इस प्रकार कल्पना शक्ति कविता के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण शक्ति है। मगर रिचर्ड्स ने कल्पना शक्ति को कॉलरिज के समान दर्शन के स्तर पर ग्रहण नहीं किया। उसने कल्पना पर व्यावहारिक दृष्टि से विचार करते हुए उसके कार्यों का निर्देश किया है। उसके अनुसार कल्पना के छह गुण हैं। कविता सहृदय में मनोवेगों को जगाती है, उनकी संयोजना और व्यवस्था करती है और उनमें सामरस्य की स्थापना करती है। कविता और मनोवेगों के बीच बिंब की स्थिति है। उस संश्लिष्ट अर्थ या चित्र की स्थिति है जो सहृदय के मन में पैदा होती है। इन चाक्षुष बिंबों का उत्पादन कल्पना के द्वारा होता है और इन चाक्षुष बिंबों को जगाने वाली भाषा है : भाषा का भावोद्बोधक प्रयोग।

कवि केवल स्वानुभूति की अभिव्यक्ति ही नहीं करता, लोकानुभूति को भी चित्रित करता है। लोकानुभूति यानी अन्य व्यक्तियों की अनुभूति का चित्रण करने में भी कल्पना का ही उपयोग होता है। कल्पना के सहारे कवि अन्य व्यक्ति के परिवेश का, परिस्थितियों का इस रूप में चित्रण करता है कि वह उसकी अनुभूति को व्यक्त कर सके। अन्यों की अनुभूति को समझने केलिए, उन्हें परखने केलिए, उसे आत्मसात करने केलिए भी कवि कल्पना का प्रयोग करता है।

भाषा का अलंकरण कल्पना का तीसरा कार्य है। कविजन भाषा का, जो कि एक सामाजिक संस्था है, विशिष्ट उपयोग करता है जिसमें विशिष्ट शब्दों का चयन, उनकी संयोजना, छंद एवं लय की उद्भावना, अलंकारों का प्रयोग आदि शामिल होते हैं। कुशल एवं अलंकारों का उपयुक्त प्रयोग करता है जो समग्र रचना से अन्वित होकर उसके प्रभाव को उद्दीप्त करते हैं। यह कार्य कल्पना के द्वारा संपन्न होता है।

कल्पना का उपयोग रचना के विविध तत्वों के परस्पर सामंजस्य में भी होता है। काव्यभाषा एवं अर्थ, जो अपने आप में भी इकाई नहीं है, संयुक्त रूप है। कृति में भाषा के विविध तत्वों की जैसे शब्द, प्रतीक, नाद, लय, आदि की तथा अर्थ के विविध तत्वों की- विचार, दृश्य, घटना आदि की समन्विति है। ये सभी तत्व परस्पर संपृक्त होकर भी रचना को जन्म देते हैं। इन तत्वों को संयुक्त करने वाली शक्ति भी कल्पना ही है।

कल्पना का अंतिम कार्य है: विरोधों का समाहार। काव्य में वस्तु तत्व एवं विषयी तत्व दोनों की विरोधी सत्ता है। शब्द और अर्थ के बीच में द्वंद्व रहता है, विचार एवं भाव में भी संघर्ष विद्यमान है। कल्पना वस्तु तत्व और विषयी तत्व को, भाषा तथा अर्थ को, विचार तथा भाव को समन्वित करती हुई उनके विरोधों को दूर करती है।

कल्पना शक्ति के उपर्युक्त विवेचन में रिचर्ड्स ने कल्पना के सभी कार्यों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है और इस प्रयास में उसने काव्यशास्त्र की पूर्ववर्ती परंपरा का पूरा-पूरा उपयोग किया है।

6.1.5 प्रेषणीयता का सिद्धान्त

रिचर्ड्स का काव्य सम्बन्धी दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त 'प्रेषणीयता का सिद्धान्त' (a theory of communication) है। जैसा कि स्वयं रिचर्ड्स ने बताया है, किसी भी काव्य की समीक्षा के लिए मूल्य के वैज्ञानिक आधार एवं प्रेषणीयता-दोनों को आधार बनाना चाहिए। 'प्रेषणीयता' शब्द का प्रचार समीक्षा के क्षेत्र में रिचर्ड्स से बहुत पूर्व हो चुका था, किन्तु इसका अर्थ स्पष्ट नहीं था। इसके सम्बन्ध में अनेक

रहस्यात्मक बातें प्रचलित थीं। कुछ लोग ऐसा समझते थे कि प्रेषणीयता में कवि की अनुभूति पाठक के हृदय में इस प्रकार संक्रमित की जाती है, जैसे कि एक सिक्का एक जेब से दूसरी जेब में चला जाता है। रिचर्ड्स ने इन धारणाओं का विरोध करते हुए स्पष्ट रूप में प्रतिपादित किया कि प्रेषणीयता कोई अद्भुत या रहस्यमय व्यापार नहीं है, अपितु मन की एक सामान्य क्रिया मात्र है। उनके शब्दों में- All that occurs is that under certain conditions, separate minds have closely similar experiences,' (अर्थात् प्रेषणीयता में जो कुछ होता है, वह यह है कि कुछ विशेष परिस्थितियों में विभिन्न मस्तिष्क प्रायः एक जैसी अनुभूति प्राप्त करते हैं। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि रिचर्ड्स ने इन विभिन्न अनुभूतियों में आधार की ही एकता मानी है उन अनुभूतियों का पारस्परिक ऐक्य उसने स्वीकार नहीं किया है। इसका और अधिक स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने लिखा है कि जब किसी वातावरण-विशेष से एक व्यक्ति का मस्तिष्क प्रभावित होता है तथा दूसरा उस व्यक्ति की क्रिया के प्रभाव से ऐसी अनुभूति प्राप्त करता है कि जो पहले व्यक्ति की अनुभूति के समान होती है तो उसे प्रेषणीयता कहते हैं। वस्तुतः किसी अन्य की अनुभूति को अनुभूत करना ही प्रेषणीयता है।

प्रेषणीयता के आधारभूत तथ्यों की मीमांसा करते हुए रिचर्ड्स महोदय ने इसका श्रेय मुख्यतः कवि की वर्णन-क्षमता एवं श्रोता या पाठक की ग्रहण-शक्ति को दिया है। किन्तु इन दोनों के अतिरिक्त और भी बहुत से कारण हैं। सामान्यतः (विषय का) दीर्घ एवं घनिष्ठ परिचय, व्यापक जानकारी, जीवन की परिस्थितियों एवं अनुभूतियों की समानता आदि के कारण भी प्रेषणीयता सम्भव है। कुछ विशिष्ट एवं जटिल विषयों में सफल प्रेषणीयता के लिए यह आवश्यक है कि सम्बन्धित व्यक्तियों के अतीत-कालीन संचित अनुभव (या कहिए-संस्कार) बहुत कुछ एक से हों। साथ ही किसी एक विषय की प्रेषणीयता पर इस बात का भी गहरा प्रभाव पड़ता है कि उसे कौन से दूसरे विषयों एवं तत्वों के साथ समन्वित करके प्रस्तुत किया गया है। यही कारण कि रिचर्ड्स के विचार से विचारात्मक एवं विश्लेषणात्मक निबन्धों के भावोद्दीप्ति का समन्वय नहीं होना चाहिए। अन्यथा वे अस्पष्ट हो जायेंगे। कला के लिए प्रेषणीयता अत्यन्त आवश्यक है, किन्तु क्या इसके लिए कलाकार को विशेष प्रयत्न करना चाहिए? यदि कलाकार स्वयं अपनी कला को प्रेषणीय बनाने का प्रयत्न करने लगेगा तो इससे सम्भव है कि उसकी रचना में कृत्रिमता आ जाय, क्योंकि कला में स्वाभाविकता का गुण तभी सम्भव है; जब कि कलाकार उसमें किसी प्रकार का बाह्य प्रयत्न न करे। अतः रिचर्ड्स महोदय ने एक ओर तो यह माना है कि कला में प्रेषणीयता आवश्यक है, किन्तु कलाकार को इसके लिए, विशेष प्रयत्न नहीं करना चाहिए। सही बात तो यह है कि यदि कलाकार तल्लीनतापूर्वक कला की रचना करता है तो उसमें प्रेषणीयता स्वतः ही आ जायेगी।' कलाकार जितना अधिक सामान्य रूप से कार्य करेगा, अपनी अनुभूतियों के ठीक प्रकार से प्रस्तुतीकरण में वह उतना ही अधिक सफल होगा तथा उतने ही अधिक तदनुकूल भाव पाठकों के मन में उत्पन्न होंगे।'

प्रेषणीयता का सिद्धान्त कला के इस महत्व की ओर भी संकेत करता है कि उसमें मानव जाति के अतीतकालीन अनुभव संचित हैं या यों कहिए कि 'हमारे अतीतकालीन अनुभव के मूल्यांकन सम्बन्धी महत्वपूर्ण निष्कर्ष हैं।' अतः कलाओं का महत्व कभी न्यून नहीं हो सकता।

Critical Overview / अवलोकन

काव्य-मूल्य-रिचर्ड्स कविता का मूल्य उसके मन को प्रभावित करने की क्षमता पर निर्भर मानते हुए यह मत प्रकट करता है कि जो कविता पाठक या श्रोता के मन को जितना अधिक प्राभावित कर पाएगी, जिसमें संप्रेषणीयता जितनी अधिक होगी, वह उतनी ही उत्कृष्ट कहलाएगी। रिचर्ड्स मनोवेगों के दो विभिन्न प्रकार मानता है-भूख, वासना अथवा प्रेषणा (Appetency) और विमुखता (Aversion)। इनमें से प्रथम प्रकार के आवेग प्रवृत्तिमूलक होते हैं और उनमें

हम कुछ पाने के लिए उद्यत हो उठते हैं तथा दूसरे निवृत्तिमूलक होते हैं और उनमें कुछ वस्तुओं के प्रति हमारे मन में विमुखता उत्पन्न हो जाती है। रिचर्ड्स उन संप्रषणाओं को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानता है जो कम-से-कम अन्वेषणओं को अवरुद्ध या विनष्ट किए बिना अस्तित्व कायम रखती है।

कलाकृति की महत्ता तभी है जब वह अपने युग में संप्रेषण का सशक्त माध्यम हो। इस प्रकार रिचर्ड्स के अनुसार कलाएँ किसी दिव्यानंद अथवा चेतना के विशिष्ट क्षणों की अनुभूति नहीं है। जब समाज संघर्षशील परिस्थितियों से सामना करता है तब कला भी उसकी सहायता करती है। कला का अनुभव क्रीड़ा की भांति मात्र क्षणिक नहीं होता।

Recap / पुनरावृत्ति

- मानव-मन के आवेगों को 2 वर्गों में रखा है
- निवृत्तिमूलक आवेग
- प्रवृत्तिमूलक आवेग
- साहित्य का मूल्य हमारे आवेगों में संगति और संतुलन स्थापित करने में निहित होती है।
- कल्पना शक्ति पर रिचर्ड्स का विचार
- किसी अन्य की अनुभूति को अनुभूत करना ही प्रेषणीयता है।
- संप्रेषण सिद्धांत

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मूल्य सिद्धांत किसका है?
2. रिचर्ड्स ने मानव के संपूर्ण मनोवेगों को कितने भागों में बांटा है?
3. करुणा, प्रेम आदि किसप्रकार के आवेग हैं?
4. आई.ए. रिचर्ड्स का जन्म कब हुआ?
5. रिचर्ड्स का काव्य सम्बन्धी दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त कौन-सा है?
6. 'The arts are the supreme form of communicative activity.' यह किसका कथन है?
7. आई.ए. रिचर्ड्स के स्थायी महत्त्व की अधिकारिणी ग्रंथ का नाम?
8. 'द फाउंडेशन ऑफ एस्थेटिक्स' किसका आलोचनात्मक ग्रन्थ है?

Answers / उत्तर

1. आई.ए. रिचर्ड्स
2. दो
3. प्रवृत्तिमूलक
4. 26 फरवरी सन् 1893
5. 'प्रेषणीयता का सिद्धान्त'
6. आई.ए. रिचर्ड्स
7. 'प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म'
8. आई.ए. रिचर्ड्स

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. आई.ए. रिचर्ड्स के मूल्य सिद्धांत का विश्लेषण कीजिए।
2. काव्य भाषा के संबंध में रिचार्ड्स का मत व्यक्त कीजिए।
3. संप्रेषण के बारे में रिचार्ड्स का विचार स्पष्ट कीजिए।
4. आई.ए. रिचर्ड्स के कल्पना शक्ति संबंधी विचारों की समीक्षा कीजिए।
5. आई.ए. रिचर्ड्स के कला संबंधी दृष्टिकोण पर टिप्पणी लिखिए।

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

इकाई 2 टी.एस. इलियट का निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- टी.एस. इलियट के बारे में समझते हैं
- पूर्वी परंपरा के बारे में समझते हैं
- निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत समझते हैं
- वस्तुनिष्ठ समीकरण को समझते हैं

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

इलियट के पहले 19वीं शती में अंग्रेजी में जिस रोमांटिक समीक्षा का प्रचालन था वह कवि की वैयक्तिकता और कल्पनाशीलता को विशेष महत्व देती थी। 19वीं शती के अंतिम चरण में वाल्टर पेटर और ऑस्कर वाइल्ड ने 'कलावाद' को अत्यधिक महत्व दिया।

(अर्थात् 19वीं शती की अंग्रेजी समीक्षा कृति के स्थान पर कवि और उसकी वैयक्तिकता को महत्त्व देती थी।

टी.एस. इलियट कवि एवं नाटककार होने के साथ साथ आलोचक भी था। आलोचक के रूप में उसने पश्चिम के काव्य-चिन्तन पर गंभीर प्रभाव डाला। इसका कारण यह है कि उसकी आलोचना किसी एकांगी सूत्र को ग्रहण कर उसी का विस्तार नहीं करती। उसके अनेक पक्ष हैं, इसलिए उसकी आलोचना का विशिष्ट स्थान है। यद्यपि आपका पहला काव्यसंग्रह 'प्रफ्रॉक ऐंड अदर आब्जॅरवेशंस' 1917 में प्रकाशित हुआ, तथापि आपको वास्तविक ख्याति 'द वेस्टलैंड' (1922 द्वाराप्राप्त हुई) मुक्त छंद में लिखे तथा विभिन्न साहित्यिक संदर्भो एवं उद्धरणों से पूर्ण इस काव्य में समाज की तत्कालीन परिस्थिति का अत्यंत नैराश्यपूर्ण चित्र खींचा गया है। इसमें कवि ने जान बूझकर अनाकर्षक एवं कुरूप उपमानों का प्रयोग किया है जिससे वह पाठकों की भावना को ठेस पहुँचाकर उन्हें समाज की वास्तविक दशा का ज्ञान करा सके। उसके मत में संसार एक 'मरूभूमि' है आध्यात्मिक -दृष्टि से अर्नुवर तथा भौतिक दृष्टि से अस्त व्यस्त।

Keywords / मुख्य बिन्दु

परंपरा की अवधारणा,निर्वैयक्तिकता के सिद्धांत,व्यक्तिवादिता, वस्तुनिष्ठ समीकरण

Discussion / चर्चा

6.2.1 टी.एस. इलियट

अंग्रेजी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि एवं समीक्षक के रूप में ख्यात हैं टी.एस.इलियट। उन्होंने अपनी प्रतिभा, विद्वत्ता एवं चिन्तन क्षमता के बल पर अंग्रेजी-समीक्षा को एक नयी दृष्टि और नयी दिशा दी।

टी.एस. इलियट (Thomas Stearns Eliot) का जन्म अमेरिका के सेन्टलुई नगर में 22, सितम्बर सन्1888 में हुआ था। उन्होंने हार्वर्ड विश्वविद्यालय से सन् 1910 में एम.ए. किया तथा उसके पश्चात वहीं उन्होंने संस्कृत एवं पाली भाषाओं के साहित्य का भी अध्ययन किया। तत्पश्चात् वे जर्मनी होते हुए लन्दन पहुँचे और वहीं बस गये। सन् 1925 में लन्दन के प्रसिद्ध प्रकाशन-संस्थान 'फेबर एण्ड फेबर' के निदेशक पद का कार्यभार संभालने के अतिरिक्त उन्होंने 'दी क्राइटीरियन ('The Criterian') त्रैमासिक पत्रिका का सम्पादन भी सन् 1922 से 1939 तक किया। इस पत्रिका के माध्यम से न केवल उनकी कविताएँ अपितु उनके समीक्षात्मक लेख भी समय-समय पर प्रकाशित होते रहे। सन् 1948 में उन्हें साहित्य-सेवा के उपलक्ष्य में विश्व का सुप्रसिद्ध नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ तथा सन् 1965 में उनकी जीवनलीला समाप्त हो गयी।

इलियट के जीवनवृत्त की उपर्युक्त संक्षिप्त रूप-रेखा से उनके बहुआयामी व्यक्तित्व का पता चलता है। उनका जन्म अमेरिका में हुआ, उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का विकास क्रमशः जर्मनी, फ्रांस और इंग्लैंड में हुआ तथा वहीं से उन्होंने अंग्रेजी-भाषा और साहित्य की सर्वोच्च उपाधि प्राप्त की। इसके अतिरिक्त उन्होंने संस्कृत और पाली भाषा के साहित्य का भी अनुशीलन किया। इस प्रकार वे किसी एक देश, एक भाषा और एक साहित्य की सीमाओं में आबद्ध नहीं रहे। उनका दृष्टिकोण जीवन भर सतत विकासोन्मुख एवं नव-नवोन्मेषकारी बना रहा। ऐसी स्थिति में कहा जा सकता है कि नोबल पुरस्कार-समिति ने उन्हें पुरस्कृत करके इलियट का ही नहीं स्वयं नोबल पुरस्कार के भी गौरव में अभिवृद्धि की।

आलोचक के रूप में - यद्यपि इलियट मूलतः कवि थे और उनकी कविताओं का वीं शताब्दी के काव्य में महत्वपूर्ण स्थान है, किन्तु यहाँ हम इसकी चर्चा मुख्यतः आलोचक के रूप में कर रहे है-अतः आगे उनकी आलोचनात्मक कृतियों का ही विवरण प्रस्तुत किया जाता है। उन्होंने आलोचना के क्षेत्र में मुख्यतः निबन्ध, व्याख्यान (लिखित रूप में) एवं पुस्तक समीक्षाएँ प्रस्तुत कीं, वैसे उनके चुने हुए निबन्धों के संग्रह भी पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हुए हैं; यथा-'Essays on Poetry and Criticism'(1920), 'The Use of Poetry and the Use of Criticism'(1933), 'The Selected Essays'(1932), 'What is a Classic' (1945), 'Essays: Ancient and Modern'(1951), On Poetry & Poets'(1957), आदि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इलियट ने व्यवस्थित रूप में कोई समीक्षा सम्बन्धी ग्रंथ नहीं लिखा और न ही किसी विशेष साहित्य-सिद्धान्त का प्रतिपादन विधिवत किया। उनके समीक्षा सम्बन्धी दृष्टिकोण एवं विचारों की अभिव्यक्ति अलग-अलग लेखों में विश्रृंखलित रूप में ही होती रही किन्तु फिर भी अपने दृष्टिकोण की नूतनता एवं विचारों की मौलिकता के कारण उन्होंने अपने युग के एक श्रेष्ठ समीक्षक का गौरव प्राप्त किया।

6.2.2 परम्परा और व्यक्तित्व

इलियट ने अपने युग के कतिपय अन्य कवियों एवं समीक्षकों की इस धारणा का खंडन किया कि काव्य में परम्परा की अपेक्षा कवि की वैयक्तिक प्रतिभा का अधिक महत्व होता है। उनके मतानुसार कविता को व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति मानना अनुचित है। यदि कविता व्यक्ति के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति हो जायेगी तो फिर उसे सामाजिक किस प्रकार ग्रहण कर सकेगा? इलियट से पूर्व स्वच्छंदतावादी कवि काव्य का लक्ष्य एकमात्र आत्माभिव्यंजना को मानते हुए परंपरा को

बिलकुल ठुकरा चुके थे। इलियट ने इस प्रयास का विरोध करते हुए स्पष्ट किया कि 'परम्परा' का अर्थ 'रूढ़ि' नहीं है और न ही परम्परा का अर्थ काव्य के संदर्भ में, पूर्ववर्ती कवियों का अनुसरण या अंधानुकरण है। परम्परा से तात्पर्य है-पूर्ववर्ती इतिहास का बोध।

इलियट के विचार से परम्परा का सम्बन्ध प्रत्येक जाति की संस्कृति, धर्म, दर्शन एवं जीवन-दृष्टि से है। यह परंपरा कभी मरती नहीं अपितु सतत विकासोन्मुख रहती है। किसी भी व्यक्ति को सफल कवि या कलाकार बनने केलिए परम्परा का बोध प्राप्त करता आवश्यक है। कुछ लोग इस गलत धारणा से ग्रस्त हैं कि परंपरा की उपलब्धि उन्हें जन्म से हो जायेगी, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। इलियट ने स्पष्ट रूप में निर्देश किया है कि परपरा को चेष्टापूर्वक अर्जित करना पड़ता है और इसके लिए उसे पूर्ववर्ती महा कलाकारों एवं साहित्यकारों की कृतियों का गहन अध्ययन करना पड़ता है एवं साथ ही उसे अपने युग की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से भी अवगत होना पड़ता है।

निर्वैयक्तिकता (objectivity) के सिद्धान्त: इलियट के निर्वैयक्तिकता (objectivity) के सिद्धान्त का प्रतिपादन रोमैंटिक कवियों की व्यक्तिवादिता (subjectivity) के विरोध में हुआ। इलियट, एजरा पाउण्ड के विचारों से काफी प्रभावित थे। एजरा पाउण्ड की मान्यता थी कि कवि वैज्ञानिक के समान ही निर्वैयक्तिक और वस्तुनिष्ठ होता है। कवि का कार्य आत्मनिरपेक्ष होता है। इस मत से प्रभावित इलियट अनेकता में एकता बाँधने के लिए परम्परा को आवश्यक मानते थे, जो वैयक्तिकता का विरोधी है। वह साहित्य के जीवन्त विकास के लिए परम्परा का योग स्वीकार करते थे, जिसके कारण साहित्य में आत्मनिष्ठ तत्त्व नियंत्रित हो जाता है और वस्तुनिष्ठ प्रमुख हो जाता है।

इलियट ने 'निर्वैयक्तिकता' का अर्थ कवि के व्यक्तिगत भावों की विशिष्टता का सामान्यीकरण बताया है। अनके अनुसार कवि अपनी तीव्र संवेदना और ग्रहण क्षमता से अन्य लोगों की अनुभूतियों को आयात कर लेता है, पर वे आयत अनुभूतियां उसकी निजी अनुभूतियाँ हो जाती हैं। जब वह अपने स्वयुक्त अथवा चिन्तन द्वारा आयत अनुभवों को काव्य में व्यक्त करता है तो वे उसके निजी अनुभव होते हुए भी सबके अनुभव बन जाते हैं। कविता के घटक-तत्व, विचार, अनुभूति, अनुभव, बिम्ब, प्रतीक आदि सब व्यक्ति के निजी या वैयक्तिक होते हैं। कलाकार जब अपनी तीव्र संवेदना और ग्रहण शक्ति के माध्यम से अपने अनुभवों को काव्य रूप में प्रकट करता है, तो वे व्यक्तिगत होते हुए भी सबके लिए (अर्थात् सामान्य (सार्वजन्य) बन जाते हैं। कवि उनके भार से मुक्त हो जाता है या कहिए कि ये तत्व कवि की वैयक्तिकता से बहुत दूर चले जाते हैं या कहिए कि निर्वैयक्तिक हो जाते हैं। भाव ही नहीं कविता के माध्यम से कवि अपनी वैयक्तिक सीमाओं से भी मुक्त हो जाता है, उसका स्वर एक व्यक्ति का स्वर न रहकर विश्वमानव का सार्वजनीन स्वर बन जाता है। उदाहरण के लिए कई तत्वों से चटनी बनती है पर चटनी तैयार होने पर सभी तत्त्व अपने स्वाद से मुक्त हो जाते हैं।

पाश्चात्य जगत उक्त धारणाओं से अचंभित होकर इन्हें हास्यास्पद एवं स्वतः व्याघात दोष से युक्त भी घोषित किया। पश्चिमी साहित्य चिंतन स्तर के अनुसार ऐसा होना स्वाभाविक भी था क्योंकि इस सिद्धान्त को वही व्यक्ति गहराई से समझ सकता है जिसने भारतीय आचार्य भट्टनायक के साधारणीकरण एवं अभिनवगुप्त के अभिव्यक्तिवाद का अनुशीलन किया है। रस सिद्धान्त के अंतर्गत जो बात साधारणीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत कही गई है वही बात निर्वैक्तिकता के सिद्धांत के अंतर्गत कही गई है।

6.2.3 वस्तुनिष्ठ समीकरण

मूर्त-विधान(Objective Correlative) का प्रयोग इलियट ने शेक्सपियर के प्रसिध्द नाटक हैमलेट की आलोचना के प्रसंग में किया है। इलियट की दृष्टि में हैमलेट असफल रचना है, क्योंकि इसमें भाव का समुचित संप्रेषण नहीं हो पाया है इसका कारण मूर्त-विधान अपेक्षित होना। इसी प्रसंग में 'वस्तुमूलक प्रतिरूपता' का सिध्दान्त प्रतिपादित किया है। इलियट

का कथन है, कला में भाव-प्रदर्शन का एक ही मार्ग है और वह है वस्तुनिष्ठ समीकरण। दूसरे शब्दों में, ऐसी वस्तु-संघटना, स्थिति, घटना-श्रृंखला प्रस्तुत किया जाए जो उस नाटकीय भाव का सूत्र हो ताकि ज्यों ये बाह्य वस्तुएँ जिनका पर्यवसान मूर्त मानस-अनुभव में हो, प्रस्तुत की जाए त्यों ही भावोद्रेक हो जाए। नाटककार या कवि जो कुछ कहना चाहता है, उसे वह वस्तुओं की किसी संघटना, किसी स्थिति, किसी घटना-श्रृंखला के द्वारा ही कहता है। वह अपनी संवेदनाओं और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए वस्तुमूलक चिह्नों से काम लेता है। फलतः अमूर्त भावनाएँ मूर्त रूप में प्रकट हो जाती है। इन मूर्त चिह्नों अथवा प्रतीकों से ठीक वही भावनाएँ जाग्रत होती है जो कवि के मन में जाग्रत हुई थी। काव्य की सफलता इसी में है कि भावनाओं और उनके मूर्त-विधान में पूर्ण सामंजस्य और एकरूपता हो। अतः इलियट इस वस्तुनिष्ठ समीकरण को 'विभाव-विधान' भी कहते हैं।

Critical Overview / अवलोकन

परम्परा गतिशील चेतना तथा गतिशील सर्जनात्मक सम्भावनाओं की समष्टि है। वह हमें नवीन का मूल्यांकन करने की कसौटी प्रदान करती है तथा प्राचीनता के विकास के साथ-साथ मौलिकता का सृजन करती है। अतीत को वर्तमान में देखना रूढ़िवादिता नहीं मौलिकता है। वर्तमान काल का मूल्यांकन अतीत के परिप्रेक्ष्य में ही सम्भव है। परम्परा का सबसे बडा लाभ यह है कि हमें यह ज्ञात होता है कि मौलिकता लाने के लिए हमें क्या करना चाहिए। कवि और कलाकार को परम्परा की जानकारी होने पर अपने कृतित्व का मूल्यांकन करने में सहायता मिलती है। परम्परावादी होने का अर्थ है कला तथा साहित्य की पूर्ववर्ती धाराओं से अवगत होकर कला एवं साहित्य की रचना करना। परम्परा अतीत को वर्तमान से जोडकर ज्ञान का विस्तार करती है। निर्विवाद रूप से इलियट के काव्य सिद्धान्तों ने समीक्षा का महान उपकार किया है तथा विचार करने के लिए नए आयाम प्रदान किए है।

इलियट के निर्वैयक्तिकता (objectivity) के सिद्धान्त का प्रतिपादन रोमांटिक कवियों की व्यक्तिवादिता (subjectivity) के विरोध में हुआ। इलियट, एजरा पाउण्ड के विचारों से काफी प्रभावित थे। इलियट ने 'निर्वैयक्तिकता' का अर्थ कवि के व्यक्तिगत भावों की विशिष्टता का सामान्यीकरण बताया है। उनके अनुसार कवि अपनी तीव्र संवेदना और ग्रहण क्षमता से अन्य लोगों की अनुभूतियों को आयत कर लेता है, पर वे आयत अनुभूतियां उसकी निजी अनुभूतियाँ हो जाती हैं।

Recap / पुनरावृत्ति

- इलियट की समीक्षा सम्बन्धी दृष्टिकोण एवं विचारों की अभिव्यक्ति
- परंपरा की अवधारणा संबंधी सिद्धांत
- निर्वैयक्तिकता सिद्धांत
- कविता के घटक तत्व
- वस्तुमूलक प्रतिरूपता

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. इलियट का पहला काव्य संग्रह कौन सा है?
2. निर्वैयक्तिकता का अर्थ क्या है?
3. निर्वैयक्तिकता के सिद्धान्त का प्रतिपादन रोमांटिक कवियों के किसके विरोध में हुआ?
4. मूर्त-विधान का प्रयोग इलियट ने किस नाटक के प्रसंग में किया था?
5. इलियट को वास्तविक ख्याति किस ग्रंथ से मिला था?
6. 'द वेस्टलैंड' का प्रकाशन वर्ष कब है?
7. टी.एस. इलियट को नोबल पुरस्कार कब प्राप्त हुआ था?
8. टी.एस. इलियट के द्वारा संपादित त्रैमासिक पत्रिका का नाम?

Answers / उत्तर

1. 'प्रफ्रॉक ऐंड अदर आब्जॅरवेशंस'
2. व्यक्तिगत भावों की विशिष्टता का सामान्यीकरण है।
3. व्यक्तिवादिता
4. हैमलेट
5. 'द वेस्टलैंड'
6. 1922
7. 1948
8. 'दी क्राइटीरियन

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. निर्वैयक्तिकता के सिद्धांत पर टिप्पणी लिखिए।
2. टी एस. इलियट के आलोचना संबन्धी स्थापनाओं पर टिप्पणी लिखिए।
3. टी एस. इलियट के कला संबन्धी दृष्टिकोण पर टिप्पणी लिखिए।
4. टी.एस. इलियट के काव्य सिद्धांत पर चर्चा कीजिए।
5. आलोचना के क्षेत्र में टी.एस. इलियट का स्थान।

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

इकाई 3 वस्तुनिष्ठ समीकरण सिद्धांत

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- इलियट के वस्तुनिष्ठ समीकरण के सिद्धांत समझते हैं
- भाव के वस्तुपरक प्रतिमान का वर्णन समझते हैं
- वस्तुपरक प्रतिमान एवं भाव संबंध के सिद्धांत के बारे में समझते हैं
- रस-सिद्धांत एवं इलियट के वस्तुनिष्ठ समीकरण के संबंध के बारे समझते हैं

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

इलियट का कथन है, कला में भाव-प्रदर्शन का एक ही मार्ग है और वह है वस्तुनिष्ठ समीकरण। दूसरे शब्दों में ऐसी वस्तु-संघटना, स्थिति, घटना-श्रृंखला प्रस्तुत किया जाए जो उस नाटकीय भाव का सूत्र हो ताकि ज्यों ये बाह्य वस्तुएँ जिनका पर्यवसान मूर्त मानस-अनुभव में हो, प्रस्तुत की जाए त्यों ही भावोद्रेक हो जाए। नाटककार या कवि जो कुछ कहना चाहता है, उसे वह वस्तुओं की किसी संघटना, किसी स्थिति, किसी घटना-श्रृंखला के द्वारा ही कहता है। वह अपनी संवेदनाओं और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए वस्तुमूलक चिह्नों से काम लेता है। फलतः अमूर्त भावनाएँ मूर्त रूप में प्रकट हो जाती है। इन मूर्त चिह्नों अथवा प्रतीकों से ठीक वही भावनाएँ जाग्रत होती है जो कवि के मन में जाग्रत हुई थी। काव्य की सफलता इसी में है कि भावनाओं और उनके मूर्त-विधान में पूर्ण सामंजस्य और एकरूपता हो। अतः इलियट इस वस्तुनिष्ठ समीकरण को 'विभाव-विधान' भी कहते हैं।

Keywords / मुख्य बिन्दु

वस्तुनिष्ठ समीकरण, काव्य की वस्तुपरक सत्ता।

Discussion / चर्चा

6.3.1 वस्तुनिष्ठ समीकरण सिद्धांत

वस्तुनिष्ठ समीकरण और काव्य की वस्तुपरक सत्ता :

इलियट ने कविता में भाव एवं भावना की अभिव्यक्ति का विरोध नहीं किया। उसने वर्ड्सवर्थ की काव्य-परिभाषा का खंडन करते हुए यह कहा है कि कविता शांत अवस्था में अनुस्मृत भावों का सहज उच्छलन नहीं है क्योंकि कविता में एकाग्रता की अपेक्षा होती है तथा भावों का अनुस्मरण नहीं होता वरन भावों का संयोग होता है। और भावों की अभिव्यक्ति

को स्वीकार करते हुए वह यह कहता है कि कला के रूप में भाव की अभिव्यक्ति करने की एकमात्र विधि है, भाव के वस्तुपरक प्रतिमान का वर्णन। वस्तुपरक प्रतिमान के अंतर्गत वस्तुओं, परिस्थितियों और घटनाओं की श्रृंखला का संयोग होता है। यह संयोग एक विशेष भाव पैदा करता है तथा जहाँ भी यह संयोग होता है, वहीं वह विशेष भाव तुरंत जाग्रत हो जाता है। यहाँ भी इलियट ने भाव की अभिव्यक्ति केलिए भाव को जगाने वाली वस्तुओं आदि के चित्रण पर बल दिया है तथा भाव को जगाने का एकमात्र रास्ता यही माना है।

इलियट की उपर्युक्त मान्यता पर संस्कृत के रसशास्त्र का प्रभाव लक्षित होता है। इलियट ने तर्कशास्त्र, तत्वज्ञान, संस्कृत और पाली का अध्ययन किया। इसलिए स्वाभाविक ही है कि उसने संस्कृत के काव्यशास्त्र को भी पढ़ा हो और रस की अभिव्यक्ति की पद्धति से प्रभावित हुआ हो। रस-सिद्धांत एक ओर तो भाव से जुड़ा हुआ होने के कारण तथा दूसरी ओर विभावादि की वस्तुगत सामग्री पर बल देने के कारण विषयीगत प्रतिक्रया (रस) दो वस्तुगत योजना (विभावादि) से संबद्ध करके देखता है। इस प्रकार इलियट रस सिद्धांत में विषयीगत अनुभव तथा वस्तुगत पक्ष दोनों को समान रूप से महत्वपूर्ण मानता है। रस सिद्धांत के अनुसार रस की अभिव्यक्ति का यही एकमात्र रास्ता है। विभावादि की योजना के द्वारा रस की अभिव्यक्ति का यही एकमात्र रास्ता है। विभावादि की योजना के द्वारा रस की अभिव्यक्ति का दूसरा कोई रास्ता नहीं है। इलियट भी भाव की अभिव्यक्ति की एकमात्र पद्धति वस्तुपरक प्रतिमान की योजना में मानता है। दूसरी बात यह है कि जहां विशिष्ट विभावादि की योजना होगी, वहाँ उनके अर्थ के ग्रहण करते ही रस की अभिव्यक्ति भी होगी क्योंकि विभावादि का रस से नित्य एवं अविच्छिन्न संबंध है। यही बात इलियट ने भी कही है। जहाँ भी विशिष्ट भाव का फार्मूला – वस्तुपरक प्रतिमान होगा, वहाँ ऐन्द्रिय बोध के माध्यम से उसी भाव की अभिव्यक्ति होगी। इस प्रकार इलियट का वस्तुपरक प्रतिमान एवं भाव संबंध का सिद्धांत रस-सिद्धांत का ही रूपान्तर प्रतीत होता है।

आन्तरिकता तथा कवि के व्यक्तित्व से मुक्त करने के बाद इलियट ने काव्य को वस्तुपरक निर्मिती के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। इसी सन्दर्भ में वस्तुपरक प्रतिमान के सिद्धांत की प्रतिष्ठा को भी देखना उचित होगा। उसने काव्य की भाषा 'विट' पर तथा बिंब पर विशेष बल देते हुए काव्य के विषय में संरचनात्मक अवधारणा को व्यवस्थित रूप से देखने का प्रयास किया। बिंब के माध्यम से ही भाव की अभिव्यक्ति होती है। भाव अपने आप में अमूर्त एवं असंप्रेषणीय है। उसे संप्रेषण का साधन चाहिए और यह साधन है भाषा, जिसमें बिंब का महत्वपूर्ण स्थान है। बिंब का प्रयोग केवल भाव के संप्रेषण केलिए ही नहीं होता वरन विचार के संप्रेषण केलिए भी होता है। बिंब के मूल में भाव, विचार आदि समग्र रूप से विद्यमान रहते हैं और यही समग्रता बिंब के माध्यम से व्यक्त भी होती है। इस प्रकार वस्तुपरक प्रतिमान तथा बिंब संप्रेषण के आधारभूत एवं वस्तुपरक तत्व हैं। काव्य के वस्तुपरक विवेचन की पद्धति की अपार संभावनाएँ हैं और ये संभावनाएँ नयी समीक्षा के रूप में विकसित हुई।

Critical Overview / अवलोकन

इलियट ने काव्य को वस्तुपरक निर्मिती के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। इलियट ने कविता में भाव एवं भावना की अभिव्यक्ति का विरोध नहीं किया। उसने वर्ड्सवर्थ की काव्य-परिभाषा का खंडन करते हुए यह कहा है कि कविता शांत अवस्था में अनुस्मृत भावों का सहज उच्छलन नहीं है क्योंकि कविता में एकाग्रता की अपेक्षा होती है तथा भावों का अनुस्मरण नहीं होता वरन भावों का संयोग होता है।

इलियट भी भाव की अभिव्यक्ति की एकमात्र पद्धति वस्तुपरक प्रतिमान की योजना में मानता है। दूसरी बात यह है कि जहां विशिष्ट विभावादि की योजना होगी, वहाँ उनके अर्थ के ग्रहण करते ही रस की अभिव्यक्ति भी होगी क्योंकि विभावादि का रस से नित्य एवं अविच्छिन्न संबंध है।

Recap / पुनरावृत्ति

- वस्तुनिष्ठ समीकरण
- वस्तुनिष्ठ समीकरण और विभाव-विधान
- विशिष्ट भाव का फार्मूला
- भाव संप्रेषण

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. वस्तुनिष्ठ समीकरण सिद्धांत के प्रवर्तक कौन हैं?
2. हैमलेट किसके प्रसिध्द नाटक हैं?
3. इलियट की दृष्टि में हैमलेट किस प्रकार की रचना है?
4. वस्तुनिष्ठ समीकरण का अन्य नाम लिखिए?
5. वस्तुपरक प्रतिमान के अंतर्गत किन-किन बातों का संयोग होता है?
6. इलियट ने किसकी काव्य-परिभाषा का खंडन की?
7. वस्तुपरक प्रतिमान में किसके माध्यम से भाव की अभिव्यक्ति होगी?
8. इलियट के अनुसार कला में भाव-प्रदर्शन का मार्ग क्या है?

Answers / उत्तर

1. टी.एस. इलियट
2. शेक्सपियर
3. असफल
4. 'विभाव-विधान'
5. वस्तुओं, परिस्थितियों और घटनाओं की श्रृंखला का
6. वर्ड्सवर्थ
7. ऐन्द्रिय बोध
8. वस्तुनिष्ठ समीकरण।

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. आलोचना के क्षेत्र में कॉलेरिज का योगदान।
2. कॉलेरिज के कल्पना-सिद्धांत।
3. कॉलेरिज की रचनाएँ लिखिए।
4. ललित कल्पना पर विचार कीजिए।
5. विशिष्ट कल्पना पर विचार कीजिए।
6. उत्कृष्ट काव्य के गुण पर प्रकाश डालिए।

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

SGOU

इकाई 4 नयी समीक्षा

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- नयी समीक्षा की शुरुआत के बारे में समझते हैं
- आलोचना की निरपेक्ष दृष्टि समझते हैं
- काव्यभाषा का वैशिष्ट्य समझते हैं
- नयी समीक्षा के मूल्यांकन समझते हैं

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

नयी समीक्षा का विकास बीसवीं शती के आरंभ में आन्दोलन के रूप में हुआ। इसका आरंभ अमेरिका में हुआ और फिर इसका प्रचार-प्रसार हुआ। प्रायः यह स्वीकार किया जाता है कि जान को रैंसम ने 'न्यू क्रिटिसिज्म' नाम से एक नयी समीक्षा-दृष्टि का विकास किया और उन्हेंने सबसे पहले न्यू क्रिटिसिज्म' शब्द का प्रयोग किया। जिसके पर्याय के रूप में हिन्दी में 'नयी आलोचना' या 'नयी समीक्षा' का प्रचलन हुआ। किन्तु सबसे पहले प्रोफेसर स्पिंगार्न ने 1910 ई. में इस नाम का प्रयोग किया था और इस बात पर बल दिया था कि समीक्षक को कलाकृति के विवेचन के लिए एक नयी विवेचन-दृष्टि का उपयोग करना चाहिए।

नयी समीक्षा के आन्दोलन के अंतर्गत गिने जाने वाले सभी आलोचकों में मतैक्य नहीं है। उनमें परस्पर मतभेद है, मगर फिर भी बुनियादी समानता के कारण उनकी आलोचनात्मक कृतियों को नयी समीक्षा के अंतर्गत रखा गया। जान क्रो रैंसम (जन्म 1888 ई.) एलेन टेट (जन्म 1899 ई.), आर पी ब्लैकमर (1904 ई.) रोबर्ट पेन वारेन (जन्म 1805 ई.) क्रिमंथ बुक्स (जन्म 1906 ई.) तथा विलियम एम्पसन (जन्म 1909 ई.) प्रमुख नए समीक्षक माने जाते हैं। इनमें मूलभूत समानता यह है कि ये सब कृति को ही आलोचना का केंद्र मानते हैं, कृति के अन्य सन्दर्भों को -कृतिकार के मानस एवं रचना-व्यापार, ऐतिहासिक-सामाजिक सन्दर्भ, नैतिक उपदेश तथा सदस्य की प्रतिक्रिया आदि को- समीक्षा के क्षेत्र के अंतर्गत स्वीकार नहीं करते।

Keywords / मुख्य बिन्दु

नयी समीक्षा,आलोचना की निरपेक्ष दृष्टि,काव्यभाषा का वैशिष्ट्य,मूल्यांकन

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Discussion / चर्चा

6.4.1 आलोचना की निरपेक्ष दृष्टि

समीक्षा की अन्य पद्धतियों में कृति, कृतिकार तथा सहृदय की प्रतिक्रिया आदि को आधार बनाया जाता रहा है। नयी समीक्षा ने इन दृष्टियों के विरुद्ध विद्रोह किया तथा उन्हें कृति के सही एवं यथार्थ स्वरूप के समझने में अनुपयोगी बताया। इसमें संदेह नहीं है कि कृतिकार का व्यक्तित्व या उसका मानस तथा रचना-व्यापार कृति से संबद्ध है। यद्यपि इलियट ने कविता को व्यक्तित्व से पलायन माना है मगर हम यह देख चुके हैं कि यह मान्यता भ्रांत है। कृति के सन्दर्भ में न तो कृतिकार के व्यक्तित्व को अस्वीकार किया जा सकता है और न ही सर्जना-व्यापार की सत्ता से। मगर इन पर आधारित आलोचना की दो सीमाएँ हैं। पहली बात तो यह है कि इन सन्दर्भों का संबंध कवि की चेतना से है, उसके व्यक्तित्व के निर्माण और उसके व्यक्तित्व में होने वाले विविध सूक्ष्म जटिल व्यापारों से है। जटिलता एवं अगोचरता के कारण इनका प्रामाणिक ज्ञान संभव नहीं है। मनोविज्ञान एवं मनोविश्लेषण के क्षेत्र में, जिसके अध्ययन का केंद्र व्यक्ति की चेतना है, इस विषय पर तीव्र मतभेद है। दूसरी बात यह है कि अगर मान लें कि कवि के व्यक्तित्व का एवं सर्जना-व्यापार का प्रामाणिक अध्ययन संभव है, तो भी यह सवाल पैदा होता है कि यह अध्ययन किस प्रकार कृति को समझने में सहायक हो सकता है? समीक्षा का केंद्र तो कृति है, जो स्थूल एवं मूर्त है तथा जिसका वस्तुगत अध्ययन किया जा सकता है। यही आक्षेप सहृदय की प्रतिक्रिया पर आधारित समीक्षा-दृष्टि पर भी किये जा सकते हैं।

रैंसम ने रिचर्ड्स के काव्य-मूल्य के सिद्धांत पर यही आक्षेप किया है कि जो अमूर्त एवं सूक्ष्म है, जो विषयीगत है, उसे अध्ययन का केंद्र कैसे बनाया जा सकता है। साथ ही यह समस्या भी पैदा होती है कि विभिन्न कवियों एवं कलाशास्त्रियों ने सर्जन-प्रक्रिया के बारे में भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किये हैं जो परस्पर भिन्न ही नहीं, विरोधी भी हैं। अगर प्रतिक्रिया को समीक्षा का आधार माना जाये तो प्रभावशाली समीक्षा ही एकमात्र मानी समीक्षा-पद्धति मानी जानी चाहिए। सहृदयगत सूक्ष्म प्रतिक्रया के संकट से बचने का एक रास्ता इलियट के वस्तुपरक प्रतिमान के सिद्धांत में मिलता है।

सृजन-प्रक्रिया रचना से पहले का व्यापार है तथा सहृदय की प्रतिक्रिया रचना के बाद का। इन दोनों के बीच रचना की, काव्य की स्थिति वस्तु के रूप में होती है। सृजन-व्यापार का अनुमान भी कृति के आधार पर होता है तथा सहृदय की प्रतिक्रया भी कृति के द्वारा अनुशासित है। अतः मूल सत्ता कृति की है। इसलिए समीक्षा का एकमात्र कार्य है, कृति की व्याख्या -केंद्र को आलोकित करना, इसी कार्य के द्वारा कृति के स्वरूप को, कृति के कृतित्व को समझा जा सकता है। अतः अन्य दृष्टियों पर आधारित समीक्षा सही समीक्षा नहीं मानी जा सकती।

काव्य के अध्ययन की एक अन्य प्रणाली यह रही है कि उसे उसके ऐतिहासिक सन्दर्भ में रखकर देखा जाये या उसे समाज पर पड़ने वाले नैतिक प्रभाव की दृष्टि से देखा जाये। दोनों प्रकार के अध्ययन में केंद्र है कृति एवं समाज का संबंध। कृति एवं समाज के संबंधों के दो रूप हैं। एक, समाज ने कृति को कैसे प्रभावित-मर्यादित किया। दूसरा है, कृति ने समाज को कैसे प्रभावित-विकसित किया। इस प्रकार का अध्ययन इतिहास, समाजशास्त्र आदि में अत्यंत उपयोगी है।

नयी समीक्षा काव्य के निरपेक्ष अस्तित्व को स्वीकार करती है। काव्य अपने आप में एक सत्ता है, उसका स्वतन्त्र व्यक्तित्व है, उसका विशिष्ट रूप है। कलावादी आन्दोलन ने कला की स्वतन्त्र एवं निरपेक्ष सत्ता की स्थापना कर दी थी। इस आन्दोलन ने कला को मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, सामाजिक आदि उपयोगिता के सन्दर्भों से काटकर उसके विशिष्ट रूप की, उसके विशिष्ट एवं निरपेक्ष तथा निष्प्रयोजन स्थिति को स्वीकार किया था। इसलिए कलावादी आन्दोलन की

जो प्रतिध्वनि समीक्षा के क्षेत्र में हुई, वही नयी समीक्षा है। नयी समीक्षा का आरंभ कलावादी दर्शन में ही मानना चाहिए क्योंकि कलावाद ने कलाकृति की जो निरपेक्ष प्रतिष्ठा की थी, नयी समीक्षा उसी बिंदु को केंद्र मानकर कार्यशील होती है। आलोचना के क्षेत्र में कलावादी सिद्धांत का जो प्रतिबिंब पड़ा, वही नयी समीक्षा कहलाई। कलावादी सिद्धांत ने कला को अन्य सन्दर्भों से काटकर एक निरपेक्ष स्वतन्त्र सत्ता के रूप में स्वीकार किया, मगर इस निरपेक्ष-स्वतन्त्र सत्ता के स्वरूप को पारिभाषित करने का कार्य नए समीक्षकों ने किया।

6.4.2 काव्यभाषा का वैशिष्ट्य

काव्य के अन्य सभी सन्दर्भ परिवर्तनशील है। ऐतिहासिक स्थिति बदलती रहती है, सामजिक-नैतिक आदर्श बदलते रहते हैं। सहृदय की रूचि, आकांक्षा और आस्था में परिवर्तन आता रहता है, यदि काव्य का कोई पक्ष शाश्वत है तो यही कि वह एक भाषागत रचना है, उसमें भाषा का विशिष्ट प्रयोग मिलता है यदि आलोचना काव्य के सनातन मूल्यों को खोजना चाहे तो यह आवश्यक होगा कि वह मूल्यों का आधार काव्य के शाश्वत तत्व को ही बनाए और यह तत्व है शब्द। इसलिए नयी समीक्षा कृति को एक शाब्दिक संरचना या भाषिक संरचना के रूप में स्वीकार करती है तथा काव्यभाषा का विवेचन करते हुए प्रतीक, रूपक, अनेकार्थता, विरोधाभास, विसंगति, बिंब, द्वंद्व, तनाव, लय, छंद आदि का विवेचन करती है क्योंकि विविध भाषिक तत्वों की आंतरिक एकान्विति में ही रचना रूप धारण करती है। अलग अलग समीक्षकों ने भाषागत विविध तत्वों को ही काव्य के काव्यतत्व का आधार माना है।

प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्र में भामह ने भाषा के आधार पर शास्त्र एवं काव्य का अंतर स्पष्ट करते हुए कहा कि शास्त्र स्वभावोक्ति-प्रधान है तथा काव्य वक्रोक्ति-प्रधान। इस प्रकार समय एवं देशों में काव्यभाषा के वैशिष्ट्य के प्रति सजगता दिखाई देती है। भारतीय काव्यशास्त्र में काव्यभाषा के वैशिष्ट्य के निरूपण के प्रयास के क्रम में ही अलंकार, रीति, वक्रोक्ति श्ब्दशक्तियों के सिद्धांत का विवेचन मिलता है। मगर उस विवेचन में काव्यभाषा के वैशिष्ट्य के स्वरूप का निरूपण करते हुए अर्थ की सहायता ली गयी है।

आलोचना का प्रधान कर्तव्य तो यह है कि वह कृति पर ध्यान केन्द्रित करके उसके उन गुणों का उदघाटन करें जो उसे देश एवं काल की सीमा से परे ले जाकर मानव की स्थायी निधि के रूप में स्थापित करते हैं। नयी समीक्षा इन शाश्वत तत्वों की खोज कविता की वस्तुपरक स्थिति में करने का प्रयास करती है, उसकी विशेषताओं द्वारा ही कविता के उत्कर्ष को समझने का प्रयास करती है।

6.4.3 मूल्यांकन

नयी समीक्षा ने सापेक्षवादी आलोचना-दृष्टियों का विरोध करके काव्य के स्वतन्त्र अस्तित्व की स्थापना की तथा उसके वस्तुपरक अध्ययन की अनिवार्यता को रेखांकित किया। वस्तुपरक अध्ययन वस्तुतः भाषागत अध्ययन ही है। यद्यपि अनेक प्राचीन काव्य-दृष्टियों में भी काव्य की भाषा तथा उसके विविध तत्वों के अध्ययन पर पर्याप्त बल दिया गया है, मगर नयी समीक्षा ने आलोचना को भाषागत अध्ययन में ही केन्द्रित करके काव्य की समग्रता को एक नवीन स्तर पर, भाषा के स्तर पर अध्ययन करने की प्रणाली के विविध अंगों की व्याख्या की।

Critical Overview / अवलोकन

नयी समीक्षा का विकास बीसवीं शती के आरंभ में आन्दोलन के रूप में हुआ। समीक्षा की अन्य पद्धतियों में कृति, कृतिकार तथा सहृदय की प्रतिक्रिया आदि को आधार बनाया जाता रहा है। नयी समीक्षा ने इन दृष्टियों के विरुद्ध विद्रोह किया तथा उन्हें कृति के सही एवं यथार्थ स्वरूप के समझने में अनुपयोगी बताया और इसलिए उक्त दृष्टियों पर आधारित समीक्षाओं को समीक्षा के रूप में स्वीकार करने से इनकार कर दिया। नयी समीक्षा कृति को एक शाब्दिक संरचना

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

या भाषिक संरचना के रूप में स्वीकार करती है तथा काव्यभाषा का विवेचन करते हुए प्रतीक, रूपक, अनेकार्थता, विरोधाभास, विसंगति, बिंब, द्वंद्व, तनाव, लय, छंद आदि का विवेचन करती है क्योंकि विविध भाषिक तत्वों की आंतरिक एकान्विति में ही रचना रूप धारण करती है।

Recap / पुनरावृत्ति

- नयी समीक्षा का आरंभ,
- आलोचना की विशेषताएं
- भाषागत विशेषताएं
- नयी समीक्षा का मूल्यांकन।
- नयी समीक्षा काव्य के निरपेक्ष दृष्टि
- नयी समीक्षा तथा विज्ञान की सीमाएं हैं। पहली बात तो यह है कि कवि की भाषा में सर्जनात्मकता मिश्रित रहती है, मगर यह भाषा एक व्यापक भाषा पर आधारित होती है, जो सामाजिक संस्था होने के नाते युग जीवन के अनुरूप ही विशेषताओं से युक्त होती है, विशेषताओं की संभावनाओं से युक्त होती है।
- नयी समीक्षा एवं शैली विज्ञान में वस्तुपरकता का आग्रह कितना ही प्रबल क्यों न हो, वह निरंतर समीक्षक-सापेक्ष रही है और इस सत्य की स्वीकृति इन दोनों दृष्टियों की व्याख्याओं में निरंतर लक्षित होती है।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. नयी समीक्षा-दृष्टि की शुरुआत किसने किया?
2. नयी समीक्षा शाश्वत तत्वों की खोज कविता की किस स्थिति में करने का प्रयास करती है?
3. हिन्दी में 'न्यू क्रिटिसिज्म' केलिए प्रयुक्त शब्द?
4. इलियट ने कविता को क्या माना है?
5. 'न्यू क्रिटिसिज्म' का आरंभ कहां हुआ?
6. नयी समीक्षा की शुरुआत किस शती में हुआ?
7. 'न्यू क्रिटिसिज्म' शब्द का प्रयोग किसने किया?
8. दो नए समीक्षक के नाम लिखिए?

Answers / उत्तर

1. रैंसम ने
2. वस्तुपरक
3. नयी आलोचना' या 'नयी समीक्षा'
4. व्यक्तित्व से पलायन माना है
5. अमेरिका
6. बीसवीं
7. रैंसम
8. जान क्रो रैंसम,एलेन टेट

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. नयी समीक्षा की विशेषताएं लिखिए।
2. नयी समीक्षा में काव्य-भाषा के वैशिष्ट्य पर टिप्पणी लिखिए।
3. नयी समीक्षा का मूल्यांकन कीजिए।
4. नयी समीक्षा में आलोचना की निरपेक्ष दृष्टि पर टिप्पणी लिखिए।

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

इकाई 5 समसामयिक समीक्षा के सिद्धांत : सामान्य परिचय

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- रूपवाद और संरचनावाद के बारे में समझते हैं
- उत्तर-आधुनिकतावाद के बारे में समझते हैं
- मनोविश्लेषणवाद के बारे में समझते हैं
- अस्तित्ववाद सिद्धांत के बारे में समझते हैं

Prerequisites / पूर्वापेक्षा

पाश्चात्य आधुनिक समीक्षा में काव्य की समीक्षा की कुछ नयी प्रवृत्तियाँ, नए सिद्धांत माने जाते हैं। इनमें से अनेक प्रवृत्तियाँ भारतीय काव्यशास्त्र के विद्वानों के लिए नयी नहीं हैं क्योंकि भिन्न नामों से उनकी समीक्षा आज से हज़ार-डेढ़ हजार वर्ष पहले हो चुकी है। इन प्रवृत्तियों में रूपवाद, संरचनावाद, उत्तर संरचनावाद, आधुनिकतावाद, उत्तर आधुनिकतावाद, मनोविश्लेषणवाद, विखंडनवाद, शैली विज्ञान, सौंदर्यवाद, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद आदि प्रमुख है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

रूपवाद, संरचनावाद, उत्तर संरचनावाद, आधुनिकतावाद, उत्तर-आधुनिकतावाद, मनोविश्लेषणवाद, विखंडनवाद, शैली विज्ञान, सौंदर्यवाद, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद।

Discussion / चर्चा

6.5.1 रूपवाद

रूपवाद का उद्भव रूस में हुआ इसलिए इसे रूसी रूपवाद भी कहा जाता है। रूस में रूपवादी समीक्षा का सूत्रपात 19वीं शती के अंतिम चरण में हुआ और 20वीं शती के अंतिम वर्षों तक साहित्य समीक्षा को यह आंदोलित करती रही। रूपवाद की प्रमुख मान्यताएँ ये हैं -1. रूपवाद एक प्रकार का कलावादी आन्दोलन है, किन्तु इसके पीछे विज्ञान और तकनीक का परोक्ष प्रभाव है।

साहित्याध्ययन जब समाज में निरपेक्ष दृष्टि से किया जाने लगा तब साहित्य के अध्ययन की प्रत्ययवादी अवधारणाएं समाप्त हो गयीं और समीक्षा पूर्णतः भाषागत हो गयी। संरचना, उत्तर संरचना, विरूपीकरण, अनुपस्थिति की तलाश और नयी समीक्षा आदि साहित्याध्ययन की पद्धतियाँ रूपवादी ही है।

1. रूपवाद में भाषा पर सर्वाधिक बल दिया जाता है। साहित्य में प्रयुक्त भाषा विशिष्ट होती है। वस्तुतः वह भाषा का चयनित और उदात्त रूप होता है।

2. कृति की भाषा विश्लेषण-विवेचन रचना को नए ढंग से परखने का प्रयास है। भाषा का संरचनात्मक तत्व रूपवादी समीक्षा का प्रमुख घटक है।
3. पिछली शती में रूसी रूपवादी समीक्षा सिद्धांतों का अनुवाद फ्रांसीसी भाषा में 'तोदोरोव' ने प्रस्तुत किया परिणामतः पश्चिम की रूपवादी समीक्षा प्रणालियाँ-शैली विज्ञान, संरचनावाद आदि इससे अनुप्राणित हुई।
4. रूसी रूपवाद के प्रवर्तकों और उन्नायकों में - बोरिस एकेनवाम, विक्टर श्कैलोब्सकी, रोमन जैकोब्सन, बोरिस तोमार्स्जेब्सकी आदि नाम उल्लेखनीय है।
5. रूपवादी समीक्षा के दो केंद्र रहे हैं - मास्को और पेट्रोगार्ड। मास्को में 'भाषिकी' केंद्र की स्थापना 1915 में हुई जिससे जुड़े लोग 'काव्य भाषा' विपर्थ में अधिक रुचि लेते रहे। रोमन जैकोब्सन ने 1921 ई. में 'आधुनिक रूसी कविता' शीर्षक पुस्तक प्रकाशित हुई जो 'भाषाई (रूपवादी) तत्वों' को केंद्र में रखकर लिखी गई।
6. रूपवादियों का मूल मंतव्य कविता की 'भाषिक संरचना' या उसकी 'टेकनीक' है। कविता में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है उसका रूप। रूपवादी समीक्षा संरचनावाद शैली विज्ञान, नयी समीक्षा आदी के समानांतर चलनेवाला आन्दोलन है।
7. काव्यकला का संबंध कला की निर्मित (डिजाईन) से है न कि कला में अन्तर्निहित प्रत्यय (मैसेज या थाट) से। कविता में काव्य भाषा ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण वस्तु है।
8. कविता भाषा का विशिष्ट चयन और अनुप्रयोग है। रूपवादी समीक्षक का ध्यान परंपरित भाषिक इकाईयों (अलंकार, बिम्ब आदि) में पूर्व से निर्मित मानसिक वासनाओं से हटकर कुछ विचित्रता, अजनबीपन की ओर जाता है। काव्य भाषा में कुछ अद्भुत अजनबीयता को विकसित करके तलाश करना रूपवाद का प्रमुख तत्व है।
9. भारतीय काव्य शास्त्र में निरूपित रीति, वक्रोक्ति, संप्रदाय भाषा से जुड़े संप्रदाय हैं। उनका लक्ष्य काव्य सौन्दर्य और लालित्य की तलाश करना है, जबकि रूपवाद का लक्ष्य भाषागत रचना की स्वायत्तता पर बल देना है।
10. रूपवाद शब्द को अर्थ से भिन्न करना कठिन मानते हैं। शब्द शक्तियों के प्रसंग में भारतीय आचार्य यह स्वीकार करते हैं कि काव्य में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ शब्दकोशीय अर्थ से भिन्न अर्थ की ओर संकेत करते हैं। रूपवादी प्रजनात्मक व्याकरण के अंतर्गत इसका विश्लेषण करते हैं।
11. रूपवादी काव्य वस्तु (कथ्य, प्लाट, कंटेंट) को नज़रंदाज करके रूप के आधिपत्य पर बल देते हैं। रूप ही वह गवाक्ष है जहां से रचना की ओर झांका जा सकता है। रूपवादी कविता को तकनीक, प्राविधि और रूप में निहित मानते हैं।
12. रूसी रूपवादियों के अनुसार साहित्य को दर्शन, इतिहास, मनोविज्ञान, मार्क्सवाद आदि के आलोक में नहीं देखा जा सकता। रूपवादियों के अनुसार कृति की साहित्यिकता कृतिकार के विशिष्ट भाषा प्रयोगों में निहित है, उसे अन्यत्र खोजना व्यर्थ है।
13. रूपवाद है- अपरिचित से परिचित होना। कविता में दिन-प्रतिदिन की भाषा अपरिचित बनायी जाती है। भाषा का यह नयापन ही कविता का रूप है। निश्चय ही रूपवाद साहित्य की पारंपरिक और प्रचलित दृष्टि को नकारता है।

6.5.2 संरचनावाद

भाषा का ऐसा कलात्मक प्रयोग जो मानव स्थितियों के नाना पहलुओं को साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करता है, यही बात संरचनावाद के अंतर्गत आता है। भाषा और अर्थ परस्पर जुड़े रहते हैं। अतः किसी भी साहित्यिक कृति में भाषा की बनावट और बुनावट उसकी 'संरचना' से जुडी रहती है। इस प्रकार साहित्यिक कृतियों की भाषा की संरचना का अध्ययन उनमें नए अर्थों की खोज करता है।

पिछली शती के उत्तरार्द्ध में फ्रांसीसी कवि स्टीफन मलार्मे, मैकलीश, आंद्रे ब्रेतां, इलियट आदी कथ्य से कहीं अधिक बल भाषा पर देते हैं। केवल

फ्रांसीसी साहित्य में ही नहीं अपितु अंग्रेजी साहित्यकारों अमरीकी साहित्यकारों (जान वार्थ, के डिक) तथा रूसी साहित्यकार स्टुरगाटस्की आदि के लेखन में भी उत्तर आधुनिकता की यह प्रवृत्ति (संरचनावाद) दिखाई देती है।

संरचना और संरचनावाद भाषिक दृष्टि से साहित्य के मूल्यांकन के प्रतिमान हैं। आधुनिक आलोचना में शैली वैज्ञानिक आलोचना, भी 'संरचना' पर विशेष बल देती है।

संरचना (structure) एक सावयव या संगतिनिष्ठ साकल्य (organie whole) के रूप में होती है। वह किसी वस्तु, व्यवस्था अथवा साहित्यिक कृति की हो सकती है। 'संरचना' विभिन्न भाषिक तत्वों के बीच अन्वय संबंधों पर निर्भय करती है।

संरचना की इसी प्रकृति के कारण संरचना स्वयं में प्रेक्षणीय नहीं होती, किन्तु उसका परिज्ञान प्रेक्षण प्रक्रिया द्वारा ही किया जाता है जो दो प्रकार की होती है : भाववादी, वस्तुवादी।

भाववादी समीक्षक किसी कृति की अभ्यंतर प्रकृति को स्वयं समझना चाहता है और उसकी व्याख्या स्वयं की गयी आत्मगत व्याख्या होती है, जबकि वस्तुवादी समीक्षक संरचना का केंद्र व्यक्ति को न मानकर वस्तु (कृति) को मानता है। इस प्रकार संरचना प्रछन्न रूप से कृति की आंगिकता में निहित रहती है, अतः समीक्षक को कृति की अन्वय संबंधी व्यवस्था की पहचान करनी चाहिए। संरचनावादी समीक्षक शैली वैज्ञानिक वस्तुवादी अवधारणा के पक्षधर है, अतः संरचनावाद में केन्द्रवर्ती बिंदु कृति ही 'हराती है, कृतिकार अथवा समीक्षक नहीं।

6.5.3 उत्तर संरचनावाद

संरचनावाद के आगे की अवधारणा उत्तर संरचनावाद है। वस्तुतः इन दोनों को अलग करना संभव नहीं है, अतः यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि संरचनावाद का अलग चरण उत्तर संरचनावाद हैं। उत्तर संरचनावाद का विकास फ्रांस में आ'वें दशक (1970-80) में हुआ। यह उत्तर औद्योगिक युग की उपज है और भूमंडलीकरण के दौर में संपूर्ण विश्व में साहित्य आलोचना के क्षेत्र में इसकी जड़ें फ़ैल रही हैं। उत्तर संरचनावाद विखंडन पर बल देता है।

6.5.3.1 उत्तर संरचनावाद के उद्‌भव के कारण

इस के कई कारण हैं -1. राजसत्ताओं से मानव अधिकारों की मांग 2. अतिशय आधुनिकता से ऊबकर धर्म एवं तत्व चिंतन की शरण 3. भूमंडलीकरण की प्रवृत्ति 4. उपभोक्तावादी एवं उत्तर पूँजीवादी संस्कृति 5. पुरानी चिंतन प्रणाली के प्रति वितृष्णा के भाव।

उत्तर संरचनावाद वस्तुतः संरचनावाद का ही अगला चरण है, अतः फ्रांस में विकसित संरचनावाद के समर्थक अन्य देशों के समीक्षकों - क्लाडे लेविस स्त्रौस, माइकल फूको, रोलां बार्थ, संस्सूर, रोमन जैकोब्सन, माइकेल बाख्त, नोम चाम्सकी ने संरचनावाद के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया।

लाकां ने संरचनावाद की निरंकुशता पर प्रश्नचिह्न लगाया। उसने कहा कि स्ट्रास का संरचनावाद मानव समाज को मशीन की तरह व्याख्यायित कर रहा है। परिणामतः परवर्ती विचारक जेकुसडेरिडा की कृतियाँ Speech & Phenomenon, Writing and difference तथा Grammatology ने संरचनावाद के वर्चस्व को कम किया है और उत्तर संरचनावाद की स्थापना की। बाद में Paul De Mann (अमरीकी समीक्षक) ने उत्तर संरचनावाद को और अधिक विकसित किया।

उत्तर संरचनावाद भी भाषिकी से संबद्ध है। संरचनावाद और उत्तर संरचनावाद में भाषा या पाठ ही महत्वपूर्ण माना गया है। उत्तर संरचनावाद के मूल में भी भाषाविद सस्स्युर की विचारधारा है। उन्होंने भाषा के निर्माण, उसके बोलने, उसके अनुभावन के संबंध में विस्तार से चर्चा की है। यह प्रक्रिया कुछ इस प्रकार से होती है :

1. सर्वप्रथम वक्ता के मस्तिष्क के अमूर्त भाव या अमूर्त विचार अभिव्यक्ति केलिए वाक प्रतीकों का रूप धारण करते हैं।
2. वक्ता के मुख से निकले शब्द ध्वनि तरंगों के

माध्यम से श्रोता के कानों तक पहुंचते हैं तथा उसके मन-मस्तिष्क में वक्ता के विचार या भाव की मूर्ति बनती है और वह उसकी बात समझने का प्रयास करता है।

3. सुनने की यह प्रक्रिया प्रारंभ में अमूर्त होती है तदुपरांत वाक् चिह्नों या प्रतीकों द्वारा मूर्तिमान होती है। श्रोता अथवा पाठक वक्ता के मंतव्य की प्रतिक्रया इसी प्रक्रिया से ग्रहण करता है।
4. इस प्रक्रिया में दो बातें महत्वपूर्ण हैं - वक्ता का अभिप्राय और श्रोता की समझ। (अर्थात् वक्ता जो कहना चाहता है उसे श्रोता या तो पूरी तरह समझ लेता है या फिर उसे अधूरा समझता है या कुछ और समझ लेता है।
5. भाषा किसी समुदाय विशेष के भाषिक प्रतीकों की व्यवस्था है जो अलग-अलग समुदाय में अलग-अलग हो सकते हैं। ऐसी परिस्थितियाँ ही भाषिक विश्लेषण की जननी हैं।
6. सस्स्युर वाक परिपथ (speech circuit) की बात करते हुए भाषा को एक सामाजिक तथ्य मानते हैं। भाषा कैसे रूपायित होती है, कैसे रूपाकार ग्रहण करती है, इन प्रश्नों का उत्तर वे स्वयं देते हुए कहते हैं कि भाषा व्यक्ति के द्वारा नहीं अपितु समूह या समुदाय के बोलने-समझने द्वारा विकसित होती है। यदि हम समुदाय विशेष के व्यक्तियों के मस्तिष्क में संरक्षित ध्वनि बिम्बों/प्रतीकों को समझ सकें तो हम उस सामाजिक संस्कृति को आत्मसात कर सकेंगे जिससे वह भाषा विकसित हुई है।
7. भाषा किसी वक्ता के प्रकार्य में निहित नहीं होती अपितु वह सामाजिक तथ्यों से परिचालित होती हैं। जब हम ऐसी ध्वनियाँ सुनते हैं, जो हमारे लिये अपरिचित हैं तब उनसे निर्मित बिंब हमारे मन-मस्तिष्क में नहीं बनते। उत्तर संरचनावाद में भाषा पर अधिक बल दिया है, जबकि देरिदा ने सस्स्युर की मान्यताओं को पलटकर एक नयी पद्धति का उल्लेख किया जिसे विनिर्मित या विखंडन कहते हैं।

समीक्षक को भाषा की गहन संरचना में निहित उस अदृश्य या अमूर्त को खोजना चाहिए जो ऊपर से देखने पर अनुपस्थित लगता है। खोजने की यह प्रक्रिया ही ट्रेस है। पाठ की सामान्य और गहन संरचना में सब कुछ निहित है, अतः समीक्षा पाठ केन्द्रित होती है।

6.5.4 आधुनिकतावाद

आधुनिक शब्द समय सापेक्ष है किन्तु इसका अर्थ अत्यंत लचीला है जिसे विभिन्न सन्दर्भो में प्रयुक्त किया जाता है। आधुनिकता का प्रयोग वस्तुतः दो सन्दर्भो में किया जाता है - 1. प्राचीन शास्त्रवादी (classical) धारा की प्रतिक्रियात्मक व्याख्या और 2. नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों के आलोक में वर्तमान की व्याख्या।

आधुनिकतावाद का प्रारंभ प्रथम विश्व-युद्ध (1914) से माना जाता है। इसका प्रचलन लगभग आधी शती तक अंग्रेजी एवं अमेरिकन साहित्य में विषयवस्तु और शिल्प के स्तर पर विभिन्न साहित्यकारों - यीट्स, इलियट, आडेन, कोनरेड, लारेंस, वर्जीनिया वुल्फ, बर्नार्ड शा, रिचर्ड्स, फ़.आर. लेविस की कृतियों में देखा जा सकता है।

आधुनिकतावाद बहुआयामी विचारधारा है। दो विश्व-युद्धों ने साहित्य को भी बहुत कुछ प्रदान किया। परमाणु बम की विभीषिका ने समाज के परंपरावादी सोच पर प्रश्नचिह्न लगाए और नयी मान्यताओं और संवेदनाओं का उत्तरोत्तर विकास हुआ जिसका प्रतिफलन साहित्य और कला में कथ्य और शिल्प के स्तर पर दिखाई देने लगा। स्पष्ट है कि आधुनिकतावाद परंपरित मूल्यों, मान्यताओं, साहित्य की नवशास्त्रवादी दृष्टि पर प्रश्न-चिह्न लगाता है तथा वर्तमान की स्वीकृति और समीक्षा के नए सोपान प्रस्तुत करता है।

हिन्दी आधुनिकतावाद का उपयोग सर्वप्रथम अज्ञेय ने अपने उपन्यास 'शेखर एक जीवनी' में नैतिक मूल्यों को तोड़ते हुए रूपायित किया। आधुनिकतावाद परंपरा और इतिहास पर स्वचेतना को प्रश्रय देता है इसलिए उसमें परंपरा की स्वीकृति न होकर परंपरा

के प्रति अवमानता उर नकार है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास से उत्पन्न सामाजिक परिवर्तनों की उसमें स्वीकृति है। मानव स्वातंत्र्य, व्यक्ति चेतना की अभिव्यक्ति तथा रूपवादी और प्रयोगवादी शिल्प की वायवी भाषा में प्रस्तुति जैसी कतिपय प्रवृत्तियाँ आधुनिकतावाद में दिखाई पड़ती हैं।

6.5.5 उत्तर- आधुनिकतावाद

उत्तर आधुनिकतावाद (Postmodernism) 18 वीं शताब्दी के दूसरे भाग में दर्शनशास्त्र, कला, वास्तुशास्त्र और आलोचना के क्षेत्रों में फैला एक सांस्कृतिक आंदोलन था जिसने अपने से पहले प्रचलित आधुनिकतावाद को चुनौती दी और सांस्कृतिक वातावरण बदल डाला। उत्तर आधुनिकता के जनक ज्या फ्रांकोइस ल्योतार हैं। सर्वप्रथम उत्तर आधुनिकता वास्तुकला के क्षेत्र में प्रकट हुई, लेकिन इसका विकास दर्शन, साहित्य व समीक्षा के क्षेत्र में भी हो चुका है। उत्तर आधुनिकता व्यक्ति केंद्रित समीक्षा दृष्टि है जो मानती है कि कुछ भी संपूर्ण नहीं है। यह संपूर्णता का खंडन करती है। इस नई विचार शैली सामाजिक विकास और वस्तुनिष्ठवाद के विरुद्ध एक संशयवाद, व्यक्तिपरकता (subjectivity) और व्यंगोक्ति की ओर रुझान प्रचलित हो गया।

उत्तर आधुनिकता की पहली परिकल्पना आर्नल्ड टॉयनबी ने की थी। उन्होंने अपनी पुस्तक A Study of History में आज से लगभग 120 साल पूर्व 1850 इ.स. से 1857 इ.स. के बीच आधुनिक युग की समाप्ति की घोषणा की थी। उन्होंने 1918-1939 के बीच के समय के लिए उत्तर आधुनिक शब्द का प्रयोग किया था। उनके मतानुसार उत्तर आधुनिकता के मसीहा नीत्से थे। लेकिन उत्तर आधुनिक शब्द का चलन बाद में आया... एडोर्नो-होर्खिमार ने इसे नये दार्शनिक अर्थ दिये। बाद में फ्रांसीसी दार्शनिक ल्योतार ने इसे एक स्थिति के रूप में स्थिर करने का प्रयत्न किया।

इतिहास में उत्तर आधुनिक विशेषण का पहला प्रयोग अमरिकी उपन्यासकार जॉन वार्थ ने 1967 में द लिटरेचर ऑफ एक्सॉशन नामक प्रथम लेख में सार्थक ढंग से किया था। जब कि उत्तर आधुनिक शब्द का प्रयोग सबसे पहले 1979 में ल्योतार ने किया था।

उत्तर आधुनिकता विचार या दर्शन से अधिक एक प्रवृत्ति का नाम है। यह बीसवीं शताब्दी की मूल धारा है। यह संपूर्ण आधुनिक यूरोपीय दर्शन के प्रति एक तीव्र प्रतिक्रिया है-देकार्त, सार्त्र एवं जर्मन चिंतकों के प्रति। पाउलोस मार ग्रगोरिओस के मतानुसार उत्तर आधुनिकता एक विचारधारा या लक्ष्य केंद्रित या नियम अनुशासित आंदोलन न होकर पश्चिमी मानवतावाद की दुर्दशा है। यह लक्ष्यों, नियमों, सरल रेखाओं तथा साधारण विचारों पर विचार नहीं करती। यह आधुनिक पाश्चात्य मानवतावाद की अग्रचेतना की एक स्थिति है। ल्योतार, रोर्टी, फूको एवं देरिदा आदि के दर्शन मुख्य रूप से हेगल के प्रत्ययवादी (Idealist) विचारों की चेतन प्रतिक्रिया के रूप में विकसित हुई हैं।

उत्तर आधुनिकता की मूल चेतना आधुनिक ही है। क्योंकि इसका विकास एवं इसकी अस्मिता का आधार वही उद्योग हैं जो आधुनिकता की देन है। टॉयनबी के अनुसार आधुनिकता के बाद उत्तर आधुनिकता तब शुरू होती है जब लोग कई अर्थों में अपने जीवन, विचार एवं भावनाओं में तार्किकता एवं संगति को त्याग कर अतार्किकता एवं असंगतियों को अपना लेते हैं। इसकी चेतना विगत को एवं विगत के प्रतिमानों को भुला देने के सक्रिय उत्साह में दीख पड़ती है। इस प्रकार उत्तर आधुनिकतावाद आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की समाप्ति के बाद की स्थिति है।

6.5.6 उत्तर आधुनिकता की विशेषताएं

1. उत्तर आधुनिक की स्थिति में किसी भी आदर्श एवं ज्ञान का आधार मानवता की आधुनिक चेतना होती है।
2. उत्तर आधुनिकतावाद व्यक्ति या सामाजिक इकाइयों की स्वतंत्रता के पक्ष में तर्क करती है।
3. व्यक्ति को सामाजिक तंत्र का मात्र एक पुर्जा न मानकर उसे एक अस्मितापूर्ण अस्तित्व प्रदान करता है।

4. आधुनिकता के पूर्णवादी रवैये का विरोध करता है।
5. ज्ञान की जगह उपभोग को प्राधान्य देता है।
6. यह अतीत में जाने की छूट देता है, किन्तु उसे मनोरंजन बनाते हुए, उपभोग की सामग्री बनाने के लिए। यह अतीत का पुनः उत्पादन संभव करता है, किन्तु उसकी भव्यता का स्वीकार नहीं करता।
7. यह हर महानता को सामान्य बनाता है।
8. समग्रता का विखंडन(अस्वीकार) करता है।
9. रचना को विज्ञापन तथा समीक्षा को प्रयोजन बना देता है।
10. इससे शब्दार्थ में अनेकांत पैदा होती है।
11. इसमें एक देश का सत्य, विश्व का सत्य बन गया है। कला सूचना मात्र है।
12. यह ज्ञान शब्द का अर्थ बदल देता है, अज्ञात प्रस्तुत करता है, वैधता का एक नया आदर्श प्रस्तुत करता है. मतैक्य के बदले मतभेद को महत्व देता है. एकरूपता का अस्वीकार करके विषमता की स्थिति का स्वीकार करता है. एकरूपता के प्रति यह विरुचि ऐतिहासिक अनुभव पर आधारित है।
13. यह सार्थक बहुलता का स्वीकार करता है। इसके अनुसार एकता मात्र दमनकारी व एकपक्षीय तरीकों से स्थापित की जा सकती है। एकता का सीधा अर्थ है नियमों व बलों की आवश्यकता। बहुलता व विषमता सामाजिक प्रक्रिया में अनिवार्य रूप से टकराव की स्थिति पैदा करते हैं। उत्तर आधुनिकता के अनुसार सापेक्ष मतैक्य न्याय प्राप्ति करने का कोई संतोष कारक समाधान नहीं दे सकता। इसलिए न्याय के ऐसे वैचारिक व व्यावहारिक पक्ष पर पहुँचना होगा जो मतैक्य से जुड़े न हों। ल्योतार ने न्याय की चेतना विकसित की ओर अन्याय के प्रति एक नई संवेदनशीलता का निर्माण किया।
14. यह उच्च संस्कृति एवं निम्न संस्कृति में अंतर करने की प्रक्रिया को चुनौती देता है।
15. उत्तर आधुनिकता विचारधारा, व्यक्तिगत आस्थाओं, त्रुटियों एवं विकारों को विज्ञान से जोड़ती है।
16. उत्तर आधुनिकता तार्किकता के अति उपयोग पर प्रश्नचिह्न खड़ा करती है। इसके अनुसार मनुष्य पूर्णतः स्वायत्त, उच्च एवं श्रेष्ठ है। वह अपने मानस एवं कामुकता के अलावा न तो किसीके प्रति उत्तरदायी है और न ही किसी पर आश्रित है।
17. उत्तर आधुनिकता पीछे की ओर लौटना नहीं चाहता। यह उन पारंपरिक एवं धार्मिक प्रतिमानों को पुनः स्थापित नहीं करना चाहता, जिन्हें आधुनिकता ने अस्वीकार कर दिया था। यह ऐसे प्रतिमानों का अस्वीकार करता है जिनमें लिखित भाषा एवं तर्कशास्त्रीय तार्किकता पर बल दिया जाता है।
18. उत्तर आधुनिकता निश्चितता के संदेहास्पद आधार पर किसी ज्ञानतंत्र की स्थापना की कठिनाइयों का स्वीकार करता है।
19. उत्तर आधुनिकतावादी ऐसे समाज की खोज में लगे हैं जो अदमनकारी हो।

6.5.7 उत्तर आधुनिकता की समस्याएँ:

1. इसमें सिध्दांत-निर्माण नहीं होता।
2. यह अंतरों को परम बनाना चाहते हैं.
3. यह समालोचनात्मक शक्ति समाप्त कर देता है।
4. संस्कृति के नाम पर होनेवाले शोषण एवं अन्याय के प्रति सहिष्णु होने के नाम पर उदासीन होता है।
5. मनुष्य की संभावनाओं को कम कर आँकता है। इस रूप में यह नाशवाद है।
6. यह किसी एक व्याख्या को असंभव करता है।
7. यह पीछे की ओर लौटना नहीं चाहता।
8. यह आधुनिक सांस्कृतिक-सामाजिक अनुभव को पीछे धकेलता है।
9. इसमें ऐतिहासिकता की अनुपस्थिति होती है।

6.5.8 उत्तर आधुनिकता की उपलब्धियाँ

1. बहुलतावाद उत्तर आधुनिकता का मुख्य केन्द्र है। पूर्णता का विघटन इसके लिए आवश्यक शर्त है।
2. प्रौद्योगिकी, नई तकनीकें लगातार हमारे ज्ञान को प्रभावित करती है। अतः हमें प्रासंगिक व वास्तविक ज्ञान की आंतरिक विशेषताओं के प्रति सजग होना होगा।
3. उत्तर आधुनिकतावाद आधुनिकवाद का भविष्योन्मुखी परिवर्तनीय रूप है।
4. इसमें अंतर-व्यक्तिपरकता को जीवंत रखा जाता है।
5. निजी जगत (प्राईवेसी) का खात्मा इसकी महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

संक्षेप में, उत्तर आधुनिकतावाद की प्रतिक्रियाएँ ऐसे नये मार्ग दिखाती हैं जिनसे नये बौद्धिक वातावरण में आधुनिक दर्शन की उपलब्धियों की पुनःपरीक्षा की जा सकती है एवं उनके महत्व का पुनःमूल्यांकन करने के लिए नई दृष्टि देती हैं।

6.5.9 मनोविश्लेषणवाद

सिग्मंड फ्रोयड 1856-1939 मनोविश्लेषण के संस्थापक ऑस्ट्रियन चिन्तक थे। उनसे पहले हिप्नोसिस की प्रक्रिया की जानकारी तो थी पर मनुष्य की चेतना का कोई संपूर्ण विश्लेषण नहीं किया गया था। मनोविज्ञान ने फ्रोयड से पहले मानवीय चेतना का कुछ अध्ययन किया था और फ्रोयड ने ही उसका विश्लेषण कर मनुष्य में अचेतन और उपचेतन का विवेचन किया और अपने अध्ययन और प्रयोगों के बल पर वह इस परिणाम पर पहुँचा कि मनुष्य के जीवन को परिचालित करने वाली शक्ति चेतन नहीं उपचेतन ही है। फ्रोयड ने मनुष्य स्वप्नों का विश्लेषण करते हुए यह निष्कर्ष उपस्थित किया कि मनुष्य के आचरण का नियंत्रण चेतन द्वारा नहीं उपचेतन के द्वारा होता है। इस सिद्धांत को उसने अपनी पुस्तक 'दी इंटरप्रेटेशन ऑफ़ ड्रीम्स'- स्वप्नों की व्याख्या- नाम की पुस्तक में किया जो सन 1900 में प्राकाशित हुई।

फ्रोयड के मनोविश्लेषण सिद्धांत का विशेष प्रभाव बीसवीं सदी के यूरोप के साहित्य पर पड़ा। उसकी मूल स्थापना यह है कि मनुष्य के मन में अनेक इच्छाएँ पैदा होती हैं मगर उसे सामाजिक मर्यादा के अनुरोध पर कई इच्छाओं को दबाना पड़ता है। यह दमित इच्छाएँ ही इस संघर्ष के फलस्वरूप उपचेतन में अवस्थित हो जाती हैं और विविध प्रतीकों के माध्यम से साहित्य में व्यक्त होती हैं। उसी सिद्धांत के प्रभाव से पश्चिम में अतियथार्थवाद का उदय हुआ जिसके अनुसार यह माना गया कि अपनी इच्छाओं और कल्पना की निर्बाध अभिव्यक्ति करनी चाहिए और किसी प्रकार के सामाजिक बंधनों को स्वीकार नहीं करना चाहिए। इस सिद्धांत के अनुसार भाषा का प्रयोग भी तोड़-मरोड़ कर किया जाने लगा तथा उसे व्याकरण के नियमों से मुक्त कर दिया। इसका पहला परिणाम यह हुआ कि विचित्र प्रकार की भाषिक अभिव्यक्तियाँ होने लगीं और इसी के आगे चलकर कलावाद का जन्म हुआ। इसका दूसरा परिणाम यह हुआ कि आलोचकों ने उपन्यासादी पात्रों का मनोविश्लेषणात्मक विवेचन आरंभ किया जिसके परिणाम स्वरूप भ्रामक परिणामों का जन्म हुआ। वैसे यह प्रक्रिया मनोविश्लेषण के सिद्धांत के विपरीत है क्योंकि उसके अंतर्गत व्यक्ति के पूछे गए अनेक प्रश्नों के दिए गए उत्तरों के आधार पर ही मनोविश्लेषक उसके व्यक्तित्व की तह तक पहुँच पाता है। इसका तीसरा प्रभाव पड़ा कि साहित्यकार भी अपने कथासाहित्य के पात्रों के चरित्रों के निर्माण में इसका प्रयोग करने लगे। फ्रोयड ने अपने मनोविश्लेषण के सिद्धांत के आधार पर यह स्थापना की थी, मनुष्य जीवन को परिचालित करने वाली वृत्ति कामवृत्ति ही है। इस सिद्धांत का साहित्य पर यह चौथा प्रभाव पड़ा कि साहित्य में काम और वासना के चित्रों को प्रस्तुत किये जाने लगे जो अश्लील माने जाते हैं। हिन्दी में कथाकार इलाचंद्र जोशी ने ही मनोविश्लेषण का उपयोग किया है।

पश्चिम में शीघ्र ही अन्य मनोविश्लेषकों ने भिन्न-भिन्न सिद्धांत स्थापित किये जिनमें एडलर ने वैयक्तिक मनोविज्ञान में दूसरों पर अधिकार करने की इच्छा की

स्थापना की तथा युंग ने विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान में आद्य बिंबों की धारणा को मूल सिद्धांत के रूप में स्थापित किया।

मनोविश्लेषण से प्रभावित साहित्य पर मेरा मूल आक्षेप यह है कि यदि कुंठों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति करने वाली रचनाएँ ही उत्कृष्ट साहित्य की कोटि में मानी जाएँ तो लोकप्रिय साहित्य को ही उत्कृष्ट साहित्य मानना पड़ेगा।

6.5.10 विखंडनवाद

नयी समीक्षा में कृति की अखण्डता और अन्तः संबंधों के अन्वेषण पर बल था वहीं विखंडन में कृति की समग्रता को खण्डित कर उपपाठों के रूप में देखने की रीति पर बल दिया जा रहा है, जो एक सीमा तक उपयोगी हो सकती है।

देरिदा विखंडन का कोई परंपरागत रूप संभव नहीं मानते (अर्थात् उसका कोई पूर्व दर्शन या समीक्षा सिद्धांत नहीं है। विखंडन परंपरावादी पाश्चात्य दर्शन या विचारधारा का निषेध करता है। साहित्य समीक्षा के साथ-साथ दर्शन, नृविज्ञान तथा मानविकी के सभी विषय देरिदा के लिए विखंडन की वस्तु है।

विखंडनवाद में न रचना को बड़ा माना गया है न समीक्षा। दोनों ही रचनाएँ हैं क्योंकि दोनों में प्रामाणिक अनुभव होते हैं, किन्तु ये अनुभव पाठ केन्द्रित ही होते हैं। विखंडनवाद साहित्य और समीक्षा में कोई भेद नहीं मानता और न ही वह इस बात को स्वीकारता है कि सर्जक समीक्षक से बड़ा होता है और कृतिकार की भाषा समीक्षक की भाषा से उच्च कोटि की होती है।

सस्स्युर ने भाषागत दो भेदों 'पेरोल' (Parole) और 'लेंगुई' (Langue) को नकार दिया। देरिदा ने अपनी पुस्तक 'आफ ग्रामाटोलोजी' में स्पष्ट किया कि सस्स्युर ने लिखित पाठ की संरचना में अन्तर्निहित दूसरे अर्थ की बात कहकर 'लेखन' को द्वितीय श्रेणी का बना दिया। देरिदा के अनुसार, 'सस्स्युर की यह धारणा कि भाषा का लिखित रूप जीवन्त नहीं होता, बोला हुआ रूप ही जीवन्त होता है, पूर्णतः भ्रामक है।' देरिदा की दृष्टि में लेखन ही तो भाषा की पूर्व शर्त है। लेखन भाषा का वह व्यापार है जो भाषा को अनुशासित करता है और अर्थ को नाना सन्दर्भों से जोड़ता है। देरिदा भाषा और अर्थ (Thought) के विषय में विचार प्रकट करते हुए कहता है, अर्थ के अनुरूप शब्द का चयन लेखक करता है, अतः अर्थ की स्थिति पहले और शब्द की स्थिति बाद की है, जबकि अधिकांश विचारक इससे उलट शब्द की स्थिति पहले और अर्थ की स्थिति बाद में मानते हैं।

देरिदा की विखण्डनवादी दृष्टि का यह केन्द्रवर्ती बिन्दु है और इससे यह प्रतिपादित होता है कि जहां सस्स्युर संरचना को महत्त्व देता है, जबकि देरिदा संरचना के विखण्डन को महत्त्व प्रदान करता है।

देरिदा विखण्डन को एक प्रकार की भाषायी रणनीति मानते हैं। विखण्डन संरचना के पार्थक्य पर बल देकर अब तक छिपे अर्थ की इंगित पर ध्यान केन्द्रित करता है। देरिदा चिन्तन के हर आयाम पर विखण्डन लागू करना चाहते हैं। वे विखण्डन को 'पाठ' पढ़ने की ऐसी रणनीति मानते हैं, जो पूर्व निर्धारित 'पाठ संरचना' के गृहीत अर्थ से भिन्न अर्थों के संधान में सहायक होती है। देरिदा ने बताया कि मार्क्स और लेनिन के 'पाठ' (Text) को विखण्डित करके पढ़ा जाना चाहिए जिससे पाठ में छिपे पूर्व निश्चित अर्थ (व्यंग्य) के अतिरिक्त उस पाठ की अनेकार्थता को खोजा जा सके।

देरिदा के विखण्डनवाद में संरचनावाद से साम्य भी हैं और वैषम्य भी। वस्तुतः देरिदा संरचनावाद के विरोधी न होकर उत्तर संरचनावादी है। देरिदा संरचनावाद की इस धारणा से सहमत हैं कि 'पाठ' की सत्ता लेखक से स्वतन्त्र होती है (अर्थात् पाठ का अर्थ पाठ की संरचना से ही अनुस्यूत है, बाहर से आरोपित नहीं।

विखण्डन साहित्यिक अवधारणाओं का उत्तरवर्ती रूप है। इसमें विलोमों के सहारे 'पाठ' विश्लेषण पर बल दिया जाता है। एक ही पाठ (Text) के शब्द, अलंकार, दर्शन और साहित्य की इन बिन्दुओं के आधार पर की गई समीक्षा विखण्डन का कार्य है।

'विखण्डनवाद' के अनुसार एक ही 'पाठ' की दो व्याख्याएं हो सकती हैं और अनेक भी। अर्थ का निर्णायक अब लेखक नहीं अपितु 'पाठक' और उसके पढ़ने पद्धति है।

'उत्तर संरचनावाद' ने 'स्त्री-पाठ' पर बल दिया गया है। स्त्री-पाठ का अर्थ है- किसी 'पाठ' को औरत की दृष्टि से पढ़ना। स्पष्ट है कि 'पाठ' के पढ़ने की रणनीति पर बल दिया जाता है। क्रम को उलटकर 'पाठ' विश्लेषण करना कार्य-कारण श्रृंखला को उलट कर 'पाठ' को पढ़ना, विश्लेषित-विवेचित करना हमें यह दर्शाता है कि 'पाठ' जो उभारा गया है, ठीक उसी तरह दबाया भी गया है।

विखण्डन 'पाठ' और लेखन को नये ढंग से समझने की प्रक्रिया है। विखण्डन के अनुसार प्रत्येक पाठ पढ़ने पर पूरे अर्थ का नहीं अधूरे अर्थ का द्योतन कराता है इसीलिए वह हर बार पढ़े जाने पर नया होता है, नये अर्थों को उद्‌घाटित करता है। पाठ का कोई पठन स्थायी और अन्तिम नहीं होता वरन् तात्कालिक होता है। विखण्डन की प्रक्रिया 'पाठ' के दोहराने, बिखराने और कई बार प्रतिरोपण द्वारा सम्पन्न की जाती है। इस प्रकार देरिदा 'पाठ' (Text) के बाहर कुछ नहीं मानते।

देरिदा ने अपने ग्रन्थ 'ऑफ ग्रामैटोलोजी' में विखण्डन के तीन सूत्र दिए

1. भिन्नता (विलम्बन या स्थगन) (Difference)
2. निशान (चिह्न) (Trace)
3. आद्यलेखन (Arc Writing)

इनमें से प्रथम दो (Difference और Trace) साहित्य की भाषा संरचना तथा तीसरा अनकहे या अनजान की तलाश से सम्बन्धित है।

एक ही शब्द या पदबन्ध के दो भिन्न अर्थ ग्रहण किये जा सकते हैं, अतः प्रामाणिक अर्थ स्थगित या विलम्बित होता है। संरचनावाद और विखण्डनवाद वस्तुतः 'पाठ' पर बल देने वाले समीक्षा सिद्धान्त माने जा सकते हैं भले ही दोनों की प्रक्रिया भिन्न हो।

6.5.11 शैलीवाद

आई.ए. रिचर्डस ने काव्यभाषा का विवेचन करते हुए उसके सांकेतिक उपयोग और भावोद्‌बोधक रूपों का विवेचन किया है। भाषा का सांकेतिक अर्थप्रधान होता है तथा उसका उपयोग शास्त्रों में किया जाता है जबकि भावोद्‌बोधक रूप शब्द प्रधान होता है जो शब्द चमत्कार के द्वारा पाठक में भावों का उन्मेष करता है। यह बात पश्चिम में बीसवीं शती में कही गयी। भारत में पाँचवीं शती में ही भामह से शास्त्र को अर्थप्रधान तथा काव्य को शब्द प्रधान मानकर काव्य लक्षण कर दिया था। हिन्दी में अनेक आलोचक संस्कृत से अनभिज्ञ होने के कारण यह मान बैं' हैं कि पश्चिम का भाषा विवेचन-शैली विज्ञान आदि -एकदम नयी और मौलिक स्थापनाएँ हैं।

आधुनिक काल में भाषाविज्ञान के विकास के क्रम में काव्यभाषा का विवेचन किया गया जो शैली विज्ञान कहलाया। उसके तीन तत्व माने गये, एक-चयन, दो- विचलन, और तीन- समानान्तरता। लोकभाषा को चयन आधारित भाषा मानते हुए काव्यभाषा को विशिष्ट भाषा माना गया जिसमें कवि शब्दों के चयन के वैशिष्ट्य में से चमत्कार उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए निराला की 'राम की शक्ति पूजा' का आरंभ सूर्यास्त के वर्णन से होता है - 'रवि हुआ अस्त'। इन तीन शब्दों में पूरी कविता की संरचना स्पष्ट हो जाती है। सूर्य अस्त होने की क्रिया द्वारा रघुकुल शिरोमणि राम की पराजय का संकेति मिलता है। जिसका चित्रोपम वर्णन बाद की पंक्तियों में किया गया है। दूसरा अर्थ व्यक्त होता है कि रवि अस्त होने पर अन्धकार घिर जाता है और निरंतर गहरा होता जाता है। इसलिए युद्ध में उस दिन होने वाली राम की पराजय का बहुत सजीव वर्णन किया गया है -

'रघुनायक आगे अवनी पर नवनीतचरण
श्लथ धनु-गुण है, कटिबन्ध सुस्त-तुणीरूधरण
दृढ़ जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर, विपुल'

यहाँ भी शब्द चयन द्वारा ही राम की पराजय का वर्णन किया गया है। उनके धनुष की प्रत्यंचा ढीली हो गयी है, तूणीर की धारण करने वाला कटिबन्ध ढीला हो गया है और केश जो प्रातः मुकुटके समान बँधे हुए थे, वे खुलकर बाहुओं और पी' पर फैल गये हैं। इससे राम की पराजय का स्पष्ट संकेत मिलता है। शैली विज्ञान का चयन वस्तुतः अमिधा मूल व्यंजना ही है जिसका भारत में दसवीं शती मे हो चुका था।

6.5.12 सौन्दर्यवाद

पश्चिम में साहित्य का विवेचन दर्शनशास्त्र के एक गौण अंग के रूप में हुआ। पश्चिम में सब से पहले प्लेटो ने साहित्य पर विचार किया। उसने साहित्य को अनुकृति की अनुकृति कहा क्योंकि उसके दर्शन के अनुसार सृष्टि ईश्वर की चेतना में विद्यमान विचारों या रूपों की अनुकृति है तथा साहित्यकार सृष्टि का अनुकरण है। इस प्रकार साहित्य अनुकृति की भी अनुकृति है। ईश्वरीय चेतना के विचार ही सत्य है तथा साहित्य सत्य से दोगुना दूर होने के कारण सत्यभ्रष्ट है तथा वह मनुष्य को अन्धकार के गर्त में गिरा देता है। इसीलिए उसने साहित्य का विरोध किया। इस विवेचन को सौन्दर्यशास्त्र का आरम्भ माना जाता है तथा परवर्ती सभी प्रधान दार्शनिकों ने अलग से सौन्दर्यशास्त्र का विवेचन किया जिसके अन्तर्गत अन्य ललित कलाओं का भी समावेश हो गया। इस प्रकार कलाशास्त्र हो सौन्दर्यशास्त्र कहा गया।

उसके समानान्तर ही अरस्तु, लॉजाइनस आदि के माध्यम से साहित्यशास्त्र की धारा स्वतन्त्र रूप से विकसित होती रही। इसका परिणाम यह हुआ कि साहित्यालोचन एक स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में विकसित हुआ उस पर थोड़ा-बहुत सौन्दर्यशास्त्र का प्रभाव रहा, लेकिन धीरे-धीरे, शीघ्र ही उसका स्थान मनोविज्ञान ने लिया तथा साहित्य चिन्तन सौन्दर्यशास्त्र से मुक्त हो गया। यही कारण है कि पश्चिम में साहित्य के छात्रों को सौन्दर्यशास्त्र पढ़ाया ही नहीं जाता।

पश्चिम के प्रभाव से हिन्दी के आलोचना साहित्य में सौन्दर्यशास्त्र की चर्चा होने लगी। हिन्दी में सौन्दर्यशास्त्र के चर्चावाले आलोचक अंग्रेज़ी से प्रभावित थे मगर बाद में संस्कृत काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों और उसकी व्याख्याओं का विकास हुआ तथा हिन्दी का काव्यशास्त्र सौन्दर्यशास्त्र के प्रभाव से मुक्त हुआ।

भारत में आरम्भ से ही काव्यशास्त्र काव्य पर आधारित एक स्वतन्त्रशास्त्र के रूप में विकसित हुआ। मगर कुछ हिन्दी के अलोचकों ने हिन्दी में भी सौन्दर्यशास्त्र के तत्त्वों को ढूँढने का प्रयास किया। भारत में सौन्दर्य को अलंकार का व्यापक नाम दिया

'सौन्दर्य अलंकार : काव्यम् ग्राय अलंकारात्'। काव्य का सौन्दर्य ही अलंकार है तथा काव्य अलंकारों के कारण ही ग्राह्य होता है। यहाँ अलंकार का प्रयोग काव्य सौन्दर्य के रूप में किया गया है तथा, रस, छन्दादि सभी को अलंकार माना गया है। (दण्डी) वामन ने काव्य का विवेचन करते हुए गुणों का, काव्य का शोभाकारक धर्म कहा है और अलंकारों को शोभावर्धक। इसलिए गुण अनिवार्य अलंकार है तथा अलंकार अनित्य। यहाँ 'शोभा' शब्द का प्रयोग सौन्दर्य के अर्थ में ही हुआ है। आगे चलकर पण्डितराज जगन्नाथ ने कहा कि 'रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्द काव्य हैं।'

यहाँ 'रमणीय' शब्द भी, सौन्दर्य के अर्थ में है। आधुनिक काल में काव्य के 'सौन्दर्य' को 'लालित्य' कहा गया है जो प्रकृति के सौन्दर्य से भिन्न है क्योंकि उसकी सृष्टि मनुष्य करता है। इस अर्थ में अलंकार, गुण, रस आदि तत्वों का विवेचन ही कविता काव्य के सन्दर्भ में सौन्दर्यशास्त्रीय विवेचन कहा जाता है। वैसे डॉ. रमेश कुन्तल मेघ ने सौन्दर्यशास्त्र जो अंग्रेज़ी के शब्द 'ईस्थेटिक्स' का हिन्दी पर्याय है, के स्थान पर 'सौन्दर्यबोध शास्त्र' नाम का प्रयोग किया है।

6.5.13 मार्क्सवाद और अस्तित्ववाद

मार्क्सवाद और अस्तित्ववाद दोनों ही आधुनिक युग की उपज हैं। इस तथ्य से यह सम्भावना होती है कि दोनों सिद्धान्तों में कहीं कुछ समानता है। दोनों का जन्म एक खास परिवेश में हुआ, जिसे आधुनिकता का

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

परिवेश कहा जा सकता है। यदि परिवेश अपने भीतर जन्म लेने वालों को प्रभावित या निर्धारित करता है तो एक ही परिवेश में जन्म लेने वाली भिन्न या विरोधी प्रतीत होने वाली सत्ताओं में भी समानता की गुंजाइश हो सकती है।

सामान्य तौर पर देखते हुए दोनों मत परस्पर विरोधी होते हैं। किसी समय इनके विरोध की चर्चा भी की जाती थी, लेकिन अब दोनों में कुछ समान विचार-भूमि के संकेत दिये जाते हैं और दोनों एक सीमा तक साथ मिलकर चल सकते हैं।

दोनों सिद्धान्तों का विरोध स्पष्ट है। दरअसल मार्क्सवाद और अस्तित्ववाद विचार की दो आत्यन्तिक परिणतियाँ हैं, जिनका प्रधान आधार यान्त्रिक व्यापारिक व्यवस्था तथा इस व्यवस्था से उत्पन्न संघर्ष है। इस संघर्ष के कई रूप हैं। समाज के स्तर पर यह विज्ञान और धर्म के संघर्ष का तथा वर्ग-संघर्ष का, पीढ़ियों के संघर्ष तथा परम्परा और आधुनिकता या प्रयोग संघर्ष का रूप लेता है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में यह विविध राष्ट्रों में रूप में सामने आता है। अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष के दो पहलू हैं-सिद्धान्त और अर्थ। यन्त्र के विकास की रौ में उन्नत देशों में मण्डियों के लिए संघर्ष हुए। मार्क्सवादी व्यवस्था वाले देशों के उदय के साथ ही यह संघर्ष सैद्धान्तिक आधार पर अग्रसर हुआ। हमने बहुत अर्से तक दो गुटों-पूँजीवादी और कम्युनिस्ट गुटों के संघर्ष का शीत-शुद्ध देखा है। व्यक्ति के स्तर पर यह संघर्ष बाह्य मूल्यों और अन्तर्वृत्तियों के संघर्ष के रूप में सामने आया। फ्रायड तथा बाद के मनोविश्लेषकों ने अन्तर्वृत्तियों के इस संघर्ष की विविध व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं। मार्क्सवाद और अस्तित्ववाद दोनों का जन्म इस संघर्ष की भूमि से ही हुआ। और इसलिए दोनों का आधाभूत तत्त्व संघर्ष है। मार्क्सवाद ने संघर्ष के बाह्य सामाजिक आयाम को प्रधान बनाया और अस्तित्ववाद का मूल संघर्ष के आन्तरिक वैयक्तिक रूप में है। इस प्रकार संघर्ष की भूमिका में दोनों एक-दूसरे के पूरक प्रतीत होते हैं।

लेकिन संघर्ष के इस स्तर भेद के कारण दोनों सिद्धान्तों के स्वरूप में बहुत अन्तर दिखाई देता है। मार्क्सवाद ने व्यक्ति के दिक् में प्रसृत आकार-समाज और काल के विस्तृत रूप - इतिहास दोनों को समाविष्ट करने का प्रयास किया है। केवल अतीत और वर्तमान ही नहीं वरन भविष्य भी मार्क्सवाद का विषय है। मार्क्स ने अतीत की विशिष्ट व्याख्या द्वारा वर्तमान को समझने का प्रयास किया और वर्तमान संघर्ष की भूमिका में भविष्य की एक रूपरेखा तैयार की। इसमें हर चीज, हर शक्ति और प्रक्रिया एवं वैज्ञानिक पद्धति से सुनिश्चित है। और कुछ बुनियादी सिद्धान्तों के आधार पर जीवन की समग्र जटिलता की व्याख्या का प्रयास है। इस वस्तुवादी सिद्धान्त में विचार एक क्रूर नियामक के रूप में प्रतिष्ठित होता है। जिसका शासन अमोघ और निर्यात अपरिहार्य है। पुराने आध्यात्मिक युग में यह माना जाता था कि ईश्वर की इच्छा के बिना एक पत्ता तक नहीं हिल सकता। मार्क्सवाद के वैज्ञानिक-भौतिक धरातल पर उसी भावना का अवतार दिखाई दिया। विज्ञान ने पुरानी व्यवस्था और नैतिकता के प्रतिनिधि ईश्वर की हत्या कर दी लेकिन साथ ही समाजवाद तथा मार्क्सवाद के रूप में एक नयी व्यवस्था और नैतिकता की रचना की कोशिश की। इस प्रकार मार्क्सवाद ने इस व्यापक संघर्ष की चुनौती को स्वीकार किया और उसे परास्त करने का प्रयास किया। यह भावात्मक दृष्टि, यह कर्म पर आस्था मार्क्सवाद के सबसे अधिक मूल्यवाना तत्व हैं।

'एक दूसरे विचार ने इस संघर्ष को झेलने की कोशिश की, लेकिन सफल न हो सका और टूट गया। यह टूटा हुआ विचार ही अस्तित्ववाद है।

विज्ञान के द्रुत विकास ने जीवन पर फिर से सोचने पर मजबूर किया। पुरानी नैतिकता, जिसका आधार ईश्वर, ईश्वर-पुत्र या पैगम्बर तथा दिव्य ग्रन्थ थे, उखड़ने लगी। मगर ईश्वर ही नहीं रहा तो फिर ईश्वर पर आधारित विधान पर विश्वास कैसा? औद्योगिक क्रान्ति ने जीवन की व्यवस्था में आमूल परिवर्तन कर दिया। इससे सारे संसार की राजनीतिक अवस्था प्रभावित हुई। पहले छोटे-छोटे युद्ध हुए और फिर

विश्वयुद्ध हुआ। दोनों विश्वयुद्धों की भयानकता ने भी व्यक्ति की जीवन-विषयक आस्था को दुर्बल बना दिया। आज की स्थिति और भी खतरनाक साबित हो सकती है। फ्रायड के मनोविश्लेषण शास्त्र ने भी जीवन के मान्य नैतिक मूल्यों पर गहरा आघात किया। आज से पहले व्यक्ति ने कभी ऐसी भयानक चुनौती का सामना नहीं किया था। इसकी भावात्मक प्रतिक्रिया प्रजातन्त्र और समाजवाद और मार्क्सवाद के रूप के दिखाई दी। लेकिन कुछ ऐसे सजग व्यक्ति भी थे जो इस भयानक चुनौती का सामना न कर सके। उनके मन अनास्था, निराशा और अकर्मण्यता से भर गये। वे बेसहारा होकर अँधेरे में भटक गये अस्तित्व तो सत्य था, क्योंकि उसका एहसास होता था, शेष सब निरर्थक प्रतीत होने लगा। लगा कि किसी ने इस अस्तित्व को बिना किसी सहारे के बिना किसी रोशनी या निर्देश के इस दुनिया में धकेल दिया है। यह निर्वासित व्यक्ति अकेलेपन में, अजनबीपन में और इस स्थिति से उत्पन्न व्यथा और पीड़ा में डूबने-उतराने लगा। यहाँ कोई व्यवस्था नहीं, कोई मूल्य नहीं, कोई आदर्श या सिद्धान्त नहीं सिर्फ तथ्य ही तथ्य हैं। इन तथ्यों से घिरा हुआ व्यक्ति जैसे चाहे अपना वक्त काट सकता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति को पूरी आजादी से जीने का हक है। इच्छा पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है, लेकिन तथ्यों की उस बेसहारा दुनिया में यह आज़ादी भी बोझ बन जाती है, क्योंकि कोई राह नहीं, कोई राह दिखाने वाला नहीं, कोई रोशनी दिखाने वाला नहीं, कहीं कोई क्रम या व्यवस्था नहीं। व्यक्ति अतीत से भी कट गया और भविष्य से भी रहा क्या? केवल वर्तमान! और यह वर्तमान भी कैसा वायवीय है। एक गति है बस। क्षणों का आना-जाना। इसलिए वर्तमान सिर्फ एक क्षण है। इसी क्षण में ही जीना है, इसी में मरना है। जीवन अतीत और भविष्य से कटकर क्षण में सीमित हो गया। हताश, विषादग्रस्त और अकर्मण्य मन को एक-एक क्षण भी भारी हो गया। विराट कालजयी से लघु क्षण जीबी तक के मन का यह सफर जिज्ञासा और जिजीविषा का रोचक इतिहास प्रस्तुत करता है।

मार्क्सवाद में व्यक्ति पूर्णतः परतन्त्र है, परिस्थितियों द्वारा निर्धारित है। इस सिद्धान्त के पास इतिहास और समाज दोनों को आत्मसात करने वाला दर्शन है, एक व्यवस्था है, भविष्य का एक आदर्श है। अस्तित्ववाद में व्यक्ति पूर्णतः स्वतन्त्र है, कहीं कोई व्यवस्था नहीं है और व्यक्ति क्षणजीवी है। एक में कर्म, आशा और उल्लास है, दूसरे में निष्क्रियता, निराशा और विपाद है। एक अपने ढंग से जिन्दगी की प्रतिमा बनाता है, दूसरा मौत की आराधना में लीन है। दोनों के ये परस्पर विरोधी स्वर बहुत स्पष्ट हैं।

मार्क्सवादी और अस्तित्ववाद दोनों में परस्पर सहयोग भी नजर आता है। गत्यात्मक दर्शन तथा भावात्मक दृष्टि के कारण मार्क्सवादी अस्तित्ववाद का उपयोग कर सकता है अस्तित्ववाद की दो बातें इसमें सहायक होती हैं। पहली बात यह कि अस्तित्ववाद परम्परा का निषेध करता है, पुराने मूल्यों का तिरस्कार करता है। विद्रोह का यह स्वर मार्क्सवाद के अनुकूल पड़ता है। जब तक प्राचीन का समूल विनाश नहीं हो जाता तब तक नयी व्यवस्था का रूप बना नहीं सकता। मार्क्सवाद प्राचीनता का उतना ही उग्र विरोधी है जितना कि अस्तित्ववाद। इसलिए पुनरुत्थान, पुनर्जागरण यह संशोधन आदि की धाराएँ आज मार्क्सवाद को स्वीकार्य नहीं हैं। प्राचीन के विनाश के स्तर पर मार्क्सवाद अस्तित्ववाद से सहयोग कर सकता है।

दूसरी बात यह है कि अस्तित्ववाद पूर्ण निराशा और अकर्मण्यता का दर्शन है। इस बात का प्रमाण बनाया जा सकता है कि अस्तित्ववाद को जन्म देने वाली पूँजीवादी व्यवस्था का अन्त समय आ गया है और अब उसके स्थान पर एक बिल्कुल नयी व्यवस्था की आवश्यकता है। मार्क्सवाद ने सोचा, असफल पूँजीवाद के स्थान पर समाजवादी व्यवस्था देने के इस अवसर का उपयोग करना चाहिए। अस्तित्ववाद अभाव का दर्शन है। उसमें निषेध है, अस्वीकार है, निर्बन्धता है। लेकिन यह पूर्ण आज़ादी बोझ बन जाती है। यह पूर्ण आज़ादी पूर्ण अभाव की अवस्था है। पूर्ण अभाव की स्थिति में ठहराव नहीं हो सकता। कुछ देर तक यह अवस्था अपनी नवीनता में आकृष्ट करती है,

मगर यह आकर्षण भी अभाव से विरक्त होने लगता है। यही कारण है कि अस्तित्ववाद अल्पजीवी रहा। इसकी एक परिणति तो आध्यात्म में हुई (कॉलिन विल्सन :'आउट साइडर') और दूसरी मार्क्सवाद में (सार्त्र सेंट जेने)। जीवन स्वभाव से ही गतिशील है। यही गतिशीलता आज जीवन को अस्तित्ववादी अभाव से आगे ले आयी है। आज हम फिर उसी पुराने संघर्ष पर लौट आये हैं। जो आध्यात्मवाद और भौतिकवाद या आदर्शवाद और यथार्थवाद के नामों से हमारे चिर-परिचित है। ऐसा लगता है जैसे कि हम फिर एक बार लॉक के लोकवाद से चलकर ह्यूम के संदेहवाद से होते हुए काट-हीगल और मार्क्स तक आ पहूँचे हैं। इस लंबी और जटिल यात्रा में विचार ने क्या खोया और क्या पाया, इस पर लंबा विवाद हो सकता है। मुझे यह लगता है कि मानव ने आस्था को फिर से पा लिया है। जो निर्वासित हुआ था, वह घर आया है।

जीवन के विकास में अनास्था और विद्रोह का बुनियादी है। राजकुमार सिद्धार्थ और महात्मा बुद्ध को जोड़ने वाली कड़ी अनास्था और विद्रोह की बनी है। एक सुनिश्चित परंपरा में, राजसी, समृद्धि में सिद्धार्थ का पालन हुआ, विवाह हुआ, पुत्र हुआ और उसके बाद रोग, जरा, मरण और सन्यास के दर्शन ने उन्हें अपनी परंपरा की जन्मभूमि से निर्वासित कर दिया। वे उन सबके लिए पराये हो गये। जो कभी उनके अपने थे। जितना कुछ परिचित, प्रिय और मूल्यवान था, सब अपरिचित, अप्रिय और मूल्यहीन हो गया। प्राचीन भारत के इतिहास में बुद्धिजीवी ने पहली बार अजनबीपन, एकाकीपन और पीड़ा का तीखा अनुभव किया होगा। इस तीखे अनुभव का आयात इतना क्रूर था कि सिद्धार्थ के सारे बंधन, जो उसके जीवन को निर्धारित किये हुए थे, एक बार टूटकर बिखर गये। यह बिखराव पूर्ण आज़ादी की स्थिति थी, पूर्ण स्वतंत्रता की अवस्था थी। लेकिन यह कहानी यहाँ खत्म नहीं होती। यह तो इसकी शुरूआत है। इसका अन्त विचार के क्षेत्र में एक गंभीर और व्यापक आंदोलन का आरंभ बन गया।

मार्क्सवाद देशों के गुट में आज एक गहरी दरार पड़ गयी जो और गहरी होती जा रही है। इसका सैद्धांतिक आधार जो भी हो, एक बात बहुत स्पष्ट है कि मार्क्सवाद का अन्तर्राष्ट्रीय संगठन वाला पक्ष कमज़ोर होत जा रहा है और विभिन्न देश राष्ट्रीय हितों के अनुरूप मार्क्सवाद की व्याख्या करते हुए एक-दूसरे की कडी आलोचना कर रहे हैं। आज रूस और चीन दोनों की मार्क्सवाद की व्याख्याएँ उनके अपने-अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा और पोषण के प्रयास के रूप में समझी जा रही हैं। इसका प्रभाव पूँजीवादी देशों पर भी पड़ा है और मार्क्सवादी देशों के प्रति उनके रूख में काफी परिवर्तन आया है। मार्क्सवाद का स्वर क्रांति या युद्ध का नहीं, बल्कि सहअस्तित्व और विश्व-शाँति का भी है। इन परिवर्तनों का संकेत क्या है? संकेत बुनियादी महत्व का है। सिद्धांत और सत्य वैसे रूढ़ और कटे-छँटे फार्मूले नहीं रह गये जैसे कि आज से कुछ अर्से पहले थे। जीवन के विकास से सिद्धांतों का विघटन होता प्रतीत होत है। एक संशय, एक अनिर्णय और अराजकता की-सी स्थिति दिखाई देती है। रूप सिद्धांतों और फार्मुलेदार सत्यों का ज़माना लद गया ह। एक गति है, एक अस्थिरता है जिसमें हर किसी के पाँव उखडे जा रहे हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शक्तिशाली राष्ट्र अपने स्वार्थों की सिद्धि में सिद्धांतों का उपयोग कर रहे हैं। कोई शक्तिशाली देश तो स्वाधीनता और शाँति की रक्षा के लिए देशों को गुलाम बनाता जा रहा है और कोई क्रांति की दुहाई देकर अपने प्रभाव का प्रसार कर रहा है। विविध सिद्धांत जीवन के लिए उपयोगी और युगानुरूप सिद्ध होते रहे हैं। लेकिन उपयोगिता की दृष्टि से सिद्धांत मशीन के समान है जो अपने आप में जड हैं। मशीन का उत्पादन मशीन चलाने वाले की कुशलता, ईमानदारों और परिश्रम पर निर्भर करता है। यही बात सिद्धांत की उपयोगिता के बारे में भी कही जा सकती है। सिद्ध होने वाले व्यक्ति में कितनी ईमानदारी है, कितनी बलिदान की भावना है, कितनी शक्ति है, यह देखना होगा। आज भारतवर्ष एक आत्मघाती महत्वकांक्षा से ग्रस्त है।

राजनीतिक, पूँजीपति, सत्ताधारी और बुद्धिजीवी सभी इस आत्मघाती महत्वाकांक्षा के शिकार हैं। मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद आदि सिद्धांतों का उपयोग भी महत्वकांक्षा की सिद्धी में होता दिखाई देता है। इसलिए स्पष्ट है कि सिद्धांत के संदर्भ में बुनियादी महत्व आस्था और साधना का है, उसके पालन का है, समाज के प्रति साधना की यह निश्छल-निषकपट प्रतिबद्धता ही सिद्धांत की रीति पर प्रगतिशील होनी चाहिए, इसी में सिद्धांत की सार्थकता है।

की कुछ नयी प्रवृत्तियाँ, नए सिद्धांत मानी जाती हैं। इनमें से अनेक प्रवृत्तियाँ भारतीय काव्यशास्त्र के विद्वानों के लिए नयी नहीं हैं क्योंकि भिन्न नामों से उनकी समीक्षा आज से हज़ार -डेढ़ हजार वर्ष पहले हो चुकी है। इन प्रवृत्तियों में रूपवाद, संरचनावाद, उत्तर संरचनावाद, आधुनिकतावाद, उत्तर आधुनिकतावाद, मनोविश्लेषणवाद, विखंडनवाद, शैली विज्ञान, सौंदर्यवाद, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद आदि प्रमुख है।

Critical Overview / अवलोकन

पाश्चात्य आधुनिक समीक्षा में काव्य की समीक्षा

Recap / पुनरावृत्ति

- रूपवाद का उद्भव रूस में हुआ इसलिए इसे रूसी रूपवाद भी कहा जाता है। रूस में रूपवादी समीक्षा का सूत्रपात 19वीं शती के अंतिम चरण में हुआ और 20वीं शती के अंतिम वर्षों तक साहित्य समीक्षा को यह आंदोलित करती रही।
- भाषा का ऐसा कलात्मक प्रयोग जो मानव स्थितियों के नाना पहलुओं को साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करता है, यही बात संरचनावाद के अंतर्गत आता है। भाषा और अर्थ परस्पर जुड़े रहते हैं।
- संरचनावाद के आगे की अवधारणा उत्तर संरचनावाद है। वस्तुतः इन दोनों को अलग करना संभव नहीं है, अतः यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि संरचनावाद का अलग चरण उत्तर संरचनावाद हैं।
- आधुनिक शब्द समय सापेक्ष है किन्तु इसका अर्थ अत्यंत लचीला है जिसे विभिन्न सन्दर्भों में प्रयुक्त किया जाता है।
- उत्तर आधुनिकतावाद (Postmodernism) वीं शताब्दी के दूसरे भाग में दर्शनशास्त्र, कला, वास्तुशास्त्र और आलोचना के क्षेत्रों में फैला एक सांस्कृतिक आंदोलन था जिसने अपने से पहले प्रचलित आधुनिकतावाद को चुनौती दी और सांस्कृतिक वातावरण बदल डाला। उत्तर आधुनिकता के जनक ज्या फ्रांकोइस ल्योतार हैं।
- सिग्मंड फ्रोयड 1856-1939 मनोविश्लेषण के संस्थापक ऑस्ट्रियन चिन्तक थे। उनसे पहले हिप्नोसिस की प्रक्रिया की जानकारी तो थी पर मनुष्य की चेतना का कोई संपूर्ण विश्लेषण नहीं किया गया था।
- देरिदा विखंडन का कोई परंपरागत रूप संभव नहीं मानते (अर्थात् उसका कोई पूर्व दर्शन या समीक्षा सिद्धांत नहीं है। विखंडन परंपरावादी पाश्चात्य दर्शन या विचारधारा का निषेध करता है। साहित्य समीक्षा के साथ-साथ दर्शन, नृविज्ञान तथा मानविकी के सभी विषय देरिडा के लिए विखंडन की वस्तु है।

- आई.ए रिचर्डस ने काव्यभाषा का विवेचन करते हुए उसके सांकेतिक उपयोग और भावोद्बोधक रूपों का विवेचन किया है।
- पश्चिम में साहित्य का विवेचन दर्शनशास्त्र के एक गौण अंग के रूप में हुआ। पश्चिम में सब से पहले एक दार्शनिक प्लेटो ने साहित्य पर विचार किया। उसने साहित्य को अनुकृति की अनुकृति कहा क्योंकि उसके दर्शन के अनुसार सृष्टि ईश्वर की चेतना में विद्यमान विचारों या रूपों की अनुकृति है तथा साहित्यकार सृष्टि का अनुकरण है। इस प्रकार साहित्य अनुकृति की भी अनुकृति है।
- मार्क्सवाद और अस्तित्ववाद दोनों ही आधुनिक युग की उपज हैं। इस तथ्य से यह सम्भावना होती है कि दोनों सिद्धान्तों में कहीं कुछ समानता है। दोनों का जन्म एक खास परिवेश में हुआ, जिसे आधुनिकता का परिवेश कहा जा सकता है।

Objective questions / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. रूपवाद का उद्भव कहाँ हुआ?
2. 'ऑफ ग्रामैटोलोजी' किसका ग्रन्थ है?
3. 'दी इंटरप्रेटेशन ऑफ़ ड्रीम्स' किसका ग्रन्थ है?
4. उत्तर संरचनावाद का विकास कहाँ हुआ?
5. हिन्दी में आधुनिकतावाद का उपयोग सर्वप्रथम अज्ञेय ने अपने किस उपन्यास में किया?
6. उत्तर आधुनिकता की पहली परिकल्पना किसने की?
7. A Study of History किसकी किताब है?
8. मनोविश्लेषण के संस्थापक कौन है?

Answers / उत्तर

1. रूस
2. देरिदा
3. फ्रायड
4. फ्रांस में
5. 'शेखर एक जीवनी'
6. आर्नल्ड टॉयनबी
7. आर्नल्ड टॉयनबी
8. सिग्मंड फ्रोयड

Assignments / प्रदत्त कार्य

1. विखंडनवाद का विश्लेषण कीजिए।
2. संरचनावाद पर विचार कीजिए।
3. सौंदर्यवाद और शैलीवाद पर टिप्पणी लिखिए।
4. आधुनिकतावाद और उत्तर आधुनिकतावाद पर टिप्पणी लिखिए।
5. मार्क्सवाद की समीक्षा कीजिए।

Reference / सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - गणपती चन्द्र गुप्त
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारक नाथ बाली

SGOU

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

MODEL QUESTION PAPER SETS

SGOU

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

QP CODE: ………

Reg. No : ....
Name : ……….........

Model Question Paper- Set-I

SIXTH SEMESTER BA HINDI LANGUAGE AND LITERATURE EXAMINATION

DISCIPLINE CORE

M21HD07DC- भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र

(CBCS - UG)

2022-23 - Admission Onwards

Maximum Time: 3 Hours — Maximum Mark: 70

SECTION A

I किन्हीं दस (10) प्रश्नों के उत्तर एक वाक्य या शब्द में दें। प्रत्येक प्रश्न 1 अंक का होता है।

(1X10 = 10 Marks)

1. 'शब्दार्थो सहितौ काव्यम' किसकी उक्ति है?
2. किसने प्रेरणा को काव्य हेतु माना है?
3. काव्य के मुख्यतः कितने भेद है?
4. अर्थ अलंकार किस पर आधारित है?
5. काव्य गुणों के आधार पर कितनी रीतियां है?
6. साधारणतया शब्द निर्माण कितने प्रकार से होते हैं?
7. 'लक्षण लक्षणा' का दूसरा नाम क्या है?
8. 'औचित्य विचार चर्चा' की रचनाकार कौन है?
9. यूनान के आदि कवि कौन थे?
10. 'दि रिपब्लिक' का रचनाकार कौन है?
11. Biographia Literaria किसकी रचना है?
12. अर्नाल्ड की मूल्यांकन पद्धति का नाम क्या है?
13. अभिव्यंजनावाद के प्रणेता कौन है?
14. करुणा, प्रेम आदि किस प्रकार के आवेग है?
15. इलियट का सिद्धांत क्या है?

II किन्हीं पाँच (5) प्रश्नों के उत्तर दो या दो से अधिक शब्दों में दें। प्रत्येक प्रश्न 2 अंक का होता है।

(2X5 = 10 Marks)

16. देव की रचनाओं का नाम लिखिए।
17. काव्य के बाह्य स्वरूप के अंतर्गत कितने तत्वों का समावेश हुआ है? वह कौन-कौन से हैं?
18. रस के अंग कौन-कौन से हैं?
19. किन्हीं चार अलंकारों का नाम लिखिए।

20. लक्षणा शब्द शक्ति के भेदों पर प्रकाश डालिए।
21. अरस्तु का अनुकरण सिद्धांत।
22. 'साहित्य : मिथ्या अनुकृति' से क्या मतलब है?
23. अभिव्यंजना और वक्रोक्ति का अंतर समझाइए।
24. विलियम वर्ड्सवर्थ का परिचय दीजिए।
25. नई समीक्षा क्या है?

SECTION C

III किन्हीं छह (6) प्रश्नों के उत्तर एक पृष्ठ के अंदर दें। प्रत्येक प्रश्न 5 अंक का होता है।

(5X6 = 30 Marks)

26. चीनी काव्य शास्त्र की परंपरा पर टिप्पणी लिखिए।
27. काव्य लक्षण और परिभाषाओं पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
28. रस सूत्र पर टिप्पणी लिखिए।
29. साधारणीकरण पर टिप्पणी लिखिए।
30. ध्वनि के आधार पर काव्य के कितने भेद है? वह कौन-कौन से हैं?
31. व्यंजना शब्द शक्ति का परिचय दीजिए।
32. प्लेटो पूर्व काव्य सिद्धांत पर टिप्पणी लिखिए।
33. अरस्तु का परिचय दीजिए।
34. फ्रांसीसी क्रांति के कारण क्या-क्या है?
35. अर्नाल्ड के काव्य सिद्धांत की आलोचना कीजिए।
36. नई समीक्षा की विशेषताएं लिखिए।
37. आइ.ए. रिचर्ड्स के कला संबंधी दृष्टिकोण पर टिप्पणी लिखिए।

SECTION D

IV किन्हीं दो (2) प्रश्नों के उत्तर दो पृष्ठों के अंदर दें। प्रत्येक प्रश्न 10 अंक का होता है।

(10X2 = 20 Marks)

38. काव्य की आत्मा पर विभिन्न आचार्यों के मत पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
39. शब्द शक्तियों पर प्रकाश डालिए।
40. वर्ड्सवर्थ का विस्तृत परिचय देते हुए उनकी काव्य संबंधी विचारों पर प्रकाश डालिए।
41. टी.एस. इलियट का निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत समझाइए।

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

QP CODE: ………

Reg. No : ....
Name : ……...........

Model Question Paper- Set-II

SIXTH SEMESTER BA HINDI LANGUAGE AND LITERATURE EXAMINATION

DISCIPLINE CORE

M21HD07DC- भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र

(CBCS - UG)

2022-23 - Admission Onwards

Maximum Time: 3 Hours | Maximum Mark: 70

SECTION A

I किन्हीं दस (10) प्रश्नों के उत्तर एक वाक्य या शब्द में दें। प्रत्येक प्रश्न 1 अंक का होता है।

(1X10 = 10 Marks)

1. काव्यशास्त्र का पुराना नाम क्या है?
2. नाट्यशास्त्र के रचयिता कौन है?
3. भारतीय काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य कौन है?
4. करुण रस का स्थाई भाव क्या है?
5. अलंकार संप्रदाय के प्रवर्तक कौन है?
6. आनंदवर्धन ने ध्वनि के कितने भेद माने हैं?
7. व्यंजन शब्द शक्ति के भेद कौन-कौन से हैं?
8. विरेचन सिद्धांत के प्रतिपादक कौन है?
9. 'कला प्रकृति की अनुकृति है' - यह किसका कथन है?
10. अरस्तू ने किसके दरबार में राजवैद्य का पद स्वीकार किया था?
11. नवजागरण का उदय भारत में कब हुआ?
12. नव्यशास्त्र वाद के प्रमुख आचार्य कौन है?
13. हैमलेट किसके नाटक है?
14. न्यू क्रिटिज़िज्म शब्द का प्रयोग किसने किया?
15. मनोविश्लेषण के संस्थापक कौन है?

II किन्हीं पाँच (5) प्रश्नों के उत्तर दो या दो से अधिक शब्दों में दें। प्रत्येक प्रश्न 2 अंक का होता है।

(2X5 = 10 Marks)

16. काव्य के प्रयोजन क्या-क्या है?
17. काव्यशास्त्र संबंधी मुख्य संप्रदाय कौन-कौन से हैं?
18. रीति की परिभाषा दीजिए।

SGOU

19. शब्द के कितने प्रकार है? वह कौन-कौन से हैं?
20. प्रयोजनवती लक्षणा क्या है?
21. अरस्तु का दार्शनिक विचार क्या है?
22. विरेचन शब्द की व्याख्या प्रस्तुत कीजिए।
23. कॉलरिज की किन्हीं चार रचनाओं का नाम लिखिए।
24. उत्तर आधुनिकतावाद माने क्या है?
25. विखंडन वाद पर टिप्पणी लिखिए।

SECTION C

III किन्हीं छह (6) प्रश्नों के उत्तर एक पृष्ठ के अंदर दें। प्रत्येक प्रश्न 5 अंक का होता है।

(5X6 = 30 Marks)

26. काव्य प्रयोजन संबंधी विभिन्न आचार्यो का मत दीजिए।
27. स्वरूप के आधार पर काव्य के कितने भेद है? वह कौन-कौन से हैं? विस्तार से समझाइए।
28. रस के अंगों पर चर्चा कीजिए।
29. रीति के भेदों पर प्रकाश डालिए।
30. लक्षणा शब्द शक्ति का परिचय दीजिए।
31. औचित्य सिद्धांत पर प्रकाश डालिए।
32. प्लेटो के अनुसार काव्य प्रयोजन कितने हैं? टिप्पणी लिखिए।
33. अरस्तु का विरेचन सिद्धांत समझाइए।
34. अभिव्यंजना का अर्थ समझाइए।
35. कॉलरिज की ललित कल्पना पर प्रकाश डालिए।
36. वस्तुनिष्ठ समीकरण सिद्धांत पर प्रकाश डालिए।
37. संरचनावाद पर विचार कीजिए।

SECTION D

IV किन्हीं दो (2) प्रश्नों के उत्तर दो पृष्ठों के अंदर दें। प्रत्येक प्रश्न 10 अंक का होता है।

(10X2 = 20 Marks)

38. काव्य हेतु का परिचय देते हुए भारतीय एवं पाश्चात्य आचार्यो का मत पर प्रकाश डालिए।
39. नव रसों का विस्तृत परिचय दीजिए।
40. प्लेटो के अनुकरण सिद्धांत पर प्रकाश डालिए।
41. आधुनिकतावाद और उत्तर आधुनिकतावाद पर टिप्पणी लिखिए।

NO TO DRUGS

തിരിച്ചിറങ്ങാൻ പ്രയാസമാണ്

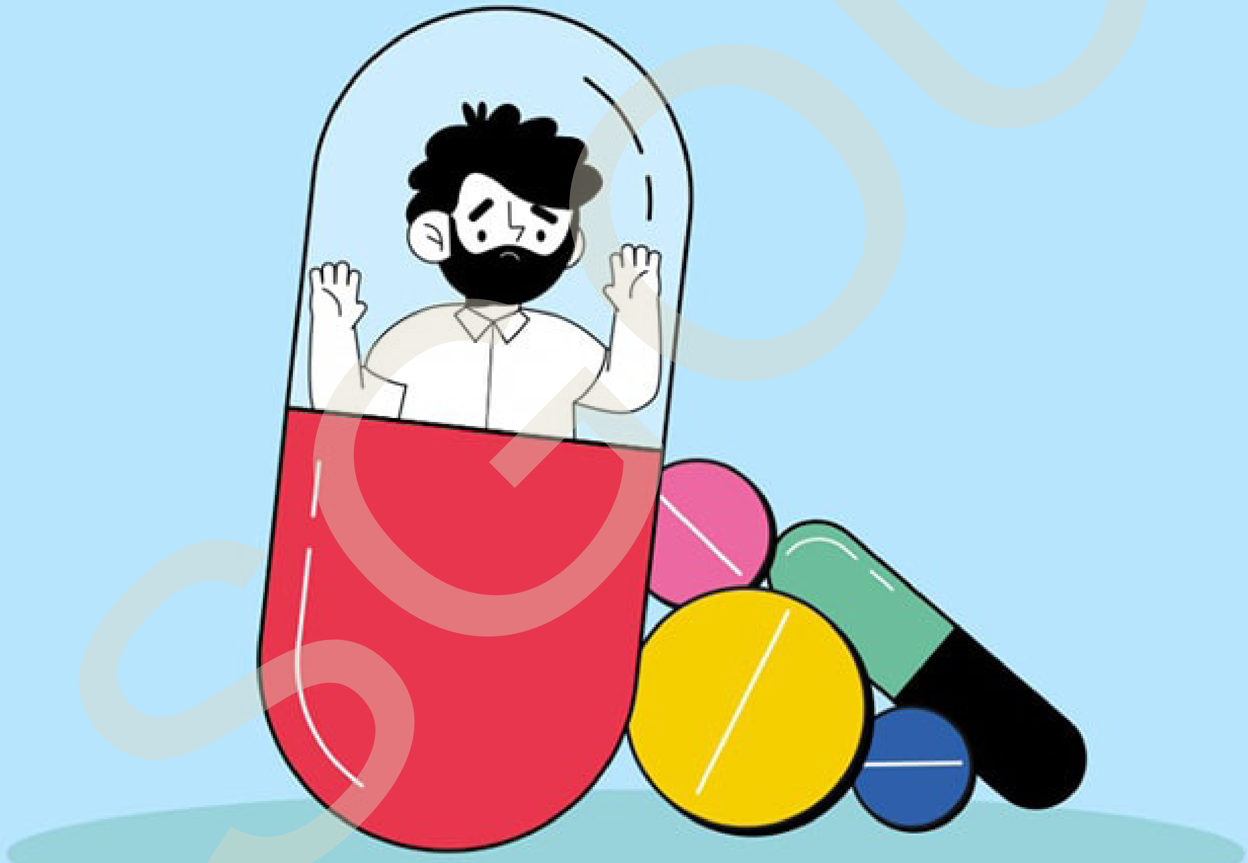

SGOU

ആരോഗ്യ കുടുംബക്ഷേമ വകുപ്പ്, കേരള സർക്കാർ

സർവ്വകലാശാലാഗീതം

വിദ്യയാൽ സ്വതന്ത്രരാകണം
വിശ്വപൗരരായി മാറണം
ഗ്രഹപ്രസാദമായ് വിളങ്ങണം
ഗുരുപ്രകാശമേ നയിക്കണേ

കൂരിരുട്ടിൽ നിന്നു ഞങ്ങളെ
സൂര്യവീഥിയിൽ തെളിക്കണം
സ്നേഹദീപ്തിയായ് വിളങ്ങണം
നീതിവൈജയന്തി പാറണം

ശാസ്ത്രവ്യാപ്തിയെന്നുമേകണം
ജാതിഭേദമാകെ മാറണം
ബോധരശ്മിയിൽ തിളങ്ങുവാൻ
ജ്ഞാനകേന്ദ്രമേ ജ്വലിക്കണേ

കുരീപ്പുഴ ശ്രീകുമാർ

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Regional Centres

Kozhikode
Govt. Arts and Science College
Meenchantha, Kozhikode,
Kerala, Pin: 673002
Ph: 04952920228
email: rckdirector@sgou.ac.in

Thalassery
Govt. Brennen College
Dharmadam, Thalassery,
Kannur, Pin: 670106
Ph: 04902990494
email: rctdirector@sgou.ac.in

Tripunithura
Govt. College
Tripunithura, Ernakulam,
Kerala, Pin: 682301
Ph: 04842927436
email: rcedirector@sgou.ac.in

Pattambi
Sree Neelakanta Govt. Sanskrit College
Pattambi, Palakkad,
Kerala, Pin: 679303
Ph: 04662912009
email: rcpdirector@sgou.ac.in

भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र

COURSE CODE: B21HD07DC

YouTube

Sreenarayanaguru Open University
Kollam, Kerala Pin- 691601, email: info@sgou.ac.in, www.sgou.ac.in Ph: +91 474 2966841

ISBN 978-81-986822-8-4
9 788198 682284